कुतब शतक और उसकी हिन्दुई

*

डॉ० माताप्रसाद गुप्त



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक–२४३
सम्पादक एवं नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन



Lokodaya Series : Title No. 243

KUTAB SHATAK
AUR USKEE HINDUI

(Thesis)

Dr. MATAPRASAD GUPTA

Bharatiya Jnanpith Publication

First Edition 1967

Price Rs. 7.00

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण १९६७

मूल्य ७.००

सन्मति
वा।

प्रियवर

मुकुन्द और माधव

को

प्रस्तावना

पुरानी खड़ी बोली एक साहित्य-रंक भाषा मानी जाती रही है, और इसे साहित्यमें सर्वप्रथम प्रयुक्त करनेका श्रेय दक्षिण भारतके उन सूफी कवियों और लेखकोंको दिया जाता रहा है जो उत्तर भारतसे वहाँ गये थे। आठ वर्ष हुए रोडा कृत 'राउल वेल' नामका एक शिलांकित काव्य प्रकाशमे आया, जो ईसवी ११वी शती का है। अब यह एक सुसम्पादित रूपमे अपनी भाषाके अध्ययन-विश्लेषणके साथ 'राउल वेल और उसकी भाषा' नामसे प्रकाशित भी है (सम्पादक—प्रस्तुत लेखक, प्रकाशक—मित्र प्रकाशन (प्रा०) लिमिटेड, प्रयाग)। इसमें एक टक्की रमणीका वर्णन है, जो रचनाकी अन्य छः रमणियोंकी भाँति ही उसकी अपनी भाषामें किया गया है। यह वर्णन कुछ पंक्तियोंका ही होते हुए भी खड़ी बोलीका प्राचीनतम रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है, और इससे ज्ञात होता है कि खड़ी बोली केवल दिल्ली-मेरठकी ही भाषा नही थी, वह टक्क की भी भाषा थी, जो पहले पंजाब और अब हरियाणा प्रदेशमे आता है, और इससे यह भी प्रमाणित होता है कि खडी बोली भाषा और साहित्यका इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना उत्तर भारतकी अन्य आधुनिक भाषाओंका है: 'राउल वेल' में ही टक्कीके अतिरिक्त हमे पहली बार राउली (वर्त्तमान पश्चिमी राजस्थानी), मालवी, मराठी, गौड़ी (बगला), ब्रज तथा अवधीके प्राचीनतम प्रामाणिक रूप उपलब्ध होते हैं। किन्तु इस 'राउल वेल' की टक्की और दक्खिनीके बीचकी कड़ी उपलब्ध नहीं थी। बीचकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी जिसपर आश्चर्य है कि विद्वानोका ध्यान अभीतक नहीं गया था, गोरखनाथकी वाणियाँ हैं। गोरखनाथकी वाणियों और उनकी भाषा का रूप सन्दिग्ध माननेके कारण ही कदाचित् उनकी ऐसी उपेक्षा हुई है। किन्तु विश्लेषणसे यह निश्चित रूपसे प्रमाणित हुआ है कि गोरखनाथकी वाणियोंकी भाषा पूर्वीय हिन्दी न होकर—जैसा सामान्यत. माना जाता है—पुरानी खड़ी बोली है (दे० आदिकालीन हिन्दी भाषा'—प्रस्तुत लेखक-द्वारा लिखित और शीघ्र प्रकाशनीय)। उसके बादकी और अधिक साहित्यिक कड़ी प्रस्तुत 'कुतब शतक' है, जिससे न केवल पुरानी खड़ी

बोलीके भाषा-रूप पर एक अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण प्रकाश पड़ा है, वरन् जिसने एक तो यह प्रमाणित कर दिया है कि ललित साहित्यमें खड़ी बोलीका भी प्रयोग उतना ही प्राचीन है जितना कि उत्तरी भारत की किसी भी बोली या भाषाका, और दूसरे यह कि सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्योंके जिस रूपसे हम अब तक परिचित रहे हैं, उससे भिन्न और किंचित् स्वतन्त्र रूप भी प्रचलित था, जो इस रचनाके साथ पहली बार प्रकाशमें आ रहा है और इस दृष्टिसे यह रचना दाऊद की 'चांदायन' के समकक्ष है।

पाँच वर्षोंसे अधिक हुए जब मैं राजस्थान विश्व-विद्यालय जयपुर में था, वहाँ के हिन्दी विभागके एक प्राध्यापक और 'राजस्थानी भाषा और साहित्य (सं० १५००–१६५०)' के विद्वान् लेखक डॉ० हीरालाल माहेश्वरीसे इस महत्त्वपूर्ण कृति और इसके वार्त्तिक तिलककी सर्वाधिक प्राचीन प्रतियोंकी, जो बीकानेरके अनूप संस्कृत पुस्तकालयमें हैं, अपने लिए की हुई प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुईं। उदय पुर जाने पर श्री मुनि कान्तिसागरसे उसकी एक अन्य प्राचीन प्रति प्राप्त हुई। इसी प्रकार श्री मुनि जिनविजयजीकी कृपासे जोधपुर-के प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानसे उसकी एक अन्य प्राचीन प्रति मिल गयी। रचना-की कतिपय अन्य प्रतियाँ भी मिलती हैं, किन्तु सर्वाधिक प्राचीन प्रतियाँ ये ही हैं, और रचनाके पाठ-सम्पादनके लिए ये पर्याप्त लगीं, इसलिए इनकी सहायता-से रचनाका यह संस्करण उस समय मैंने तैयार कर भारतीय ज्ञानपीठको दे दिया था। सन्तोष है कि अब यह प्रकाशित हो रहा है।

इस संस्करणकी आधार-भूत प्रतियोंके लिए बीकानेरके अनूप संस्कृत पुस्तकालयके अधिकारियों और डॉ० हीरालालका, जोधपुरके प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान और उसके सम्मान्य निदेशक श्री मुनि जिनविजय जी, एवं उदयपुर के श्री मुनि कान्तिसागर जीका हृदयसे आभारी हूँ, जिनकी सौजन्यपूर्ण सहायता-के बिना यह कार्य असम्भव था, और, प्रकाशनके लिए भारतीय ज्ञानपीठके अधिकारियोंको धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने कृतिको इस सुन्दर रूपमें प्रकाशित किया है।

मुंशी विद्यापीठ,
आगरा,
३. ९. १९६६

—माताप्रसाद गुप्त

विषय-सूची

भूमिका

कुतब शतक की हिन्दुई

कुतब शतक

कुतब शतक का वार्तिक तिलक

भूमिका

०

प्रतियाँ

इस रचनाकी सर्वाधिक प्राचीन प्रतियाँ तीन है, जो निम्नलिखित हैं—

१. (अ०) : अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेरकी प्रति, जिसकी पुष्पिका निम्नलिखित है—

"इति कुतब शतकं समाप्तं। संवत् १६३३ वर्षे। आषाढ़ मासे कृष्ण पक्षे सप्तम्यां तिथौ सोमवासरे घटिका ४८ पल० ४ उत्तर भाद्रपद नामयौमव नक्षत्रे घटी ६० पल० सौभाग्य नाम्नि योगे घटी ३ पल ३ राज्य श्री संग्राम तत्पुत्र राज्य श्री साँवलदास पठनाय कुतब दी शतकं लिलिखे। वा० श्री कनक प्रभस्यान्तेवासिना मु० सकतारवेन। वाचकत्थरनन्द तातू प्रतीहार पुरत्थ वाचकस्य श्रेयासिभूयांसि भूयासु।"

रचनाकी प्राप्त प्रतियोंमें सबसे अधिक प्राचीन यही है और पाठकी दृष्टिसे भी यह सबसे अधिक प्रामाणिक है। वर्तमान सम्पादन इसकी एक सावधानीसे की हुई प्रतिलिपिके आधारपर किया गया है जिसे राजस्थान विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके प्राध्यापक डॉ० हीरालाल माहेश्वरीने किया था। इस प्रतिलिपिके लिए मैं उनका हृदयसे आभारी हूँ। प्रतिके प्रारम्भ और अन्तके पत्रोंके छायाचित्र भी उन्हीके सौजन्यसे प्राप्त हुए है।

२. (ध०) : प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुरकी प्रति, जो उसके सम्मान्य निदेशक श्री मुनि जिनविजयजीके सौजन्यसे प्राप्त हुई थी, और जिसकी पुष्पिका निम्नलिखित है—

"इति श्री कुतबशतं समाप्तं। श्री संवत् १६७० वर्षे वैशाख मासे कृष्ण पक्षे शनिवारे। श्री मन्नागपुरीय तपागच्छ स्वच्छातुच्छ सुगच्छ समुल्लासन सजल जलधराणां श्री अमरकीर्ति सूरीश्वराणां शिष्य धर्मकीर्तिनालेखितं श्री चेला सांकरसी श्री नागपुर मध्ये।"

यह रचनाकी दूसरी प्राचीनतम प्रति है और पाठकी दृष्टिसे पर्याप्त महत्त्वकी है। इस प्रतिके उपयोगके लिए मैं श्री मुनिजीका आभारी हूँ।

३. (का०): मुनि श्री कान्तिसागर, उदयपुरकी प्रति जिसकी पुष्पिका निम्नलिखित है—

"इति श्री कुतब दी साहिबां वात सम्पूर्णम्। शुभं भवतु। रामाय नमः। श्रीकृष्णाय नमः। कल्याणमस्तु।"

यह प्रति भी पाठकी दृष्टिसे महत्त्वकी है। इसमें लेखन-काल नहीं दिया हुआ है, किन्तु यह उपर्युक्त दूसरी प्रतिके आसपासकी ही लिखित प्रतीत होती है। इस प्रतिके उपयोगके लिए मैं मुनि कान्तिसागरजीका आभारी हूँ।

रचनाकी कुछ और भी प्रतियाँ हैं जो अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी हैं। वे उपर्युक्तसे बादकी हैं और पाठकी दृष्टिसे भी कदाचित् इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितनी उपर्युक्त हैं। यदि वे प्राप्त हो सकीं तो अगले संस्करणमें उनका उपयोग भी किया जा सकेगा।

उपर्युक्तके अतिरिक्त रचनाके एक वार्तिक तिलक (टीका) का पाठ परिशिष्टके रूपमें दिया जा रहा है और उसकी भाषाका विश्लेषण किया जा रहा है। इसकी एकमात्र प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेरमें है और संवत् १७२२ के लिखे हुए एक गुटकेमें है। इसकी भी प्रतिलिपि उपर्युक्त डॉ० हीरालाल माहेश्वरीसे प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं पुनः उनका आभारी हूँ।

पाठ-सम्पादन

रचनाकी उपर्युक्त तीन प्रतियोंमेंसे अ० स्वतन्त्र पाठ-परम्पराकी है, क्योंकि उसकी एक भी विकृति अन्य दोमें नहीं मिलती है।

ब० तथा का० कहीं-कहींसे संकीर्ण सम्बन्धसे सम्बन्धित हैं और एक पाठ-परम्पराकी प्रतियाँ हैं, यह उनकी निम्नलिखित विकृतियोंसे प्रमाणित है:

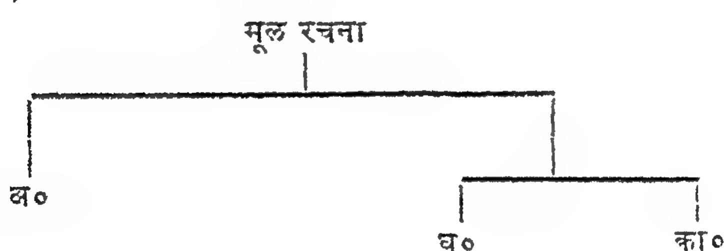
१. रचनाके प्रारम्भमें दोनोंमें एक गद्य वार्तिक है। ब० में यह अपेक्षाकृत छोटा और का०में बड़ा है। यह अ०में नहीं है और निश्चित रूपसे प्रक्षिप्त है। ब० वाले विवरण ही का०में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार और अधिक अतिरंजित रूपमें दिये गये हैं। उदाहरणार्थ—

(१) ब० का 'एक लाख टका' का०में 'दो लाख टका' हो गया है।

(२) सम्पादित पाठके १०३.२ तथा १०४.१ दोनोंमें पूर्ववर्ती चरणमें अन्त साम्यके कारण छूटे हुए हैं।

कुछ और छोटे-मोटे विकृति-साम्यके स्थल पाद-टिप्पणियोंमें दिये गये पाठान्तरोंमें देखे जा सकते हैं। ये स्थल अधिक नहीं हैं। इसलिए यह विकृति या संकीर्ण सम्बन्ध बहुत निकटका नहीं ज्ञात होता है। इसे कहीं-न-कहीं दूरका ही होना चाहिए। फिर भी इतने विकृति-साम्यसे यह प्रमाणित हो जाता है कि दोनों प्रतियोंकी पाठ-परम्परा एक-दूसरेसे स्वतन्त्र नहीं है।

इस सम्बन्धको यदि हम व्यक्त करना चाहें तो इस प्रकार कर सकते हैं :



फलत. पाठ-निर्धारणमें अ० के साक्ष्यको उतना ही महत्त्व मिला है जितना ध० और का० के सम्मिलित साक्ष्यको। जहाँपर तीनों प्रतियोंका पाठ समान है, उसे स्वीकार किया गया है। जहाँपर अ० का पाठ ध० और का० में-से किसीसे भी मिल जाता है, अन्य पाठको अस्वीकार कर अ० के पाठको स्वीकार किया गया है, जहाँपर अ० में एक पाठ है और ध० तथा का० में कोई अन्य पाठ, वहाँपर जो पाठ अपेक्षाकृत प्राचीनतर और अधिक सम्भव ज्ञात हुआ है, वह स्वीकार किया गया है। जहाँपर तीनों प्रतियाँ तीन पाठ देती हैं वहाँपर प्रायः अ० के पाठको स्वीकार किया गया है। अ० के पाठको यह विशिष्ट मान्यता उसकी प्रतिकी अपेक्षाकृत अधिक प्राचीनताके कारण तो दी ही गयी है, उसका पाठ भाषा आदिकी दृष्टिसे रचनाके, प्राचीन रूपको अधिक सुरक्षित रखे हुए प्रतीत हुआ है, इसलिए भी उसको यह महत्त्व दिया गया है।

परिशिष्टमें वार्तिकका पाठ उसकी एकमात्र प्राप्त संवत् १७२२ की प्रतिके अनुसार दिया गया है। उसका सम्पादन भविष्यमें उसकी और प्रतियाँ मिलनेपर ही किया जा सकेगा।

रचनाका नाम

रचनाका नाम उसके पाठके बीचमे कही नही आता है। प्रयुक्त प्रतियोंके अन्तमें आनेवाले नाम हैं : अ० 'कुतव शतक' तथा 'कुतवदी शतक', ध० 'कुतव शत', का० 'कुतवदी साहिवां बात'। निर्धारित पाठ-सम्पादनके सिद्धान्तोंके अनुसार नाम 'कुतब शतक' होना चाहिए, क्योंकि वह अ० मे तथा अपर शाखाकी प्रति ध० में 'कुतब शत' के रूपमें मिलता है। रचना बात-बन्ध (वार्ता-ग्रन्थ) काव्यरूपमे प्रस्तुत की गयी है, इसलिए उसका अन्य नाम 'कुतवदी साहिवां बात' भी सार्थक है।

किन्तु प्रयुक्त तीनमें-से एक प्रतिमे भी छन्दों या अनुच्छेदोंकी संख्या सौ या उसके आसपास नहीं है। इनकी संख्या किसी प्रतिमें आदिसे अन्त तक किसी क्रमसे दी हुई भी नहीं है। केवल अ० में कुछ दूर तक क्रम-संख्या दी हुई है, बादमे पुनः नयी क्रम-संख्याएँ हैं। उसमे ४७ तक तो क्रम-संख्या एक है, उसके बाद विभिन्न प्रसंगोंमे आनेवाले दोहोंकी क्रम-संख्याएँ मात्र हैं और वे स्वतन्त्र हैं। शेष प्रतियोंमे इतना भी नही मिलता है। इसलिए इन ४७ अनुच्छेदोंकी संख्या-पद्धति देखकर शेष-रचनामें भी अनुच्छेदोंकी क्रम-संख्याएँ प्रस्तुत सम्पादकने लगा दी है। इस प्रकार संख्याएँ देनेपर रचना ११४ अनुच्छेदोंमे समाप्त हुई है, और उसका 'शतक' नाम भी सार्थक हो सका है।

वार्त्तिकमें अनुच्छेद भी नही थे। आगेके विवेचनोंमे उसके स्थल-निर्देशके लिए तथा यों भी उसका अभिप्राय ठीक-ठीक समझनेके लिए प्रस्तुत लेखकने उसे १६ अनुच्छेदोंमें बाँट दिया है।

रचयिताका नाम

रचनामें कही भी रचयिताका नाम नहीं आता है और न उसकी प्रतियोंकी पुष्पिकाओंमे। विभिन्न प्राप्त प्रतियोंके पाठोंमें इतनी समानता है कि रचना लोक-साहित्यकी वस्तु नही मानी जा सकती है। है वह किसी एक कविकी कृति ही, यद्यपि उसका नाम हमें ज्ञात नही हो सका है। सम्भव है आगेकी खोजोंसे वह ज्ञात हो सके।

यह रचयिता सूफी रहा होगा, यह स्पष्ट रूपसे ज्ञात होता है, क्योंकि रचनाका स्वर आदिसे अन्त तक सूफी है, जैसा हम आगे देखेंगे। किन्तु यह कवि हिन्दी काव्यकी परम्पराओंमें निष्णात था—यह उसकी रचनासे भली-भाँति प्रमाणित है। दोहोंकी रचना तो उसने इतनी कुशलता और कला-

त्मकताके साथ की है कि वे अपभ्रंशके सर्वोत्कृष्ट दोहोंकी परम्परामें रचे हुए प्रतीत होते हैं। उसके गद्यकी भाषा सुथरी बोलचालकी हिन्दुई है, जिसमे तुकोंके लिए आग्रह है, जो मध्ययुगीन गद्यकी विशेषता थी।

वार्त्तिक-लेखकने भी अपना नाम वार्त्तिकमें नहीं दिया है और न प्रतिकी पुष्पिकामें उसका नाम आता है। सम्भव है आगेकी खोजोंसे ही इस 'वार्त्तिक-तिलक'के रचयिता और उसके पूर्ण पाठका भी ज्ञान हो सके।

रचना-तिथि

रचनामें रचना-तिथि नहीं दी हुई है: उसके प्रारम्भ और अन्त केवल कथाके प्रारम्भ और अन्तके है, रचनाके विषयके नहीं। रचनाकी प्राचीनतम प्रति संवत् १६३३ की है। यदि रचना इसके ७५-७६ वर्ष पूर्वकी भी मानी जाये तो इसका रचना-काल सन् १५०० ई० के आसपास होना चाहिए। भाषाकी दृष्टिसे रचना कदाचित् इससे भी पूर्वकी होनी चाहिए, जैसा हम आगेके विवेचनसे देखेंगे, बादकी नही। मेरा अपना अनुमान है कि रचना पन्द्रहवीं शती ईसवीकी होनी चाहिए। उत्तरी भारतकी पुरानी खड़ी बोलीकी कोई तिथियुक्त रचना प्राप्त होनेपर ही इसकी रचना-तिथिके सम्बन्धमें और अधिक निश्चयपूर्वक कुछ कहा जा सकेगा।

वार्त्तिक तिलककी तिथि भी इसी प्रकार अनिश्चित है। उसकी प्राप्त प्रति संवत् १७२२ की है। उसका रचना-काल यदि प्रतिलिपि-तिथिसे ७५-७६ वर्ष पूर्व माना जाये तो वह संवत् १६४७ के आसपास पड़ेगा। इस प्रकार वह ईसवी सोलहवीं शतीके अन्तकी होनी चाहिए। उसकी भाषा, जैसा हम आगे देखेंगे, 'कुतब शतक' की भाषासे कमसे कम एक शती बादकी होनी चाहिए, यह तथ्य भी इसी अनुमानकी पुष्टि करता है। इसकी रचना-तिथिका भी अनुमान उत्तरी भारतकी खड़ी बोलीकी कोई तिथियुक्त रचना प्राप्त होनेपर अधिक निश्चयात्मकताके साथ हो सकेगा।

कथा-सार

[अनु० १-१२] दिल्लीका एक दावर (न्याय-कर्ता) दानिशमन्द नामका था। उसकी एक ढाढिनी थी, जिसका नाम देवर (देवल) था। दावरकी एक कन्या थी, जिसका नाम साहिबा था। इस साहिबासे प्रीति होनेके कारण उसे उसने एक बड़ा वचन दे डाला और वह यह था कि उसका विवाह वह शाहजादेसे करायेगी। दिल्लीमें फीरोजशाह राज्य करता था, जिसका शाहजादा कुतुबुद्दीन

जवान हो गया था, किन्तु उसे अब भी अपनी लज्जालु माता बीबी बिवानीके द्वारा नियुक्त पाँच सौ वृद्धा परिचारिकाओंसे घिरा रहना पड़ता था। ये परिचारिकाएँ इसलिए नियुक्त थीं कि शाहज़ादेपर बाहरकी दुनियाका कोई असर न हो। यह देखकर उस शाहज़ादेसे मिलनेकी उस ढाढिनीने एक युक्ति निकाली। उसने मालिनका वेष किया और एक छाबड़ेमें पक्की नारंगियाँ लेकर वह शाहज़ादेके पास पहुँच गयी। शाहज़ादेने उससे नारंगियाँ क्रय कर पाँच सोनेके टके दिये और नारंगियाँ दो-दो चार-चार करके उसने उपस्थित परिचारिकाओंको बाँट दीं। उस समय वह मालिन चली गयी, किन्तु थोड़ी देर बाद वह लौटकर पुन. आयी और अपनी नारंगियाँ वह शाहज़ादेसे यह कहकर वापस माँगने लगी कि वे एक-एक मुहरकी दावर दानिशमन्दकी कन्याके द्वारा माँगी जा रही थीं। शाहज़ादेने कहा कि वे खायी जा चुकी थीं। ढाढिनीने कहा कि वह एक नहीं सुन सकती थी और यदि नारंगियाँ वापस न हुईं तो वह सुलतानसे कहने जा रही थी। शाहज़ादेने पूछा कि वह कौन-सी और कैसी कन्या थी जो इतने अच्छे दाम दे रही थी। इस प्रश्नपर उस मालिनने अपना वास्तविक परिचय दिया और शाहज़ादेको अपना अभिप्राय बताया। तदनन्तर वह उस कन्याका नख-शिख वर्णन करने लगी और उसने उसके अंगोंका विशद वर्णन किया। शाहज़ादेने विश्वास नहीं किया और कहा कि यदि वह उसे साथ ले चलकर उस कन्याको दिखाती तो उसे ही विश्वास हो सकता था। मालिनने कहा कि वह जुमरात (बृहस्पति) को मिल सकती थी यदि राजकुमार फ़कीर बनकर दावरके यहाँ पहुँचता और अन्य फ़कीरोंके साथ उबले हुए गरम चावलोंकी याचना करता। यह कहकर वह चली गयी।

[अनु० २०-२७] जुमरात आयी और शाहज़ादा जुमा मसजिदमें पहुँचा, जो दावरके घरसे मिली हुई थी। वहाँ उसने देखा कि झुण्डके झुण्ड दरवेश आये हुए थे जिनमें-से बहुतेरे दावरके घरसे उसकी सहन तक किसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु उसे देखकर वे तमाम दरवेश यह कहते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे कि खुदाका फ़रिश्ता आया हुआ था। इस हलचलका लाभ उठाकर शाहज़ादेने उनके छोड़े हुए फकीरी उपकरणोंको धारण कर लिया और जिस समय सुलतान नमाज़के लिए गया, वह दावरके दरवाज़ेपर जा पहुँचा और वह भी अन्य दरवेशोंके साथ उबले हुए गरम चावलोंकी याचना करने लगा। दावरकी कन्या वहाँपर उस ढाढिनीके साथ उपस्थित थी। ढाढिनीने शाहज़ादेको उसे दिखलाया। दोनोंने एक-दूसरेको देखा और वे पारस्परिक आकर्षणसे आबद्ध हो

गये। शाहज़ादेने सोचा कि वह दावरकी उस कन्याको भगा ले जाये और इसके कन्धे भी फड़कने लगे। ढाढिनी यह ताड़ गयी। उसने सोचा कि यदि यह उसे भगा ले गया तो लोग उसे ही वदनाम करेंगे, इसलिए उसने शाहज़ादे-से संकेतोंमे कहा कि कुछ समय तक वह और प्रतीक्षा करे; किन्तु इसी अवसर-पर शाहज़ादेके प्रति दावरकी कन्याने अपने प्रणयका निवेदन किया और शाह-ज़ादेने वचन दिया कि वह आमरण उससे प्रेम करेगा।

[अनु० ३८-५१] नमाज़ ख़त्म करके सुलतान और उसके पीछे-पीछे शाह-ज़ादा वापस हुए। शाहज़ादा अपनी माता वीवी विवानांके महलमें गया और वहीपर पर्यंकमे पड़ गया। उसकी दशा विगड़ चली। सवेरा हुआ। वैद्य उपचार करने लगे, दानिशमन्द झाड़-फूंक करने लगे, किन्तु कोई लाभ न हुआ। दानिशमन्दोंको देखकर वह चिल्ला पड़ता, 'अरे यह साहिवाँकी नज़र है, साहिवाँकी नज़र है, (जिसके कारण) न मैंने रात जानी है और न फ़ज़र (प्रातः) जाना है।" वादशाहने सुना तो वह कुपित हुआ कि दरवेशोंने उसपर नजर कर दी है। किन्तु वीवी विवानांको विश्वास यह था कि फ़कीरोंकी दुआओंसे वह चंगा हो जायेगा और उसने प्रचुर धन शाहजादेपर वारकर फ़कीरोंको दिया। फिर भी शाहज़ादेकी दशामें कोई सुधार न हुआ और जव भी कोई दानिशमन्द उसकी झाड़-फूंकके लिए आता और अंजलिमें पानी लेता, शाहज़ादा उससे कह उठता, "अरे यह साहिवाँकी नज़र है, साहिवाँकी नज़र है, जिसके कारण न मैंने रात जानी है और न फजर (प्रातः) जाना है।" इसी प्रकार कई दिन वीत गये और कोई युक्ति न चली।

[अनु० ५२-७५] उधर साहिवाँ भी खाटपर पड़ गयी। ढाढिनीसे उसने नाड़ी देखनेको कहा तो ढाढिनीने उसकी नाड़ी देखकर वताया कि उसके दिल-मे एक और दिल आ गया था, जिसके कारण उसकी नाडी दुहरी चल रही थी : एक तो उसकी थी और दूसरी शाहज़ादेकी थी, जिसके परिणामस्वरूप जव खाना उसने गरम खाया, शाहज़ादेका दिल झुलस गया; ये दोनों दिल जुड़े ही रहनेवाले थे और जुड़े हुए ही इस लोकसे विदा होनेवाले थे। यह कहकर उसने वैद्याका वेष वनाया और सुलतानके दरवारमें उपस्थित हुई। लोग उसे वहाँ ले गये जहाँपर शाहजादा पड़ा हुआ था। ज्योंही उसने अंजलिमें पानी लिया, शाहज़ादा पुनः पूर्ववत् चिल्ला उठा। वैद्याने उसे ढाढ़स दिलाया और नाडी दिखानेको कहा। राजकुमार उसे पहचान गया। वैद्याने रोगका निदान कर लिया और रोगीने भी उस रोगको स्वीकार कर लिया। शाहज़ादेने नेत्र

खोल दिये। विवानाँ द्रव्य लुटाने लगी। वैद्याने ढोलक मँगायी और उसकी तालपर वह गाने लगी। जैसे ही उसने एक दूहा गाया, शाहज़ादा उठ बैठा। दूहेमें उसने बताया कि साहिबाँके हृदय-सरोवरमें अब वह हंस बनकर केलि कर रहा था, किन्तु उसकी दशा अब शोचनीय हो रही थी। यह सुनते ही शाह-जादेका शरीर काँपने लगा। बीबी विवानाँने इसका कारण पूछा तो वैद्याने बताया कि शाहजादेके दिलमें एक और दिल आ गया था, इसलिए ऐसा हो रहा था और कहा कि शाहज़ादेके स्वस्थ होनेका एकमात्र यही उपाय था कि दोनों दिल मिल जाते, अन्य कोई युक्ति काम नहीं कर सकती थी। उसने बताया कि शाहज़ादा और दावर दानिशमन्दकी कन्याने एक-दूसरेको जुमा मसजिदमें भरपूर देख लिया था, जिससे दोनोंकी यह हालत हो गयी थी। विवानाँने जाकर यह बात सुलतानसे कही। सुलतान दौड़ा-दौड़ा दावरके पास आया और उससे बताया कि शाहजादा जी गया है, पर अब उसे अपनी कन्या-का विवाह उसके साथ करनेके लिए प्रस्तुत होना चाहिए। दावरने इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार किया।

[अनु० ७६-८८] विवाहकी तैयारी हुई। बीबी विवानाँके साथ शाहज़ादा दावरके दरवाजेपर पहुँचा। इस अवसरपर ढाटिनी अपने सच्चे रूपमें उपस्थित हुई और उसने सेहरा गाया। विवाह सम्पन्न हुआ। साहिबाँ शाहज़ादेके साथ विदा होकर उसके घर गयी। सवेरा होनेपर ढाटिनी शाहज़ादेके घरपर गयी और उसने दोनोंके प्रथम रात्रिके मिलनका वर्णन गीतोंमें किया। अब दोनोंके दिन नित्य-नवीन केलिके साथ व्यतीत होने लगे।

[अनु० ८९-१००] ऋतु बदली। वसन्तके बाद ग्रीष्मका आगमन हुआ। प्रासादको ग्रीष्मोचित उपकरणोंसे सज्जित किया गया। शाहज़ादेको भोग और योगमें समान रुचि थी। गायक कभी उसे भोगके गीत सुनाते, कभी योगके, यह सोचकर कि न जाने उसे दोनोंमें कौन-से रुचें। एक दिन दो नटिनियाँ आकर खड़ी हुई। एक योगिनीका स्वांग किये हुए थी और दूसरी भोगिनीका। योग और भोगके समर्थनमें दोनोंने अपने-अपने दूहे कहे और फिर वे चली गयी।

[अनु० १०१-११४] रात्रि होने लगी थी, शाहज़ादेको कुछ ठण्ड-सी लगी। उसने साहिबाँसे आसव मँगाया। साहिबाँ दौड़ी-दौड़ी गयी। दो बार उसने प्याले भर-भर कर दिये। तीसरी बार जब वह प्याला भरने गयी, उसके हाथसे प्याला गिरकर टूट गया। वह डरती हुई सासके पास गयी। शाहज़ादे-ने देखा कि वह देर तक नहीं आयी थी, तो वह उसकी खोजमें निकला। फर्श,

पर बिछी हुई अधीरमें उसे साहिबांके पदचिह्न दिखाई पड़े और साथ ही वह प्याला भी टूटा मिला। वह हँस पड़ा और मनमें उसने कहा, "मैंने करोड़की ख़ैरात करनेका अपने मनमें संकल्प किया था और यह .खूब रहा कि पत्थरोंका यह प्याला टूट गया और उससे डरकर मेरी पत्नी भाग गयी।" इतनेमें उसकी माँ वहाँ आ पहुँची। शाहज़ादा सकुच गया। माँने कहा, "साहिबांने तुमे .खून [करनेका जैसा जुर्म] किया।" शाहज़ादेने पूछा, "माँ, .खून क्या ?" माँने कहा, "साठ लाखका क्रय किया हुआ प्याला टूटा पड़ा है; और क्या .खून ?" शाहज़ादेने कहा, "माँ, मैं तो सुल्तान फीरोजशाहका उत्पन्न किया हुआ और समरकन्दकी शाहज़ादी बीबी बिबानांका जन्म दिया हुआ हूँ—साहिबांका न्याय [भले ही] उसके पिता दावरके पास हुआ करे।" यह कहकर जब उसने लाल-निर्मित दो पात्र मँगाये तो न जाने कितने आ गये और एक-एक करके उन सबको उसने माताके सिरपर वार—फेंककर तोड़ डाला। उस समय सारी धरती लाल हो रही थी। सुलतानने सुना। उसने जौहरियोंको बुलाकर उनकी कीमत अँकवायी। उन्होंने बताया कि तीन अरब बासठ करोड़ बारह लाखकी सम्पत्ति कुतुबुद्दीनने गँवा दी थी। सुलतानने हुक्म दिया कि टुकड़े भण्डारमें रख दिये जायें। कुतुबुद्दीनने निवेदन किया, "उत्तराधिकारमें टुकड़े पाऊँगा तो तुम्हारा नाम न चलेगा।" सुलतानने कहा, "तू जो चाहे सो करे, वह सब तेरा ही है।" सुल्तानने हुक्म दिया; वे टुकड़े गवाक्षोंपर चुन दिये गये, फ़क़ीर उन्हें लूटने लगे और बाजे बजने लगे।

रचनाकी ऐतिहासिकता

रचनामें वर्णित घटनाएँ किसी इतिहास-ग्रन्थमें नहीं मिलती हैं। उसमें सुलतान फीरोज़शाह, बीबी बिबानां, शाहज़ादा कुतुब, दावरकी कन्या साहिबां, दावर दानिशमन्द तथा देवर डाकिनीके नाम आते हैं। अलग-अलग फीरोजशाह और कुतुब नामके एकसे अधिक सुल्तान और शाहज़ादे इतिहासके पृष्ठोंमें मिलते है, किन्तु किसी सुलतान फीरोजके साथ शाहज़ादेके रूपमें किसी कुतुबका नाम उनमें नहीं मिलता है। इतिहासमें प्रायः उन्हींके नाम आते हैं जो या तो गद्दीपर बैठते है, या तो किसी प्रकारका इतिहासमें उल्लेखनीय कार्य करते हैं। इस कथामें कुतुब ऐसा कोई कार्य नहीं करता है जो ऐतिहासिक महत्त्वका हो, और न सुल्तान फीरोजशाह ही कोई ऐसा कार्य करता है जो उसकी जीवनीमें उल्लेखनीय महत्त्वका माना जा सकता। इसलिए, यदि वर्णित घटना अथवा रचनाके पात्रोंपर इतिहाससे कोई प्रकाश नहीं

पड़ता है तो आश्चर्य न होना चाहिए। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि वर्णित कथा सर्वथा कल्पित है। रचनामें कल्पनाके पुटके साथ वास्तविकताके तत्त्व होंगे, ऐसा स्पष्ट ज्ञान होता है। किन्तु कथा, कथा ही है, इतिहास नहीं। इसलिए यदि इतिहासके साक्ष्य उसकी पुष्टि न करते हों तो भी रचनाका महत्त्व एक ऐतिहासिक लघुकथाके रूपमें निश्चित है और निस्सन्देह यह रचना मुगल साम्राज्यकी स्थापनाके पूर्वके भारतीय वायुमण्डलमें पनपते हुए सूफी दर्शनसे प्रभावित इस्लामी जीवनपर अच्छा प्रकाश डालती है। यह कहना अनावश्यक होगा कि हिन्दीमें अपने ढंगकी यह अकेली रचना है, भारतकी अन्य भाषाओंमें भी कदाचित् ऐसी रचनाएँ कम ही होंगी।

रचनाकी कथा-सम्पत्ति

रचनाकी कथा-सम्पत्ति साधारण है। नायक-नायिकाके जीवनकी दो ही घटनाएँ सामने रखी गयी हैं : एक है उनका पति-पत्नीके रूपमें बँधना और दूसरी है कुछ बहुमूल्य पात्रोंका तोड़-तोड़कर फ़क़ीरोंमें वितरित करना।

पहली घटनाके लिए कवि एक चतुरतापूर्ण युक्तिका आश्रय लेता है : वह एक ढाढिनीकी कल्पना करता है जो मालिन, वैद्य और ढाढिनी—तीन रूपोंमें कथाको आगे बढ़ानेमें समर्थ होती है। मालिन बनकर वह शाहजादेसे साहिबांके रूपकी चर्चा करती है और उसे उससे मिलनेके लिए प्रेरित करती है, शाहजादेके विरहोन्मादका वैद्य बनकर उपचार करती है और जब दोनों विवाह-द्वारा एक-दूसरेको प्राप्त करते हैं, सेहरा और मिलन-यामिनीके गीत गाकर उनका मनोरंजन करती है। इसके बाद ही वह कथासे अलग हो जाती है। इस प्रकारकी दूतीकी कल्पना मध्ययुगमें बहुत प्रचलित रही है, और रचनामें इस विषयमें कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ती है। उसके द्वारा किया हुआ रूप-वर्णन, और नायिका तथा नायकके रोगोंका निदान अवश्य सरल और विनोदपूर्ण है।

दूसरी घटनाके लिए नायिका-द्वारा एक बहुमूल्य प्यालेके फूटने और उसके कारण उसकी सासके कुपित होनेके प्रसंग जुटाये गये हैं। इस दूसरी घटनाके पूर्व कविने दो छोटे-छोटे संकेत और रखे हैं जो आनेवाली घटनाके लिए पाठकको तैयार करते हैं : एक तो गायकों-द्वारा योग (ज्ञानयोग) और भोग (प्रेमयोग) के गीतोंका गाया जाना—और यह सोचकर गाया जाना कि दोनों विषयोंमें-से पता नहीं कौन-सा नायकको रुचे, दूसरा दो नटिनियोंका

योगिनी और भोगिनीके वेषमे उपस्थित होना और अलग-अलग ज्ञानयोग तथा प्रेमयोगकी प्रशंसा करना। पहला संकेत तो सर्वथा अविकसित है, किन्तु दूसरा कलात्मकताके साथ विकसित किया गया है, जैसा हम आगे देखेगे। कुछ ऐसा लगता है कि शाहज़ादा इस समय जीवनके एक मोड़पर आ गया था। जीवन-की सार्थकताके सम्वन्धमे वह चिन्ता करने लगा था, यद्यपि यह चिन्ता कवि-की रचनामे सर्वथा मूक है। इसी समय प्यालेके अकस्मात् टूटने और उसपर एक ववण्डर खड़े होनेकी घटना घटित होती है, जो उसकी परमार्थ-वृत्तिको और भी उद्दीप्त कर देती है और वह एक अप्रत्याशित ढगसे अपनी उस वृत्तिको अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

नायकके चरित्रमे यह मोड़ किस प्रकार आता है, इसको अंकित करनेका कविने कोई प्रयास नही किया है। उपर्युक्त घटनाके वाद शाहजादेका जीवन किस दिशामे प्रवाहित होता है, यह जाननेकी भी उत्सुकता पाठकके मनमे वनी रह जाती है। वर्णित घटना तो उसके परमार्थ-पथका प्रथम चरण मात्र है।

दोनो घटनाओमे कोई सम्वन्ध भी नही ज्ञात होता है। कुछ-कुछ ऐसा लगता है जैसे विवाह होता या न होता, दूसरी घटना किसी-न किसी रूपमे कोई-न-कोई वहाना पाकर अवश्य ही घटित होती। नायकके परमार्थ-पथमे नायिकाका प्राप्त होना उसका प्रथम चरण भी नही प्रतीत होता है। नायिका-को प्राप्त करनेमे नायकको वाधा होती है और उसको अनायास न पानेके कारण वह विरहोन्माद-रुग्ण हो जाता है, नायककी इतनी ही तपस्या उसकी प्रेम-साधनामें दिखाई पड़ती है।

किन्तु यह निश्चित ज्ञात होता है कि कथा एक सूफी कथा है, जिसमे प्रेम-योग और ज्ञान-योगका अच्छा पुट दिया गया है। कथाका पूर्वार्द्ध सम्भवतः प्रेम-परक है और उत्तरार्द्ध सम्भवत. त्याग-परक, यद्यपि यह भी वहुत स्पष्ट नही है।

पर यह सूफी कथा अन्य सूफी कथाओसे किंचित् भिन्न है, फारसकी सूफी कथाओंमे प्रेमपात्रकी निष्ठुरता और प्रेमीके उससे मिलनकी दुर्गमता अत्यधिक अतिरंजनाके साथ चित्रित की जाती है। इस कथामे यह अतिरंजना नही है। अवधीकी सूफी कथाएँ या तो विवाह और मिलन-यामिनीपर समाप्त हो जाती है, और या तो दु खान्त रूपमे नायक-नायिकाके जीवनकी समाप्ति अंकित करती हैं। इस कथामे यह भी नही है। इस कथाकी अन्तिम घटना जीवनमे दान और त्यागका महत्त्व अकित करती है।

सब-कुछ मिलाकर रचनाकी कथा-सम्पत्ति सामान्य ही ज्ञात होती है, उसका महत्त्व इस बातमें है कि अबतक प्राप्त हिन्दीकी सूफी प्रेमकथाओंको पढ़कर उनके सम्बन्धमें जो हमारी धारणा बनी थी, उस कथाको पढ़कर उसमें कुछ संशोधन करना आवश्यक प्रतीत होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि अवधी क्षेत्रमें सूफी प्रेमकथाओंकी एक परम्परा विकसित हुई थी जबकि हिन्दीकी अन्य बोलियोंके क्षेत्रोंमें उससे किंचित् भिन्न सूफ़ी काव्य-परम्पराएँ विकसित हुई थीं, जिनपर आगेकी खोजोंसे अधिक प्रकाश पड़ेगा।

रचनाकी भाव एवं विचार-सम्पत्ति

रचनाकी प्रथम घटना भाव-सम्पत्ति प्रधान है। नायक और नायिका परस्पर दर्शनके अनन्तर विरह-व्याधिसे रुग्ण हो जाते हैं। नायिका तो फिर भी मर्यादाओंके भीतर रहती है, नायक मर्यादाओंका अतिक्रमण कर जाता है। वह उन्मादग्रस्त हो जाता है और तभी स्वस्थ होता है जब उसे नायिकाके प्राप्त होनेका विश्वास हो जाता है। किन्तु प्रेमयोगकी इस कथामें भाव-कल्पना सामान्य है। आशा और निराशाके द्वन्द्वों, उद्देश्य-प्राप्तिके मार्गकी बाधाओं और उनसे संघर्ष करनेकी भावनाओंका विकास कथामें नहीं किया गया है। पहले कविने संकेत तो किया है कि सुलतान दोनोंको मिलने न देगा :

"साहिजादे साहिब्बियाँ साहि करंदे जल्लि।
लज्जा लोयिन नच्चणां लोइ हसंदे कल्हि ॥३४॥"

तथा

"साहिबा साहिब्या विरह जइ जीवंदा जाइ।
लज्जा लीक उलंघणी सिर पर पेरो साहि ॥६५॥"

किन्तु आगे इस सूत्रका विकास बिलकुल नहीं किया है। यह ठीक है कि उन्माद-ग्रस्त पुत्रके स्वस्थ होनेका एकमात्र उपाय उसकी मनचाही प्रेयसीका प्राप्त होना था, यह समझकर ही सुलतानने उक्त सम्बन्धके लिए अपनी स्वीकृति दी होगी, किन्तु एक क्षणके लिए भी तो इस प्रकारकी विवशताका भाव कविने सुलतानमें अंकित किया होता। जैसे ही शाहजादेकी माता उससे पुत्रके रोगका कारण बताती है और उसका उपाय करनेको कहती है, सुलतान कह उठता है :

"जहमतियाँ क्या जाणइ।
जिमी आकास तल होइ तउ हम आणइ।"

और जब वह कहती है : "दावल दानसवंद कइ आगलि विछाओ ऊली।" तो सुलतान बिना एक शब्द कहे उस युक्तिको मान लेता है : "सुलताण मानी। दीन दुणियां एक ठउड होत जांणी ॥७३" और वह नंगे पैरो दावरके पास दौड़ा जाता है। पुत्रका स्नेह बड़ी चीज है और उसके जीवनके लिए बहुत-कुछ किया जा सकता है। किन्तु यह सब रचनामे ऐसे ढंगसे हुआ है जैसे पुत्र-मोहने सुलतानको एकदम विवेक-शून्य कर दिया हो। यह अस्वाभाविक तो नही है, किन्तु रचनामें भाव-सम्पत्तिकी कमीको अवश्य व्यंजित करता है।

दूसरी घटना विचार-प्रधान है। इसे कविने कुछ अधिक योग्यताके साथ पल्लवित किया है। वसन्त ऋतु समाप्त हो गयी है और ग्रीष्मका आगमन हो गया है। प्रासाद ग्रीष्मका सामना करनेके लिए सज्जित किया गया है। यह ग्रीष्म तप और साधनाका प्रतीक ज्ञात होता है। शाहजादेके सम्मुख जो गीत गाये जा रहे है वे या तो योग (ज्ञानयोग) के हैं और या तो भोग (प्रेमयोग) के। नटिनियाँ योगिनी और भोगिनीका वेप धरकर उसके समक्ष उपस्थित होती है और दूहे कह-कह कर अपने-अपने पक्षका समर्थन करती हैं। इसी समय नायिका (उसकी प्रेयसी)से प्याला टूटनेका प्रसंग घटित होता है और शाह-जादेकी परमार्थ-वृत्ति एक उग्र रूप ग्रहण कर प्रकट हो पड़ती है। जहाँ वह प्याला टूटा देखता है वही प्रेयसीके पग-चिह्न भी देखकर वह समझ जाता है कि इसी कारण वह भाग गयी है और वह हँस पडता है। वह कह उठता है :

> "पइर करंदा कोडि कहि मन अप्पणइ विचारि।
> पूत्र स पत्थर भग्गिया विभग न भग्गी नारि ॥१०७"

और कवि कहता है :

> "साहिजादा हसता हइ। पग देपि देपि ऊलसता हइ। १०८"

पुनः माँ जितनी ही इस सम्पत्ति-विनाशपर क्षुब्ध होती है, उतना ही पुत्र और भी उस सम्पत्ति-विनाशमे संलग्न होता है। पिता जब उसके टुकडोको संग्रहके लिए आदेश करता है, वह इसका भी विरोध करता है और उन्हें फकीरोमे वितरित करनेका अनुरोध करता है जिसे पिता स्वीकार करता है। कहना न होगा कि दूसरी घटनासे यह प्रकट है कि रचनाका प्रमुख सन्देश त्याग और दानका है जिनका सूफी धर्म और इस्लाममें बड़ा महत्त्व है।

रचनाको काव्य-सम्पत्ति और शैली

रचनामें दो स्थल कविताकी दृष्टिसे कलापूर्ण हैं, एक तो ढाढिनी-द्वारा

किया हुआ नायिकाका रूप-वर्णन और दूसरा नटिनियोंके द्वारा प्रस्तुत किया हुआ ज्ञानयोग और प्रेमयोगका तुलनात्मक स्तवन। नीचे हम इन दोनोंकी विशेषताओंपर दृष्टिपात करेंगे।

रूप-वर्णन शिख-नख-प्रणालीका है। मानवीका रूप-वर्णन इसी प्रणालीपर इस देशमें किया जाता रहा है। कवि केशोंसे यह रूप-वर्णन प्रारम्भ करता है:

"केसा कै कसि बधियां नै छुट्टियां रुलंति।
जाणुं सपंनि अप्पणा चर तिहुआ भखंनि॥ ११"

नायिकाके केश दो प्रकारके हैं: कुछ तो लम्बे हैं जो वेणीके रूपमें कसकर गूँथे हुए हैं, और कुछ छोटे हैं जो वेणीमें नहीं गुँथ सके हैं और जो हवाके लगनेसे हिल रहे हैं। दोनों प्रकारके ये केश एक-साथ ऐसे लग रहे हैं मानो वे छोटे बाल सर्पिणीके रेंगते हुए बच्चे हों जिन्हें वह पकड़-पकड़कर खा रही हो। केशोंकी ऐसी गतिशील उपमा अन्यत्र देखनेमें नहीं आती है। वेणीमें न आये हुए छोटे-छोटे बाल हिल रहे हैं, इसलिए रेंगते हुए सर्पिणीके बच्चोंसे उनकी तुलना उपयुक्त ही है, किन्तु इनके आगे भी, ये वेणीसे मिले हुए हैं, इसलिए उनके सम्बन्धमें यह उक्ति कि मानो सर्पिणी उन्हें खा रही है, एक अत्यन्त जीवन्त कल्पना है। सर्पिणी अपने बच्चोंको खा जाती है, यह प्रसिद्ध ही है।

अब वह नायिकाके नेत्रोंका वर्णन कर रहा है, जो यौवनागमके कारण चंचल हो रहे हैं। वह कहता है:

"अंगन चंद निलाटियाँ भृ तर नच्चर नयण।
जाणे आण बधाइयाँ आगम हुंदा मयण॥१२॥"

"उस अंगनाका ललाट चन्द्रमाके सदृश है और उसकी भौंहोंके नीचे उसके नेत्र नाच रहे हैं, इसलिए वे ऐसे लगते हैं मानो वे मदनके आगमनपर बधाइयाँ लेकर प्रस्तुत हो रहे हैं।" बधाइयाँ लानेकी एक विशेष प्रथा हिन्दी प्रदेशमें प्रचलित रही है। किसी हर्षके अवसरपर—यथा पुत्रोत्पत्ति और पुत्र-विवाह पर—बहनें या बेटियाँ उपहार लेकर आती हैं। यह उपहार गाजे-बाजेके साथ लाया जाता है। पास-पड़ोसकी स्त्रियोंको लेकर वे गाती-बजाती-नाचती चल पड़ती हैं और इस उत्सवपूर्ण आयोजनके साथ अपने उपहार प्रस्तुत करती हैं। नायिकाके नेत्रोंमें जो चपलता आ गयी है, उसकी कल्पना कवि इसी प्रकारके नृत्यसे करता है जो मदन नरेशके आगमनपर बधाइयाँ लाते हुए प्रस्तुत किया जा रहा है। अपने प्रिय शासकके आगमनपर नेत्रोंका

उपढौकन लेकर नाचते हुए उसकी सेवामें उपस्थित होनेकी यह कल्पना वेजोड है।

अव वह नायिकाकी वेणीसे लटकनेवाले एक मोतीका वर्णन कर रहा है। वह कहता है :

"वइंणी वंधि विलंविया मुत्ती हेक रुलंति।
जाने सीप सुमुष्पीयां कंठइ कीर चुणंति ॥१३॥"

"वेणीसे बँधकर लटकता हुआ मोती (नायिकाके नेत्रोके मध्य नासिकापर) इस प्रकार लोट रहा है मानो जिस सीपी-पुटमें-से वह निकला हो उसके समक्ष ही (वैठकर) पासका शुक उसे चुगनेका यत्न कर रहा हो।" उस मोतीके प्रसंगमे नेत्रोंकी सीपियोसे तुलना कितनी सरस हो गयी है। मोतीके शुक-द्वारा चुगे जानेकी कल्पना नवीन नहीं है, नासिकाभरणोमे पड़े हुए मोतीके सम्वन्धमे यह कल्पना प्राय. मिलती है। किन्तु इस कल्पनामे विशेषता यह है कि उस सीपीके फलकोंकी समक्षतामे ही यह मोती शुक-द्वारा चुगा जा रहा है जिससे इसकी उत्पत्ति हुई है। व्यंजना यह है कि यह वात उस सीपीको कितनी खल रही होगी जिसकी सुकुमार सन्तानकी यह दुर्गति उसके सामने हो रही है !

अव कवि नायिकाके किंचित् उभडते हुए उरोजोका वर्णन कर रहा है। वह कहता है :

"ही उट्ठा दिट्ठाइयाँ दीहा पंचइ च्यारि।
जाणे नी नारिगियाँ वे अँगीया मझारि ॥१४॥"

"उसके उरोज चार-पाँच दिनोसे ही उठते हुए दिखाई पड़ने लगे है और वे ऐसे है मानो हू-व-हू दो नारंगियाँ उस नायिकाकी कंचुकीमें रख दी गयी हो।" यह कल्पना अवश्य लोक-साहित्यमें वहु-प्रयुक्त है और इसमे कोई उल्लेखनीय नवीनता नही है।

अव वह नायिकाकी कटिका वर्णन करता है। वह कहता है .

"लंक धनक्कइ मुट्ठियाँ विधि रसु रंगी वाम।
हत्था कांम स पीउ भउ पिय हत्था भउ कांम ॥१५॥"

"उस कामिनीकी कटिको मुट्ठीमे लेकर विधाताने जो उसे रस (प्रेम) मे रँगा, उमीसे कामके हाथ पीले पड गये और उस कामिनीको हाथोंमे करनेकी कौन कहे, काम स्वयं उस कामिनीके हाथो (वश) मे हो गया।" खिलौने

प्रायः कटि-प्रदेशसे ही पकड़कर रंगे जाते हैं, अतः कामको भी जब अपने मादक रंगसे उस कामिनी-पुत्तलिकाको रँगना हुआ होगा, उसकी कटिको उसने अपने हाथकी मुट्ठीमें लिया होगा, किन्तु परिणाम यह हुआ कि उस नायिकाके शरीरके सहज वर्णसे उसकी हथेलियाँ पीली पड़ गयी और वह स्वयं भी उस कामिनीके वशमें हो रहा। यह कल्पना भी सरस प्रतीत होती है।

अब वह नायिकाके चरणों और उसकी उँगलियोंका वर्णन कर रहा है। वह कहता है :

"पाइ स रत्तां पंकजां अट्ठी अंगुलियांह।
जाणे राई वेलियां फूली नीकलियांह ॥१६॥"

"उसके चरण लाल पंकज हैं और उनकी उँगलियाँ ऐसी सुन्दर है मानो राईकी गाछमें निकली हुई फलियाँ हों।" कहना नही होगा कि राईकी नयी निकली हुई फलियोंसे पैरोकी उंगलियोंकी तुलना सुन्दर है, नवीनता तो इसमे है ही।

रूप-वर्णनके ये दोहे गिनतीमे छ. हैं, किन्तु इनमें-से कई ऐसे हैं जिनमे कल्पनाकी जीवन्तता और व्यंजकता अद्भुत मात्रामे मिलती है। सभी उपमाएँ भारतीय जीवनसे ली गयी हैं, यह भी दर्शनीय है।

योगिनी और भोगिनीका स्वाँग करके नटिनियोंने जिस ज्ञानयोग और प्रेमयोगका स्वरूप प्रस्तुत किया है, उसमें उन्होने एकमात्र नेत्रोंका माध्यम लिया है। एक प्रेमके नेत्रोंका वर्णन करती है और उनका बखान करती है तो दूसरी ज्ञानके नेत्रोंका वर्णन करती है और उनका बखान करती है। भोगिनी कहती है :

"लोयण ते लोइंदिए जे दिट्ठां ही पिट्ठ।
पाधर सर जिम कढ्ढीइं नेह समट्ठा निट्ठ ॥९८"

"लोचन तो वे ही देखते हुए होते हैं जो देखते-देखते प्रविष्ट हो जाते है और जो स्नेहमे ऐसे दृढ़ और पुष्ट होते है कि उनको निकालना (चुभे हुए) शरोंको सीधा निकालने-जैसा (कठिन) होता है।" अनीयुक्त बाणोंको सीधे निकालनेकी कठिनाईसे नेत्र-बाणोंके निकाले जानेकी कठिनाईकी तुलना अच्छी बन पड़ी है।

योगिनी कहती है :

"लोयण ते लोयंदीइ जे लोअंदे जग्ग।
अप्पा काम कमच्छलां वहु देपंदा कग्ग ॥९३"

"लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो जगत् (की वास्तविकता) को देखते होते हैं; अपने-आपको तथा अपने कर्म और कर्मछलको बहुतेरे काग भी देखते होते हैं।" स्वार्थी और कर्मछल-पटु व्यक्तिकी तुलना कागसे स्वाभाविक लगती है।

भोगिनी कहती है :

"लोयण ते लोइंदीए जे पेम सु वुट्ठइ धार।
रीझडियां झड मंडिकइ मव्वसु अप्पण हार ॥९४"

"लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो प्रेम धाराकी वृष्टि करते हैं और रीझ जानेपर उसकी झड़ी लगाकर सर्वस्व अर्पित करनेवाले होते हैं।" प्रेमी नेत्रोंकी तुलना उन मेघोंसे कितनी सटीक बैठी है जो झड़ी बाँधकर अपना सब-कुछ दे डालते हैं! प्रेम सच्चा वही है जो प्राणीको निःस्वार्थ त्यागके लिए प्रेरित कर सके।

योगिनी कहती है :

"लोयण ते लोइंदीए जे लोइंदे अप्प।
तीन्ही तिनि अवत्थडी कउ ण करंदा वप्प ॥९५"

"लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो आत्मको देखते होते हैं। उनकी तीन ही अवस्थाएँ—जाग्रत, स्वप्न और तुरीय होती हैं; वे कभी भी अपने-आपको ढँकते नहीं हैं—सुषुप्तिको नहीं प्राप्त होते हैं। इस कथनमें कोई कल्पना नहीं है, कहनेके ढंगमें अभिव्यक्तिकी सरलता-मात्र है।

भोगिनी कहती है :

"लोइण ते लोइदीए जो अणरत्ता ही रत्त।
दीया देह स दज्झिया तोइ पडंदा पत्त ॥९६"

"लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो (मादक द्रव्यादिसे) रक्त न होते हुए भी रक्त होते हैं, जिनका देह (पतिंगोंकी भाँति) दीपकसे दग्ध हो गया होता है तो भी जो (दीपकके पास) पहुँचकर उसमें पड़ते ही हैं।" प्रेमीकी पतिंगेसे तुलना पुरानी ही है, किन्तु 'दीया देह स दज्झिया' में नवीनता है : पतिंगे अनुभव कर रहे हैं कि दीपक उनको झुलसाकर अधमरा कर चुका है फिर भी वे सहर्ष उसपर अपने जीवनका उत्सर्ग करनेके लिए पहुँच ही जाते हैं।

योगिनी कहती है :

"लोयण ते लोइंदीए जे जुग जोइ अरत्त ।
माया ओढण भुल्लिया जांणि कलाली मत्त ॥९७"

"लोचन तो वे देखते हुए होते है जो जगत्को अरक्त भावसे देखते हैं और मायाको उसी प्रकार भूले होते है जैसे कलाली मत्त व्यक्तिको भूल जाती है।" कलालीके द्वारा मत्त व्यक्तिकी उपेक्षा और योगी-द्वारा की गयी जगत्की उपेक्षा-की तुलना अच्छी बन पड़ी है।

भोगिनी कहती है :

"लोइण ते लोइंदीए जे अंबा ही अब्भ ।
ज्युं होइ पाउस रंगीया ताइ मिलंदा सब्भ ॥९८"

"लोचन तो वे देखते हुए होते है जो जलवाले बादलोंके सदृश होते है—जैसे ही पावस उनके हृदयको अनुरंजित कर देता है, वे (जलके रूपमें अपना सर्वस्व अर्पण करनेको) इकट्ठे हो जाते हैं।" जलसे आर्द्र बादलोंसे प्रेमी नेत्रों-की तुलना अवश्य ही सरस बन पड़ी है।

योगिनी कहती है :

"लोइण ते लोइंदीए जे जाणि परंदा गत्त ।
को घड़िया घर लग्गीया रत्ता तोइ अरत्त ॥९८"

"लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो गत (गये) से जान पड़ते हैं। यदि किसी घड़ी वे घर (गृहस्थी) से लगे भी हुए होते हैं तो वे उससे रक्त (अनुरक्त) (ज्ञात) होते हुए भी अरक्त ही होते हैं।" इस कथनमें कोई वैशिष्ट्य नहीं है, किन्तु अन्तिम शब्दोंमें विरोधाभासका किंचित् चमत्कार है।

भोगिनी कहती है :

"लोइण ते लोइंदीए जे रंगइ करियांह ।
वीकर वाजि न चड्डही ज्युं गज वंगरियांह ॥१००"

"लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो एकमात्र रंग (प्रेम) करते हैं और प्रेम करके जो फिर कुछ भी और नहीं करते है, जैसे घोड़ेपर चढ़नेवाला व्यक्ति घोड़ेको बेचकर विकृत अंगवाले हाथीपर नहीं चढ़ता है।" प्रेमके मार्गपर लग जानेके बाद और किसी मार्गमें लगनेकी तुलना घोड़ेको बेचकर विकृत अंगवाले हाथीपर चढ़नेसे अच्छी जमी है।

स्पष्ट है इस स्वांगमे भोगिनी (प्रेमयोगिनी) के कथन जैसे चमत्कारपूर्ण हैं वैसे योगिनी (ज्ञानयोगिनी) के नही। दूसरी वात यह द्रष्टव्य है कि ये कथन उत्तर-प्रति-उत्तरके रूपमें नही हैं, अर्थात् एकका दूसरेसे कोई सम्बन्ध नहीं है, दोनों अपने-अपने पथका गुणगान करते है और एक-दूसरेसे स्वतन्त्र रूपसे करते हैं। एकसूत्रता यदि है तो इतनी ही कि नेत्रोंको लेकर दोनो-के कथन किये गये है और विशेपता है तो इसी वातमें है कि वे एक रोचक शैलीमें किये गये हैं। प्रेमयोग और ज्ञानयोगका मध्ययुगीन द्वन्द्व इस रचनामें नेत्रोके माध्यमसे प्रस्तुत किया गया है। सगुण भक्तिमार्गी कवियोकी रचनाओमे ही यह द्वन्द्व अभीतक मिला था; सूफी तथा निर्गुण भक्तिमार्गी कवियोकी रचनाओमें यह द्वन्द्व पहली वार मिल रहा है।

अन्य प्रसंगोमें भी कही-कही उक्तियाँ सरस वन पड़ी है, यथा नायिकासे नायकके मिलानेके प्रयासकी तुलना द्राक्षावल्लीको आमसे लगानेसे की गयी है :

"साहिव सूं सूरत्तियां हूं मालन इहि कम्म।
जिउं किउं दक्खा वल्लियां जउ र विलग्गइ अंव ॥९"

फ़क़ीरका वेप धारण करनेकी वात सीधी न कहकर फ़क़ीरीके उपकरणोको धारण करनेके रूपमें कही गयी है :

"साहिजादे पथां न होउ धरि पल्लरी पवेहि।
डीवी डांग मु सिगरी कमरि करंदा लेहि ॥१८"

नायक-नायिकाके परस्पर तन्मय होनेकी वात एक ही जीवन-रसको दो पात्रोमे विभक्त करनेके रूपमें कही गयी है :

"साहिजादे साहिव्वीयां ढढ्ढनि हुद्दे मझि।
जाणे जीवण इक्करा वे पुड कीन्हा भंजि ॥२९"

नायिकाको निर्निमेष देखनेकी नायककी चेष्टाके सम्बन्धमे कहा गया है कि मानो कोई सिह किसी मृगीको इस प्रकार देख रहा हो कि उसको आँखोके मार्गसे ही निगलना चाहता हो :

"साहिव सारंगी नयण सारंगा रिपु साहि।
अंपी अंपिनु वट्टडी जानि गिलंदी ताहि ॥३१"

प्रेमकी अग्निमे विना तपे हुए प्रेम-पात्रको प्राप्त करनेकी तुलना इस कच्चे भोजन करनेसे की गयी है जो पेटमे विकार उत्पन्न करता है :

"तू रस कामन्धा भूपिया साहित बीचु अजांणु ।
साई हाथ पकावना पाहि न कच्चा पान ॥३२"

आशाके चेतना-शून्य होनेकी तुलना पावसके आगमनपर विना बादलोंके दर्शनके भी मयूरोंके नाच उठनेसे की गयी है :

"आसा अन्धी ढढ्ढिनी भोग करंदे गोर।
"गज्जइ गयरण न नच्चिया पावस हुंदे मोर ॥३३"

नायिकाका जीवनार्पणका संकल्प नायकपर उसके शरीरको वारनेकी आकांक्षाद्वारा व्यक्त किया गया है :

"ढढ्ढिनियां हिय हत्थ लइ आरतियां करि हेरि।
साहिजादे सिर उप्परइ मो साहिवियां तन फेरि ॥३६"

विरह दुःखसे पीड़ित नायकके सन्तप्त होनेका एक विनोदपूर्ण कारण असंगतिके रूपमें यह दिया गया है कि नायिकाके गरम भोजन करनेसे नायकका हृदय सन्तप्त हो जाता है :

"ढढ्ढिणि ढोरी अंषियां साहिब्रा संमुहियांह ।
तइ तत्ता पांन पाइया दज्झइ साहि हियांह ॥५४"

वरके सेहरेके लिए डूबते हुए सूर्य और वधूकी माँगमें पड़े हुए सिन्दूरके लिए सन्ध्याकी कल्पना की गयी है :

"वर सिर सोहइ सेहरा वरणी सिरि सिन्दूर ।
जांणे संझ सुमप्पिया सिन्धु सपत्ता सूर ॥७८"

वरकी उँगलीमें पड़ी हुई अँगूठी और वधूके हाथमें पड़ी हुई चूड़ियोंके रक्तवर्णके बारेमें यह कल्पना की गयी है कि मानो कामने किसीके हृदयमे चुभे हुए अपने वाण निकाले हों :

"वर कर वीर अंगूठियां वरणी कर करि लाल ।
जाणे हीयइ हिलगियां काम स कढ्ढइ साल ॥७९"

ढाढिनीके द्वारा गाये जाते हुए सेहरेकी तुलना वर्षासे तृप्त हुए सारसोकी मधुर ध्वनिसे की गयी है :

"आसिक अपत भणंदीया सेप सुणंदा सार ।
जांणे जलहर वुट्ठियां सारसु कीया सुठार ॥८०"

इसी प्रकार और भी अनेक स्थल मिलते हैं जहाँपर रचना अपनी टटकी और कभी-कभी अछूती उक्तियोंके द्वारा पाठकको मुग्ध कर लेती है। फलत. रचना छोटी होते हुए भी काव्य-रसिकोंको चमत्कृत करती है। गद्यमें भी जहाँ-तहाँ ऐसी उक्तियाँ आती हैं, किन्तु ऐसे स्थल इने-गिने ही हैं। रचनाकी सरसता उसके पद्यात्मक अंशोंके कारण ही है। ऐसा लगता है कि गद्यके अनुच्छेद केवल कथाके सामान्य विवरणों तक सीमित रखे गये है; जहाँपर सरस कल्पनाकी सम्भावना प्रतीत हुई है, कथन और वर्णन अनायास दूहोमे किये गये हैं। साथ ही यह द्रष्टव्य है कि समस्त अप्रस्तुत विधान भारतीय जीवनसे लिया गया है।

इन दूहोंमें कविकी शैली अत्यन्त सशक्त है। एक स्थानपर भी उसने कविको धोखा नहीं दिया है। प्रत्येक शब्द अपने स्थानपर जमकर बैठा हुआ इस प्रकार चमक रहा है जैसे आकाशमें नक्षत्र चमकते हैं। शब्दोंमे प्राणवत्ता स्वत. झलकती है, यद्यपि शब्द चयन सहज ढंगसे किया हुआ है। रचनामें कहीं भी प्रयास परिलक्षित नही होता है, यह रचनाकी बड़ी भारी विशेपता है।

गद्यांशकी शैलीमे यह विशेपता नही है। हिन्दीके मध्ययुगमें गद्य उपेक्षित रहा है, यह सभी क्षेत्रोंमे देखा जा सकता है। सरस उक्तियाँ और कल्पनापूर्ण कथनोंके लिए पद्यका ही सहारा वार्त्ता-वन्ध काव्य-रूप तकमे भी लिया जाता रहा है। और कदाचित् ऐसे वार्त्ता-वन्ध काव्योंका पद्य उनके गद्यकी अपेक्षा अपने प्रामाणिक रूपमें अधिक सुरक्षित भी रहा है, क्योंकि गद्य भागको आवश्यकताके अनुसार वड़ा या छोटा किया जाता रहा है जबकि पद्य अपनी सरसता और स्मरण-सुलभताके कारण वहुत-कुछ मूल रूपमे सुरक्षित रखा गया है।

— माताप्रसाद गुप्त

'कुतबशतक' की हिन्दुई

'कुतवशतक' की भाषा

रचनामे उसकी भाषाका नाम नही आया है और न उसके वार्त्तिक तिलकमे, किन्तु वार्त्तिक तिलकमे निम्नलिखित अंशोमे अन्य भाषाओके साथ हिन्दुईका नाम उसके कुछ अधिकतर वर्तनी-विषयक विकल्पोके साथ आया है :

"बीबी बीबानां कौ फारसी। हिंदुही। च्यारों ही हकीकति। तरीक वेद की। कुरांन की। पुदायकी इन्याइति रहम सी। दिलमही थी। पैदा हुई।"—(वार्त्तिक तिलक, अनु० ६)

"·····बडा भाई ह्यंदू छोटा भाई मुसलमान। ह्यंदूई मौ पंडित नाम राषौ। सोइ नाम पूब। तब पंडितां आपणा सास्त्र देष्या। तब साहिजादा कुतवदीन नवल नाम नजरि आया।"—(वही, अनु० ११)

"ह्यंदूगी तुरकी कुरांन भी हाजरि हुऐ अवलि पुरांन वाला बोला साहिजादे सलामति वहुत पुब सायति का वक्त है एक निवाला उटायए होम करानेवाला बोला ए साहिजादे वहुत पूब सायति का वक्त है घुंट एक ठंढा आब पाणी की लीजिए।—(वही, अनु० १५)

पहले उद्धरणमें 'हिंदुही' का नाम भाषाके रूपमे 'फारसी' के साथ लिया हुआ है। दूसरे उद्धरणमे 'ह्यंदूई' हिन्दुओंकी भाषाके रूपमे उल्लिखित हुई है, जिसमे शाहजादेका नाम रखनेके लिए पण्डितोसे अनुरोध किया गया है। तीसरे उद्धरणमें 'ह्यंदूगी' 'तुरकी' भाषाके साथ लायी गयी है जैसे प्रथममे वह 'फारसी' के साथ लायी गयी है। इससे स्पष्ट है कि वार्त्तिक तिलकके लेखकके समयमे दिल्लीके शिष्ट समाजमें दो ही भाषाएँ प्रमुख रूपसे प्रचलित थी, हिन्दुओमे 'हिंदुही', 'ह्यंदूई' या 'ह्यंदूगी' और मुसलमानोमे 'फारसी' अथवा 'तुरकी'। 'ह्यंदूई' वर्तनी-भेदसे 'हिंदूई है, तथा 'हिंदुही' और 'ह्यंदूगी' उसीके अन्य विकल्प है। कुछ लेखकोने 'हिंदुकी' और 'हिंदकी' भी इस भाषाके नाम बताये है, किन्तु नागरी लिपिमे उद्धृत किये गये इन तीनो विकल्पोसे स्पष्ट है कि उसका एक नाम

'हिंदुगी' रहा होगा, जिसको फारसी लिपिमे लिखनेपर 'हिंदुकी' या 'हिंदकी' पढ़ा गया होगा।

'कुतवशतक' की भी भाषा यही है। यद्यपि उसका लेखक उसको किस नामसे जानता था यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है किन्तु इस बातकी सम्भावना यथेष्ट मानी जा सकती है कि वह भी इसको इसी नामसे जानता रहा हो। अन्तर दोनोंकी भाषाओंमें इतना ही है कि रचना-की भाषा तिलककी भाषासे अपेक्षाकृत प्राचीनतर है। दक्षिण भारतकी मध्य-युगीन मुसलमानी रियासतोंमे इसी भाषाको साहित्यिक भाषाके रूपमें स्वीकार कर लिया गया था और इसमें साहित्य-रचना भी की गयी थी। वादमें इसे ही 'दक्खिनी' कहा जाने लगा था।

आगेके पृष्ठोंमे 'कुतवशतक' और उसके वार्त्तिक तिलककी भाषाओंका विश्लेषण अलग-अलग कर लेनेके वाद दोनोंका तुलनात्मक अध्ययन किया जायेगा। इसी प्रसंगमे दक्खिनीके मिलते जुलते रूपोंके साथ भी इनके रूपों-की तुलना की जायेगी। दक्खिनीका अध्ययन काफ़ी पूर्णताके साथ किया जा चुका है, किन्तु उत्तरी भारतकी पुरानी 'हिन्दुई'की जानकारी यथेष्ट रूपमें न होनेके कारण 'दक्खिनी' का अध्ययन प्रस्तुत करनेवाले लेखकोंने दक्खिनी शब्द-रूपोंके इतिहासके सम्बन्धमें कभी-कभी भ्रान्तियाँ भी की हैं और अनेक ऐसे रूपोंको उन्होंने पंजाबी, राजस्थानी और अवधी तकका बताया है जो कि पुरानी खड़ी बोलीके थे। आगे इन भ्रान्तियोंका निरा-करण यथास्थान किया जायेगा।

कुतवशतकके शब्द-रूप

संज्ञा

संज्ञा : एक० (अविकृत रूप)

पुंल्लिग शब्द सामान्यतः प्रत्ययहीन रूपमें प्रयुक्त हुए है। उदाहरण देना अनावश्यक होगा।

—उ : कही-कहीपर अकारान्त शब्द कर्ता और कर्म कारकोंमें —उ प्रत्यय-के साथ प्रयुक्त हुए हैं :

कर्ता — ओ ही 'हालु' (५०)।

कर्म – 'दीनु' लीया दुनया विछोड़ी (२३), तत्ता 'भत्त' लाओ (२५), 'भत्तु' लइ आवनइ हइ (२६)।

–आं। आंह . दो स्थानोंपर अकारान्त शब्द कर्तामें –आं। आंह प्रत्ययोंके साथ प्रयुक्त हुए हैं :

कर्ता – जउ जोरां तउ तुज्झ ही जउ गोरा तउ तुज्झ (३७), तइ तत्ता भात षाइया दज्झइ साहि 'हियांह' (५४)।

आगे हम देखेंगे कि यह –आ प्रत्यय इकारान्त स्त्री० में (–इयां) मे परिवर्तित होकर बहुत प्रयुक्त हुआ है। यह अवधीके पु० –आ। –वा तथा स्त्री० –इयासे तुलनीय है : बिहरत हिया करहु पिय टेका ('पद्मावत' छन्द ३५४), उ घोड़वा कहाँ गा ? उ घोडिया कहाँ गइ ? यह –आं स्वार्थिक प्रत्यय ज्ञात होता है। –आंहका –ह एक अतिरिक्त स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें जोड़ा हुआ लगता है। यह –ह पद्यो तक ही सीमित है, सो भी तुकोंके लिए।

–इयां · कही-कहीपर अकारान्त पु० शब्द स्वार्थिक –इया प्रत्ययके साथ भी प्रयुक्त हुए है

जानेकी 'करतारिया' (१०), अंगन चंद 'निलाटिया' (१२), साहिब-साहि 'कुतुब्बियां' (६०)।

स्त्रीलिंग शब्द भी सामान्यतः प्रत्ययहीन रूपमे प्रयुक्त हुए है; इनका भी उदाहरण देना अनावश्यक होगा।

–आं : स्त्री० इ। ईकारान्त शब्दोंको कही-कहीपर स्वार्थिक –आं प्रत्यय जोड़कर –इयां अन्त्य कर दिया गया है :

साहिब सो 'सूरत्तियां' (१), साहिब सूं 'सूरत्तियां' (९) जिउं किउं दक्खा 'वल्लिया' जउ र विलग्गइ अंब (९) वे 'मालिनियां' दिट्ठाइयां (१७), 'बीवियां' आई (२०), 'बीवियां' हरम द्वार वाई (२०), 'गुलाबियां' जागी (२१), 'ढढ्ढिनियां' सोना भला (३५), 'ढढ्ढिनियां' हिय हत्थ लइ (३६), 'बीवियाँ' सहित सुलतांण जाण्या (४२)।

–इयां : कही-कहीपर अकारान्त शब्दोंमें भी स्वार्थिक –इयां प्रत्यय जोड़ा गया है : साहि घरां साहिब्बिया जिण दिण्णियां सुजाणि – (६२)।

–आंह . इसी प्रकार कही-कहीपर –आंह स्वार्थिक प्रत्यय भी प्रयुक्त हुआ है : पाइ स रत्ता पंकजां अद्धी अंगुलियांह (१६)।

इन स्वार्थिक प्रत्ययोंके सम्बन्धमे वही कथन लागू होता है जो ऊपर पुल्लिग शब्दोंके स्वार्थिक प्रत्ययोंके बारेमें किया गया है।

संज्ञा : बहु० (अविकृत रूप)

पुलिंग शब्दोके बहु० निम्नलिखित प्रकारसे बनाये गये हैं।

–आ : अकारान्त शब्दोंके बहु० एक० अविकृत रूपमे –आ लगाकर बनाये गये हैं : जाणै सपनि अप्पणा चर 'चिट्ठआ' भपंति (११), 'केता' के कसि बंधियां (११), 'जोवणा' खूब हुइ (४), 'हत्या' कांम स पीउ भउ पीय 'हत्या' भउ कांम (१५), 'सज्जणा' जाने (७६), ढाहिया 'ढंगा' (७६), निहसिया नीसाण 'नादा' (७६), नारियां 'नादा' (७६), बाए बज्जण 'बज्जणा' (८१)।

–आं : इसी प्रकार वे –आं लगाकर भी बनाये गये हैं :

पाइ स रत्तां 'पंकजां' (१६), लज्जा गउ जुअ 'जोवणां' (६१), मिलि 'सज्जणां' सचोल (८१)।

दक्खिनी हिन्दीमें केवल –आ प्रत्यय मिलता है।[1] ऐसा ज्ञात होता है कि –आ या तो परवर्ती है और या तो प्रतिलिपिकारोंकी भूलसे –आंके सानुनासिकके बिन्दुके छूटनेके कारण हो गया है।

एक स्थानपर अकारान्त शब्दका बहु० –ह लगाकर भी बनाया गया है : बारि 'ऊंछह' लगाये (९०)।

–आन : दो स्थानोपर एक अकारान्त शब्दका बहु० –आन लगाकर बनाया हुआ है : 'दोस्तान दोस्तान' करि हस्तक्यां दीनी, 'दोस्तान दोस्तान' तत्ता भत्तु लाओ (२५)। यह –आन फ़ारसीका प्रत्यय प्रतीत होता है।

–ए : आकारान्त संज्ञा शब्दोंका बहु० –ए लगाकर बना है : पांच सोवन-के 'टके' देवरइ घरे (४), मेरे 'दीदे' दूपण लग्ग (८), 'दीदे' घूरते हइं (२१), दीदे लग्गे (२४), साहिबां 'दीदे' उनइ (२७), 'दीदे' दिग्ध उचाइयां (२८), साहिजादे के 'पवे' फुरकणइ लागे (३०), साहिजादइ आपणे 'कपरे' कीए (३८), 'दीदे' दुराए (४०), षान 'षानजादे' मलिक 'मलिकजादे' मीया 'मीयां जादे'

---

१. दे० 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ४६, 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० २६६।

(४३), फेरिवे दस लाख 'टके' सिर उप्परइं (४९), इतनी करतइ 'कपरे' फेरे (५५), दीदह सुं 'दीदे' जोरे (५५), साहिजादे 'दीदे' न भरू (५७), सुणतइ ही 'लल्ले' किए (६७), दावल दाण स पूंगरी 'दीदे' दीठिहुं मूरि (७१) दुनी के 'दीदे' ऊघरे (७४) 'गायणे' गावणइ लागे (७६), दोउ 'दूहे' कहे (९१), मांगि वे लाल 'ढमरे' (१०९), 'वज्जे' वज्जत वज्जिया (११४)।

–ए : लगाकर बहु० बनानेकी यह प्रवृत्ति दक्खिनीमे भी इसी प्रकार मिलती है।[1] किन्तु डॉ० श्रीराम शर्माका कहना है कि "दक्खिनीमें राजा-राजे-जैसे प्रयोग मराठीका प्रभाव प्रकट करते हैं।"[2] यदि उनका आशय –ए लगाकर उपर्युक्त प्रकारसे बहु० बनानेके सामान्य नियमसे है, तो उनका यह मत ठीक नही है, प्रस्तुत रचनासे यह भलीभाँति प्रमाणित हो जाता है।

कही-कहीपर बहु० के लिए एक० रूप भी प्रयुक्त हुआ है : जाणे सपनि अप्पणां चर 'चिट्ठआ' भपंति (११), भूतर नच्चड 'नयण' (१२), 'पाइ' स रत्ता पंकजां (१६), 'तबीब' तमाम सब सुलताण कोके (४४)।

स्त्री शब्दोके बहु० निम्नलिखित प्रकारसे बनाये गये है।

–या। यां, इया। इयां : अकारान्त शब्दोके बहु० –या। –इयां, अथवा इया। इयां लगाकर बने है

'वाडियां वेलियां' नयणे दिपावइ (३), दोस्तान दोस्तान कहि 'हस्तक्यां' दीनी (२३), सुलतांण 'निवाज्या' कीनी (३८), दाणसवंदइ अपनइ अपनइ घरह की 'वाटचा' लीनी (३८), हस्तइं ही 'वात्या' कीया (३९), इतनी 'वात्या' करतइ साहिजादइ 'जहमत्यां' कीन्ही (४१), 'आवाज्या' वाजी (५६), जिण ही जीय 'जहमत्तियां' (६६), क्या 'वातियां' निसीव (६८), 'जहमतीया' क्या जाणइं (७३), दरिया हिया 'तरंगिया' कउ ण गिलंदा खेलि (८७)।

दक्खिनीमे भी यह प्रवृत्ति मिलती है, किन्तु या। इयां प्रत्यय ही वहाँ मिलते हैं।[3] असम्भव नही कि प्रतिलिपि प्रमादके कारण –या। इयांका 'कुतवशतक' मे कही-कहीपर –या। इया हो गया हो।

---

१. वही।
२. वही।
३. 'दक्खिनी हिन्दी', पृ० ४७ तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३००।

–इं : अकारान्त शब्दोंके बहुवचन कहीं-कहीपर –इं लगाकर भी बनाये गये हैं, यह –इं परवर्ती –एं से तुलनीय है :

'किताबइं' रही (३८)।

–यां : इकारान्त शब्दोके बहुवचन रूप –यां जोड़कर बनाये गये हैं :

ढढ्ढिण ढोरी 'अंखिया' (५३), के दिन केही 'केलियां' (८७)।

इसी प्रकार, ईकारान्त शब्दोंके भी—

पक्कीया 'नारिग्यां' 'जंभीर्‌या' भर्‌यां (४), 'वेलियां' बंकीयां कर्‌यां (४), साहिजादे आपणी 'जंभीरियां' सुहंगीयां न बेचुगी (५), सु मुहर मुहर 'जंभीरिया' मांगती है हइ (५), मुहर मुहर 'जंभीरियां' नकी पाछी ल्यावहु (५), पेरो साहि 'दुहाइयां' (७), जाणुं आण 'बधाइयां' (१२), 'आरतियां' करि हेरु (३६), वर कर बांर 'अंगूठियां' (७६)।

इकारान्त तथा ईकारान्त शब्दोंमें –यां लगाकर बहु० बनानेकी यह प्रवृत्ति दक्खिनीमें भी पायी जाती है[1]।

इकारान्त शब्दोंके साथ पद्योंमे –या के अतिरिक्त कभी-कभी स्वार्थिक –ह भी जुड़ा हुआ है

पाइ सरत्ता पंकजां अट्ठी 'अंगुलियांह' (१६), वे मालनियां दिट्ठाइयां के सोनी 'गल्हरीयांह' (१७), लइ चलि 'संगरियांह' (१७)।

यह –ह एक अतिरिक्त स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें एक० पुल्लिग शब्दोंमें भी प्रयुक्त हुआ है, यह हम ऊपर देख चुके हैं।

स्त्री० शब्दोमे भी कही-कहीपर बहु० के स्थानपर एक० रूप ही प्रयुक्त हुआ है; यह हम ऊपर एकवचन रूपोके प्रसंगमें भी देख चुके हैं :

इतनी 'वात' करतइं (७६, ८९, ९०, ९१), दुइ 'नटिणी' आइ परी हुई (९१)।

संज्ञा : एक० (विकृत रूप)

आकारान्त पुल्लिग शब्दोंका –आ प्रायः –ए में परिवर्तित हुआ है :

'साहिजादे' कुं जीयावणा (५१), साहिवा 'साहिजादे' कुं वरणा (७५), 'साहिजादे' कुं क्या सुरोग (९०), 'साहिजादे' कुं ठंड लागी (१०१),

---

१. वही।

'साहिजादे' सुं कम्म (६), 'साहिजादे' सुं सइतान लर्‌या (५१), 'साहिजादे' सुं वपाणइ (७६), 'साहिजादे' के पवे फुरकणइ लागे (३०), 'साहिजादे' दिल अउर दिल (६९), 'साहिजादे' की दूसरी वडरणि आई (५०), 'साहिजादे' कइ साथि गोर महि वाहणा (५१)।

किन्तु कहीं-कहींपर यह –आ –अइ। –ऐ मे भी परिवर्तित हुआ है : 'खानइ' की क्या चलावइ (४०), वे 'दीयै' की जाला (१०२)।

इन दोनोमे-से –अइ अपेक्षाकृत कदाचित् प्राचीनतर है। वही –ए में बदल गया लगता है। दक्खिनीमे –ए रूप ही मिलता है।[1] किन्तु हो सकता है कि यह फारसी लिपि-मात्रमे उसका पुराना साहित्य मिलनेके कारण भी हो, क्योंकि फ़ारसी लिपिमे –अइ और –ए एक ही प्रकारसे लिखे जाते है।

अकारान्त पुंल्लिग शब्द कभी-कभी अविकृत रूपमे भी प्रयुक्त हुए है :

'मरणा' तईं का बुराई (१०६), 'दरिया' का गर्व वादे (४३), 'साहिजां' की साहिवां की (५३), 'जमा' की राति (१९)।

दक्खिनीमें भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है।[2]

विकृत रूप-निर्माणकी उपर्युक्त प्रवृत्ति आकारान्त पुंल्लिग शब्दो तक ही सीमित है।

संज्ञा : बहु० (विकृत रूप)

पुंल्लिग : अकारान्त शब्दोका बहु० –आ : –आं अथवा –ह। –हु लगाकर बना है :

–आ : 'सादा' नइं वग्गे (२४), 'सादा' नइं वजावउ (७५), 'सादा' नइ वाजण लागे (११३)।

–आं : 'दुसमणा'के दिल जरे (७४), मानुं चाद 'तारां' सुं रिसानइ (१०९)।

अकारान्त शब्दोके बहु० –आ जोड़कर दक्खिनी हिन्दीमे भी बनते रहे है।[3] हो सकता है कि प्रतिलिपि प्रमादके कारण ही 'कुतवशतक' मे –आं का –आ हो गया हो।

---

१. 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३०१।

२. वही, अनु० ३१६, तथा ३१९ के कुछ उदाहरण।

३. 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ४८, तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३०१।

–ह । –हु : बंदा 'बंदियहु' की बंदिगी देपणइ हु गया था (३९), दानिस-बंदइ अपनइ अपनइ 'घरहु' की वाट्यां लीनी (३८), 'तबीबहु' हाथ धरे (५१), 'इयारहु' के हीए भरे (७४)।

स्त्रीलिंग ईकारान्त शब्दोंका बहु० कुछ स्थानोंपर –न । नु लगाकर बनाया गया है :

साहियां 'महिन' वयां भरी है (२६), अंपी 'अंपिनु' वट्टडी साहि गिलंदी ताहि (३१)।

दक्खिनीमे भी इस –न का प्रयोग मिलता है।[1]

संज्ञा – लिंग-निर्माण :

पु० अकारान्त । आकारान्त शब्दोंके स्त्रीलिंग –अ । –आ के स्थानपर –ई लगाकर बनाये गये हैं :

आगइ दावल की 'पूगरी' हइ (५), साहिब सारी 'वत्तडी' (६), कुण स केही 'पूगरा' (७), जाणे आण 'वधाइयां' (१२), 'फूल्ली' नी कलियांह (१६), अंपी अंपिनु 'वट्टडी' (३१), बीबी बीहन 'वत्तडी' (६९), दावल दान स 'पूगरी' (७१), दुइ 'नटिणी' आइ परी हुई (९१), माया ओढण भुल्लिया जाणि 'कलाली' मत्त (९७)।

स्त्रीलिंग-निर्माणकी यह विधि दक्खिनीमे भी इसी प्रकार पायी जाती है[2]।

कभी-कभी पु० अकारान्त शब्दोंका स्त्री० –नि । –नी जोड़कर बनाया गया है :

जाणे 'सपनि' अप्पणा चर चीदुवा भपति (११), तबीबानी तबीबानी' करि पुकारी (५६)।

यह प्रकृति दक्खिनीमें भी पायी जाती है[3]।

इ । ईकारान्त शब्दोंका बहु० भी –नि । –नी । –न जोड़कर बनाया गया है, केवल पु० शब्दका इकार । ईकार अकारमे परिवर्तित हो गया है :

---

१. 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० २९०।

२. वही, अनु० ३०६।

३. वही।

'अग्गा 'मालनी' खुब हइ (४), वे 'मालनी' आइया करे (४), टुक एक गयां 'मालनी' फिरि आई (५), साहिब मुं सूरत्तियां हूं 'मालन' इहि कम्म (९), जाणु साहिजादे की दूसरी 'वइरणि' आई (५०)।

दक्खिनीमें भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है।[1]

कहीं-कहींपर कु० में यह स्त्री० रूप केवल –नि। –नी जोड़कर बनाया गया है :

ढढिनी। ढढिनि (रचनामें अनेक वार), 'डढिनी' 'मालिनी' का वेष कर्‌या (४), अबे 'मालिनी' यां तू इहि काम आई (९)।

दक्खिनीमें भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है।[2]

कभी-कभी कु० में एक ही शब्द (यथा माली>मालनी। मालिनी) उपर्युक्त दोनों रूपोंमें मिलता है। यह प्रतिलिपिकारोंके प्रमादसे हुआ भी सम्भव हो सकता है।

प्रथमा विभक्ति

–इाइं : पुल्लिंग एकवचनमें अकारान्त-आकारान्त शब्द सामान्यत. –इाइं लगाकर प्रथमाका विभक्तियुक्त रूप बनाते है, आकारान्त शब्दोंका आकार ऐसी अवस्थामें अकारमें परिवर्तित हो जाता है :

इते बीच 'साहिजादइं' किसऊ की डीवी चोरी (२३), 'साहिजादइ' आपणे कपरे कीए (३८), 'साहिजादइ' जहमत्यां कीन्हीं (४१), 'तबीबइ' रोग जण्या (५८), 'साहिजादइ' कुमकुमइ वरपे भराए (९०), दाणसंवद साहिजादीसुं 'साहिजादइ' कह्या (१०१), रंग पर रंग ऊढनी 'साहिजादइ' दीनी हइ (१०२), 'साहिजादइ' लीन्हा (१०२), टुक एक जानइं 'साहिजादइ' कह्या (१०६), जाणइं चंद 'वादलइ' छिपाया (१०८)।

–एाएं : कहीं-कहीं पर आकारान्त शब्दके –आ के स्थानपर एाएं लगाकर भी प्रथमाके विभक्तियुक्त रूप बने है. दोइ 'साहिजादे' अप्पणइ हत्थइ कीयां (४), 'साहिजादे' चादरि सिर उपरि लीनी (२२)।

–इं : ईकारान्त शब्दोंका प्रथमा विभक्तियुक्त रूप –इं जोडकर बना है : 'रोगीइं' रोग मान्या (५८)।

---

१. वही।

२. वही।

–इ : पुल्लिग बहुवचनमे अकारान्त शब्दोके साथ भी –इ प्रत्यय लगाकर प्रथमाका विभक्तियुक्त रूप बना है :

'दानिसवंदइ' अपनइ अपनइ घरह की वाट्यां लीनी (३८)।

किन्तु ऐसे उदाहरणोंमे शब्दोंका मूल बहु० रूप कदाचित् वही है जो एक० का है।

–इाइं तथा एाएं मे-से प्राचीनतर कदाचित् प्रथम है : दूसरा प्रतिलिपि-कारोकी अपने समयकी भाषाके प्रभावसे आया हुआ लगता है।

विभक्तियुक्त अर्थोमे निर्विभक्तिक प्रयोग भी अनेक मिलते हैं :

पु० एक०: 'साहिजादा' सइतान र जाण्या (२०), 'साहि' साहिवां ऊँचाई (३०), 'सुलतांण' निवाजा कीनी (३८), 'सुलतांण' सुरति कीनी (३८), 'सुलतांण' देस देस मुल्क मुलक कुं फुरमाण दीनइ (३८), 'तवीव' तमाम सब सुल्तांण कोके (४४)।

पु० बहु०: 'तवीवह' हाथ धरे (५१)। [–ह इस प्रयोगमे स्वार्थिक प्रतीत होता है।]

विकृत रूपोके स्थानपर निर्विभक्तिक रूपोको प्रयुक्त करनेकी प्रवृत्ति दक्खिनी हिन्दीमे भी पायी जाती है।[1]

यह ध्यान देने योग्य है कि 'ने' का प्रयोग रचनामे कही भी और किसी रूपमे भी नही मिलता है। पुरानी दक्खिनीमें भी बहुत-कुछ यही अवस्था थी। डॉ० श्रीराम शर्मा लिखते है : "कारक चिह्नके रूपमें दक्खिनी 'ने' को सामान्यत अस्वीकार करती है, केवल साहित्यिक दक्खिनीमे ही कही-कही 'ने' का प्रयोग मिलता है।...... ख्वाजा बन्दे नवाजकी रचनाओंमे हम 'ने' का प्रयोग देखते हैं। उनके परवर्ती लेखक बुरहानुद्दीन जानमकी रचनाओमे 'ने' का प्रयोग अधिक नही है।"[2] किन्तु ख्वाजा बन्दे नवाजकी रचनाओमे 'ने' के मिलनेके कारणका अनुमान करते हुए डॉ० शर्मा लिखते हैं : "इसका एक कारण यह हो सकता है कि ख्वाजा बन्दे नवाजका अधिकांश समय दिल्लीमें बीता था। उस समय दिल्लीके आस-पासकी खड़ी बोलीमे 'ने' का प्रयोग होने लगा था।"[3] उनके इस कथनसे मैं सहमत नही हूँ क्योकि प्रस्तुत रचनासे यह प्रमा-

१. वही, अनु० ३१५।

२. वही, अनु० ३१५।

३. वही।

णित हो जाता है कि ख्वाजा वन्दे नवाज़के कदाचित् एक शताव्दी वाद तक भी दिल्लीके आस-पासकी खड़ी वोलीमें 'ने' का प्रचलन नहीं हुआ था। या तो ख्वाजाने यह प्रयोग अन्यत्रसे ग्रहण किया होगा, और या तो उनकी रचनाओंका प्रस्तुत रूप इस रचनाके भी वादका होगा।

–इ : स्त्रीलिंग एकवचनमे भी अकारान्त। आकारान्त शव्द उसी प्रकार –इ लगाकर प्रथमाका विभक्तियुक्त रूप वनाते हैं जैसे पुल्लिगमें : पाँच सोवन्न के टका 'देवरइ' धरे (४), अवे 'फिरस्तइ' फेरे (४७)।

सविभक्तिक अर्थमें निर्विभक्तिक प्रयोग स्त्रीलिंग एक०मे भी अनेक मिलते है :

'साहिव' सारी वत्तड़ी साहिजादे सु कम्म (६), 'मालनी' संच जाण्या (२०), दीदे दिग्ग उंचाइयां 'साहिव' साहिव अंगि (२८), 'वीवी' हुं रोवणा मांड्या (५१), 'ढढिणि' ढोरी अपियां साहिव संमुहियाह (५४), मा' अर-दास करी (१०८)।

स्त्री० वहु० मे भी निर्विभक्तिक प्रयोगके इस प्रकारके उदाहरण मिल जाते है. जाणे 'अपछरां' अमी हर्‍या (१०२)।

द्वितीया विभक्ति :

एक० में सर्वाधिक प्रयुक्त विभक्ति 'कुं' है, जो अकारान्त। इकारान्त शव्दोके साथ पु० तथा स्त्री० दोनोमें मिलती है ·

पूव 'कुं' पूत्र होइगा (४), दावल 'कुं' तीन दिन हुए खाना खाया (५२), इती वात 'कुं' का समीना (७५), नदरि ज लब्भइ नदरि 'कुं' नदरि पुकारत जाइ (७२),

पु०। स्त्री० वहु० मे भी –कुं का प्रयोग इसी प्रकार मिलता है : मुलताण देस देस 'कु' मुलक मुलक 'कु' फुरमाण दीनइ (३८)।

आकारान्त शव्दोमे 'कुं' 'आकार' को 'एकार' में वदलकर लगता है ·

साहिजादे 'कुं' जियावणा (५१), साहिवा साहिजादे 'कु' वरणा (७५), साहिजादे 'कुं' क्या मुरोग (९०), साहिजादे 'कुं' ठंढ लागी (१०१)।

'कूं' के रूपमें यह 'कुं' दक्खिनी मे भी मिलता है, यद्यपि इसके सम्वन्धका

डॉ० श्रीराम शर्माका यह कथन मान्य नहीं लगता है कि 'दक्खिनीका 'कूं' व्रज-के 'कहं' 'कहुं' से सम्बन्धित है।''[1]

एक० स्त्री० में कहीं-कहीं पर 'नु' विभक्ति भी मिलती है :

साहिजादा वीवीय 'नु' पकरि कढ उसही महल मढ आन्या (४०), पाछइ क्या कीजइ तवीवियां 'नु' (५९)।

इसी प्रकार पु० बहु० में कहीं-कहीं पर नइं। नइ विभक्ति भी मिलती है :

सादा 'नइं' वग्गे (२४), सादा 'नइ' वजायउ (७५), सादा 'नइं' वाज-णइ लागे (११३)।

कहीं-कहीं पर सविभक्तिक अर्थोंमें निर्विभक्तिक रूपोंका प्रयोग भी हुआ है : 'साहिजादा' जिलावइ (५९)।

तृतीया विभक्ति

तृतीयाके रूप-निर्माणके लिए दो कुलोंकी विभक्तियोंका प्रयोग किया गया है : 'स' कुलकी तथा 'त' कुल की। 'स' कुलकी विभक्ति —'सु' 'सूं' 'सौं' हैं और 'त' कुलकी है 'तइ', 'तइं', 'ती' तथा 'थी'।

सुं। सूं। सौं : साहिव 'सु' मुरत्तियां वर बोलिया वडाम (१), सुल्तान 'सु' कहुंगी (५), साहिजादे 'सु' कम्म (६), साहिव 'सौं' मुरत्तियां (९), साहिजादे 'सुं' सउतान लड्या (५१), साहिवा डढिनी 'सु' कहे (५२), दोदह 'सुं' दोदे जोरे (५५), साहिजादे 'सु' वपाणइ (७६), दाणसंवद साहिजादी 'सु' साहिजादइ कह्या (१०१), मानु चांद तारां 'सु' दिसानइ (१०९)।

—थी : पूत 'थी' पूत होइगा (८८)।

—तइं। तइ : तउ कहइगे डढिनी 'तइ' हुई वुराई (३०), पूत 'तइ' पूत होइं (४९), अवे मरणा 'तइ' क्या वुराई (१०६)।

—ती : न जाणीयइ गिरइ 'ती' क्या होइ (१०१)।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'सुं' विभक्ति 'साथ' के आशयसे प्रयुक्त हुई है, जबकि 'तइ'। 'तइं' तथा 'ती'। 'थी' कार्य-कारण भावसे 'द्वारा' के अर्थमें प्रयुक्त हुई हैं।

दक्खिनीमें 'सूं', 'ते'। 'तें' तथा 'थे'। 'थें' विभक्तियाँ मिलती हैं।[2]

---

१. वही, अनु० ३१६।

२. 'दक्खिनी हिन्दी', पृ० २४, तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३१७।

कु० में एक-दो स्थानोपर –ए विभक्तिसे भी काम लिया गया है :

वाडिया वेलियां 'नयणे' दिषावइ (३), ट्टक एक 'वीरे' (४)।

कहीं-कही पर निर्विभक्तिक प्रयोग भी मिलते हैं :

तू इहि 'काम' आई (९), अंपी अंषिनु 'वट्टडी' आनि गिलंदी ताहि (३१), 'लज्जा' न डरु (५७), 'लाजनु' सोचना हूवा (७३) 'पावहं पाव' सुलताण दरवारि आया (७४)।

चतुर्थी विभक्ति

चतुर्थीकी विभक्ति 'कुं' या 'कुं ताई' है।

–कुं : नाडी अत्थि तदोप 'कुं' नत्थि तदोष न लेपु (५२)।

–कुं ताई : पालिग तइं उतरि करि सलाम 'कुं ताई' हुआ (४९)।

ये विभक्तियाँ दक्खिनीमें भी मिलती हैं।[1]

क्रियार्थक संज्ञाएँ विकृत रूप-मात्रमे प्रयुक्त हुई हैं : वंदा जमा मसीति वंदियहु की वंदिगी 'देखणइ' हु गया था (३९), जमा मसीनि 'देषणइ' गया था (४६)।

पंचमी विभक्ति

पंचमीकी विभक्तियाँ –हतइं। हतइ, –तइ और –थी हैं :

–हतइं। हतइ : दानसवंद कइ घर 'हतइ' सहन केहुकी वाट चाहते हइ (२१), मंदिर 'हतइं' ढोल कई मंदिरि मांगी (५९)।

–तइ : कुमकुमा कइ जल महि 'तइ' निकस्या (१०६)।

–थी : डीवी डांग खल्लरी न जाणुं कहा 'थी' लीन्ही (४७), दिल्ल मइ 'थी' दिल क्या होइगा (५५)।

इनके साथ दक्खिनीकी ते। तैं तथा थे। थै तुलनीय है, साथ ही उसमे सु। से। सेती विभक्तियाँ भी पायी जाती हैं।[2]

कु० मे एक स्थानपर पंचमीमें भी निर्विभक्तिक प्रयोग मिलता है : ही उड्डा दिट्ठाइयां 'दीहा' पंचइ च्यारि (१४)।

---

१. 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ५६ तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास, अनु० ३१८।

२. 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ५४ तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास' अनु० ३१६।

षष्ठी विभक्ति

षष्ठीकी विभक्तियाँ –का परिवारकी है, केवल 'दूहोंमें कभी-कभी –हंदा– परिवारकी विभक्तियाँ मिल जाती हैं।

–का परिवारकी विभक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

–का : पुंल्लिग एक० की विभक्ति – का है, किन्तु अपने सामान्य रूपमें यह तभी प्रयुक्त होती है जब इसके बाद आनेवाली संज्ञा भी अपने सामान्य रूपमें हो :

मालिनी 'का' भेप करया (४), साप 'का' सोरंभ आया (२२), दावल दानसवंद 'का' घर (२८), इंद्र 'का' गर्व भाग्या (४२), दरिया 'का' गर्व वादे (४३), तवीव 'का' भेष करि आई (५६), जीउ 'का' जीउ जाणु (५६), तारहु 'का' तेज छई (८९), एक जोगिणी 'का' स्वांग कीये एक भोगिणी 'का' (९१), पाचि 'का' कारावा (१०२), सारइ लाल 'का' प्याला (१०२), मां साहिवा 'का' न्याउ अछए...(१०९)।

–की : स्त्री० एक० की विभक्त –की है :

ढढिणि दाणसवंद 'की' (१), दानसंवद 'की' पूंगरी हइ (५); पुदाइ 'की' वंदिगी करते हइ (२१), अवे खुदाइ 'की' फिरस्तई आया (२३), सुलतांण केलि 'की' खडकी खड़े हइ (३८), साहिजां 'की' साहिवां 'की' (५३)।

अपने विकृत रूपमे –का विभक्ति –कइ। –के मे परिवर्तित हो जाती है :

–कइ : साहिजादे 'कइ' आगइ घरया (४), दावल दानिसवंद'के' (कइ ?) मांगिस इतना भात (१९), दानिसवंद 'कइ' घरह केहुकी वाटइ चाहते हइ (२१), दावल 'कइ' दरवारि वाइ वग्गे (२४), कइ साहिजादे 'कइ' साथि गोर मइ वाहणा (५१), सुलताण 'कइ' दरवारि आई (५६), दावल दानसवंद 'कइ' आगलि विछाओ ओली (६३), तीजइ 'कइ' आवत इं हवाल कीन्हा (१०२)।

–के : करणी 'के' झारतर भरया (१०२), मां 'के' सिर ऊपर फेरि फेरि भाने (१०९)।

'कइ' तथा 'के' में से 'के' परवर्ती ज्ञात होता है, और हो सकता है कि प्रतिलिपि-प्रक्रियाकी परम्परामे आया हो।

बहु० पु० की विभक्ति 'के' है :

पाँच सोवन्न 'के' टका देवरइ धरे (४), दरेस पंच सइ भांग 'के' नूते दीदे घूरते हइ (२१), साहिजादे 'के' पवे फुरकणइ लागे (३०), मालनी 'के' औसान भागे (३०), साहिजादे 'के' सिर ऊपर अवारणा हइ (४८), तबीब 'के' रोर भागे (५८), पंच सइ सोने 'के' टके पोरइ मिलाओ (५८), सुलतांण 'के' बखत बड़े (७४), दुनी 'के' दीदे ऊघरे (७४), इयारह 'के' दिल-भरे (७४), दुसमणां 'के' दिल अरे (७८), पय ढढिणिया 'के' बोल (८१)।

बहु० स्त्री० की विभक्ति –कीयां। क्या है :

जमा मसीति मिस्त 'क्या' भोरइ लागी (२२), साहिबा सहिन 'क्यां' भरी हइ (२६), जब की सहुण 'क्यां' 'सिराई (५५)।

एक० की 'का', 'की' और बहु० की 'के' तथा 'किया' विभक्तियाँ दक्खिनीमे भी मिलती है।[1] 'का' का विकृत रूप दक्खिनीमे 'के' मिलता है। 'कइ' नही। किन्तु प्राचीन दक्खिनीमें यदि वह 'कइ' रहा हो तो आश्चर्य न होगा, क्योकि दक्खिनी साहित्यके लिए प्रयुक्त फ़ारसी लिपिमे 'कइ' तथा 'के' एक ही प्रकारसे लिखे जाते है।

–हंदा परिवारकी विभक्तियाँ निम्नलिखित है—

–हंदा : एक० पुं० की विभक्ति –हंदा है : लोयन 'हंदा' लम्भ (१०), आगम 'हंदा' मयण (१२), अंबर 'हंदा' इंदला (८५)।

–हंदे . बहु० पु० की 'हंदे' है : पावस 'हंदे' मोर (३३)।

हंदा-समूहकी ये विभक्तियाँ केवल पद्योंमे मिलती है, अतः ऐसा ज्ञात होता है कि ये प्राचीनतर भाषारूपकी सम्पत्ति थी और पद्योंमे इनका प्रयोग कुछ-न-कुछ बना हुआ था, यद्यपि तत्कालीन बोलचालकी भाषामे षष्ठीके क्षेत्र-मे –का समूहकी विभक्तियोने पूरा अधिकार कर लिया था।

एक० पु० मे एक स्थानपर -हि विभक्ति भी मिलती है :

–हिं 'जुवाणिहि' जोग जूआ (७३)।

षष्ठीके लिए कुछ निर्विभक्तिक प्रयोग भी रचनामे मिलते है :

लंक 'धण' कइ मुट्ठियां (१५), 'पिय' हत्थां भउ काम (१५) हत्था

---

१. 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ५५, तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३२० –उदाहरण।

'काम' स पीउ भउ (१८), 'अंबी अंपिनु' वट्टडी जाणि गिलदी ताहि (३१), 'साहिवां' नजरि (५६), 'साहिजादे' दीदे देषणइ लग्गे (५८), 'साहिजादे' दिल अउर दिल (६९), पाछइ 'साहा' सुपासण अनपती अंस चडाया (७४), 'दावल' दरबार सोर हूआ (७४), 'बीवियां' संग साहिजादा आइ दावल दरहि वादा (७६), 'जादे' जा दिन आगला 'साहिब' सा दिन रूप (८८), 'सट्टि लप' लिअंदा प्याला भग्गा हुइ (१०८), 'सट्टि लप' लिअंदा (१०८) 'समरकंद' साहिजादी बीबी विवाणां जाए (१०९)।

सप्तमी विभक्ति

सप्तमीकी सर्वाधिक प्रयुक्त विभक्ति –'इ' तथा –'अइ' है, जो अकारान्त शब्दोंमें लगती है।

–इ : जाणे नी नारंगियां वे अंगिया 'मझारि' (१४), 'कमरि' करंदा लेहु (१८), इतई बीच साहिजादा दावल कइ 'दरबारि' जाइ वग्गे (२०), जाणेअग्गि अयांगियां पड़ी पुराणइ 'दंगि' (२८), दीदे दिग्घ उचाइयां साहिब साहिब 'अंगि' (२८), जब की महण वयां 'सिरि' आई (५५), दावल दानिस-वंद कइ 'आगलि' विछाओ ओली (७३), पावहूं पाव सुलतांण दावल कइ 'दरबारि' आया (७०), बीवियां 'संगि' साहिजादा आइ दावल दरहि वादा (७६), वरणी 'सिरि' सिंदूर (७८), कउण गिलंदा 'पेलि' (८७), की पग 'पंतरि' चुक्कियां (१०४), टुकरे 'भंडारि' घरावड (११०), 'घरि घरि' लग्गी लाइ (११२)।

–अइ : दोइ अप्पणइ 'हत्थइ' कीयां (४), जाणे सीपि सुमुक्तियां 'कंठइ' कीर चुणंति (१३), जागतइ वेल्हतइ लगी किरण 'सुविहाणइ' (४०), टुक एक जमा मसीति भिस्त वयां 'भोरइ' लागी (२२), नारी दुइ 'जाडगहइ' हुइ (५३), 'साहिजादइ' साहिवां हियां (५७), साहिब सा 'हत्थइ' किया 'हत्थइ' साहिब साहि (७७)।

इस –अइ का परिवर्तित रूप –ए है जो दक्खिनीमें मिलता है[1]। –अइ और –ए मे प्राचीनतर –अइ लगता है। सम्भव है पुरानी दक्खिनीमें भी –अइ रूप ही रहा हो, जिसे फ़ारसी लिपिके कारण –ए पढा गया हो, क्योंकि फारसी लिपिमें दोनों एक ही प्रकारसे लिखे जाते हैं।

---

१. 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३२१।

कभी-कभी आकारान्त शब्दोंका –आ –ए में परिवर्तित हो गया है, और उसके साथ –ह जुड़ गया है: किन्तु इसका एक ही उदाहरण है और वह पद्यमें मिलता है : घरि पल्लरी 'घवेह' (१८)।

कभी-कभी अकारान्त। आकारान्त शब्दोंको इकारान्त करके उनमे स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें –आ। –आंह लगाया गया है :

'हेलियां' साहिजादे कह अग्गइ घर्‌यां (४), जाणे सीप 'मुमुक्खियां' (१३), ढड्ढिणि ढोरी अंखियां साहिव 'संमुहियांह' (५४), जे मुत्ताहल दिट्ठिया तइ तन 'मंझरिया' (६४)।

इनके अतिरिक्त स्थिनिवाची स्वतन्त्र शब्दोके घिसे हुए रूप भी जुड़े हुए मिलते हैं। इनमें-से दो प्रमुख है : एक तो 'मै' परिवारके और दूसरे 'पर' परिवारके।

'मै' परिवारके हैं मइ। मि। मै। महि। मंहि। मांहि . उसही महल 'मइ' आन्या (४०), महल 'मइ' आवतइ इंद्रका गर्व भाग्या (४२), दिल्ली सहर 'मइ' ए ज घेरे (४७), कइ साहिजादे के साथ गोर 'मइ' वाहणा (५१), दिल 'मै' दिल आया (५३), पंच सइ सोने के टके पोरइ 'मि' लाओ (५८), अबीर 'महि' मुझइ भरम होइ (१०१), कुमकुमा कइ जल 'महि' तइं निकस्या (१०६), अबीर 'मंहि' पोजइं पोज देष्या (१०६), दीली 'मांहि' सौर पर्‌या (५१)।

'पर' परिवारकी है परि। पर तथा उप्परइ। उप्परि। उप्पर।

परि। पर : साहिजादा पलंग 'पर' लेट्‌या (४०), रंग 'पर' रंग ओढनी साहिजादइ दीनी हइ (१०२), जाणे नील कमल 'पर' वे दीयै की जाला (१०२), सिर 'परि' पेरो साहि (८५), चादर सिर 'परि' लीनी (१०८), लड डुकरे गउप 'परि' चीना (११३)।

उप्परइ। उप्परि। उप्पर : साहिजादे चादरि सिर 'ऊपरि' लीनी (८२), साहिजादे सिर 'उप्परइ' मो साहिवीयां तनफेरि (३६), साहिजादे के सिर 'उप्पर' अवारणा हइ (४८), फेरिवे दस लाप टके उर सिर 'उप्परइं' (४६), मा के सिर 'उप्पर' फेरि फेरि माने (१०९)।

निर्विभक्तिक प्रयोगोकी भी सप्तमीमे कोई कमी नही है :

'वरस' नव तीनि तेगह पवाणा (२), एकसि 'घउस' देवर ढढिनी मालिनी का भेप कर्‌यां (४), पिय 'हत्या' भउ काम (१५), जाणे राई

'वेलियां' फूल्ली नीकलियांह (१७), दट्ठिनी 'गाइबा' ही गुमान बोली (२७), दीदे दिघ उचाइयां साहिब साहिब 'अंग' (२८), दट्ठिनियां हिय 'हत्थ' लइ—(३६), जउ 'जोरा' तउ तुज्झ ही जउ 'गोरा' तउ तुज्झ (३७), मुलतांण केलि की 'खडकी' खटे हुइ (३८), आणि 'दरबार' रोके (५१), दहिणि दोरी अंपिया साहिब 'संमुहियाह' (५४), नारी नारि 'मुहत्थियां' नारी नारि 'मुहत्थ' (५७), साहि 'घरां' माहिदियां जिणि दिण्णियां मुजाणि (६२), 'लज्जा' गउ गुण आगुणी घण 'लज्जा' वउहार (६१), 'लज्जा' गउ जुअ जोअणा (६१), माहिबियां मर 'मद्धरा' हुंस करेंदा केलि (६३), जमाजमीति 'मसीतियां' दुहुं दिट्ठियां रखाइ (७२), वर 'गिर' मोहइ मेहरा वरणी 'गिरि' मिट्ठूर (७८), प्रथम 'पलिंगा' माहिदा साहि दिहंदा वयण (८५), इह अउर उगंदा 'गयण' (८५), जे अंबा ही 'अब्ब' (९८), आए 'पग' पाण (१०१), 'फुरमाण' धाई (१०२)।

दक्खिनीमें भी इसी प्रकारके निर्विभक्तिक प्रयोग पाये जाते हैं[1]।

सम्बोधन :

सम्बोधनकी दो प्रणालियां मिलती हैं। एक तो सम्बोधनात्मक अव्ययोंके साथ पुकारनेकी, और दूसरी बिना इन प्रकारके अव्ययोंके पुकारनेकी। प्रथम प्रणालीके प्रयोग भी दो प्रकारके हैं: या तो संज्ञाएं अपने सामान्य रूपमें आयी हैं और या तो विकृत रूपमें।

सामान्य रूपमें : एक० पु० : 'साहिजा' मुझइ जानता हुइ (४९), 'साहिजा' साहि वहां (४९)। एक० स्त्री० : 'साहिबां' दीदे उनइ (२७), 'साहिबा' साहिजादा जोवइगा (५५), 'साहिबा' आना आणि (१०१), 'मालणिया' तैं दिट्ठियां (१७), 'दहिनियां' सोना भला (३५), 'दहिनियां' हिय हत्थ करि (३६)।

बहु० पु० : 'दोस्तान दोस्तान' करि हुस्तक्यां दीनी (२२), 'दोस्तान दोस्तान' नत्ता भत्त लाओ (२५), दरेम 'दोस्तान' भत्त लइ आवनइ हुइ (२६)।

विकृत रूपमें : एक० पु० : 'साहिजादे' आपणी जंभीरियां मुहंगीयां न वेचुगी (५), 'साहिजादे' केही कहूं साहिब मूरति मुज्झ (१०), 'साहिजादे' पंथा न होइ (१८), 'साहिजादे' किणि बुझाइयां (५८)।

---

१. वही।

प्रयुक्त अव्यय निम्नलिखित प्रकारके हैं :

पु० । स्त्री० 'वे' : 'वे' दावल दानमवंद का घर (२५), 'वे' दावल साहिजादा जीइयां (७४), 'वे' साहिवा अजहुं न आई (१०६)।

पु० । स्त्री० 'अवे' : 'अवे' मालनियां तूं इहि काम आई (९), 'अवे' जमा राति कदि हइ (२०), 'अवे' फिरस्तइ फेरे (४७), 'अवे' मरणा तइ क्या बुराई (१०६)।

स्त्री० 'रि' : देपि 'रि' दिपुं (५३)।

दक्खिनीमें भी ये दोनों प्रणालियाँ पायी जाती हैं। उसमें उपर्युक्तमें-से 'रि' का पुल्लिग रूप 'रे' है तथा एक अन्य अव्यय 'ए' है[1]।

मिश्र विभक्तियाँ :

कहीं-कहींपर एकसे अधिक विभक्तियाँ एक साथ ही आयी हे . दिल्ल 'मइ थी' दिल्ल क्या होइगा (५५), कुमकुमा कइ जल 'महि तइ' निकस्या (१०६)।

सर्वनाम

उत्तम पुरुष :

एकवचन . कु० में एक० कर्त्ताके दो रूप आते हैं 'हूं' तथा 'मइं' :

हूं : हां साहिजादे 'हूं' इहि काम आई (९), 'हूं' मालनी इहि काम (९)।

मइं । मइ : 'मइं सउणा मुणि दिट्ठिया (६३), 'मइं' जाणिया निसीव (६९)।

यह मइ । मइं दक्खिनीके 'मैं' से तुलनीय है। डॉ० श्रीराम शर्माने लिखा है कि 'मइ' रूपका प्रयोग दक्खिनीके अनुप्रासके लिए ही पंक्तिके अन्तमें हुआ है।"[2] किन्तु यह सम्भावना भी विचारणीय है कि वास्तविक रूप 'मइं' ही रहा हो, कमसे कम पुरानी दक्खिनीमे, इसीलिए अनुप्रासके स्थानोमे अव भी 'मइं' वना हुआ है, अन्यथा 'मइं' और 'मैं' के फ़ारसीमें सर्वथा एक-से लिखे जानेके कारण और आधुनिक उर्दू तथा हिन्दीमे 'मैं' का ही प्रचलन होनेसे

१. वही, अनु० ३२२।

२. वही, अनु० ३२३।

शेष स्थानों पर 'मइं' को भी 'मैं' पढ़ा गया हो। दक्खिनीमें 'हूं' नहीं है।

एक० कर्म-सम्प्रदान : कु० में इसके दो रूप मिलते हैं, एक तो 'मुझ' से बना हुआ 'मुझइ' तथा दूसरा 'मेरा' से बना हुआ 'मेरे कुं' :

–मुझइ : साहिजादा 'मुझइ' जाणता हइ (४९), अबीर महि 'मुझइ' भरम होइ (१०१)।

–मेरे कुं : 'मेरे कुं' सहम होइगा (८८)।

दक्खिनीके 'मुझे' और 'मेरे कूं' तुलनीय हैं।[1] 'मुझइ' और 'मुझे' फारसी लिपिमें समान रूपसे लिखे जाते हैं, इसलिए यह विचारणीय है कि पुरानी दक्खिनीमें रूप 'मुझइ' था या 'मुझे'।

एक० सम्बन्ध : कु० में इसका रूप 'मेरा' है :

एक० मेरइं : एक पुगरा 'मेरइं' हो पुराणा (४६)।

बहु० मेरे : 'मेरे' दीदे दूषण लग्ग (८)।

दक्खिनीका 'मेरे' इससे तुलनीय है।[2] यह विचारणीय अवश्य है कि जो सामान्यतः 'मेरे' समझा जाता रहा है, वह पुरानी दक्खिनीमें 'मेरइ' तो नहीं था, क्योंकि फ़ारसी लिपिमें दोनों एक ही प्रकारसे लिखे जाते हैं।

सम्बन्ध० मे पद्योमे 'मैं' के विकृत रूप 'मो' तथा 'मुज्झ' बिना प्रत्ययके भी प्रयुक्त हुए हैं : 'मो' साहिबियां तन फेरि (३६), यह करंदा 'मुज्झ' हइ (३७)।

दक्खिनीमें मुंज। मुझ ही मिलता है।[3] 'मो' नहीं मिलता है।

बहुवचन : कर्त्ता बहु० के रूपमें 'हम' तथा उसके विकृत रूपमें 'हमइं' हैं :

हम : 'हम' तब ही पाइ (५५), तब कछू 'हम' गावइ (५८), 'हमहु' सुलतान पेरो साहि उपाए (१०८)।

हमइं : जहमतियां 'हमइं' सोधी (७३)।

इस 'हमइं' का –अइ संज्ञाकी कर्त्ता विभक्ति -अइं से तुलनीय है।

विकृत सम्बन्ध० एक० हमारा : 'हमारा' क्यां तू पराई (५५), 'हमारा' क्या चलइ (६६)।

बहु० : हमारे : 'हमारे' हस्तइं हस्तइं दीदे दूपणइ आया (३९)।

---

१. वही। २. वही। ३. वही।

ये सभी रूप दक्खिनीके रूपोंसे तुलनीय हैं।[1]

सर्वनाम : मध्यम पुरुष

कु० मे मध्यम पुरुष सर्व० के लिए 'तूं' तथा उसके विभिन्न रूप हैं। अविकृत एक० में तु। तू। तू प्रयुक्त है।

या 'तू' इहि काम आई (९), 'तू' रस कामंधा भूपिया (३२), 'तु' कहा थां (३८), हमारा क्या 'तू' पराई (५५)।

अविकृत बहु० : 'तुमहं' प्रयुक्त हुआ है. 'तुमहं' वहर करणा (७५)।

विकृत एक० कर्त्ता के दो रूप मिलते हैं 'तइ' तथा तइं :

तइ : 'तइ' तत्ता पांन पाईया (५४)।

तइं : ते 'तइं' ही हसि हंसरा वइ वर गंजरियाह (६४)।

किन्तु हो सकता है कि 'तइ' में 'इ' का विन्दु भूलसे छूटा हुआ हो।

विकृत एक० सम्वन्धके लिए 'तेरा' तथा 'तुज्झ' प्रयुक्त मिलते हैं :

तेरा. मुलताण कह्या 'तेरा' ई हइ (१११)।

तुझ : जउ जोरा तउ 'तुज्झ' ही जउ गोरां तउ 'तुज्झ' (३७), ओर करंदा 'तुज्झ' (३७)।

'तू', 'तेरा' 'तुज्झ' और 'तुम्ह' दक्खिनीमे भी पाये जाते हैं।[2]

सर्वनाम। विशेषण : निकटवर्ती निश्चयवाचक

अविकृत एक० : कु० में इसका रूप पु० 'इह' तथा स्त्री० 'अइ' है।

पु० : इह : 'इह' अउर उगंदा गयण (८५)।

स्त्री० : अइ : दुनी साहिजादइ 'अइ' मत्या लीनी (४१)।

विकृत एक० का रूप 'इहि' है : 'तू' इहि काम आयी (९) हूं मालनी 'इहि' काम आयी (९), हूं मालनी 'इहि' कम्म (९)।

अविकृत वहु० का रूप 'ए' है जो पुल्लिंगका है :

'ए'. दिल्ली सहर मइ 'ए' ज घेरे (४७)।

विकृत वहु० का 'एण' है जो पुल्लिगका है.

---

१. 'दक्खिनी हिन्दी,' पृ० ४६, तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास,' अनु० ३२५।

२. दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास, अनु० ११४।

'एग' : 'कंपण' लागे अंगदल 'एण' मुणंदा हल्ल (६७)।

'इह' और 'एण' से दक्खिनीके 'ई', 'ये' और 'इन' तुलनीय हैं।[1]

सर्वनाम। विशेषण : दूरवर्ती निश्चयवाचक

कु० मे तीन परिवारोके सर्व०। वि० दूरवर्ती निश्चयवाचकके रूपमे प्रयुक्त हुए हैं : वह परिवार, स परिवार और त परिवारके। किन्तु स परिवारका प्रयोग बहुत सीमित है : वह केवल अविकृत एक० कर्त्ताके लिए ही प्रयुक्त हुआ है, शेष रूपोंके लिए उसने त परिवारको अपना स्थान दे दिया है।

वह परिवार :

अविकृत एक० : ओह। ओही (ओह + ई) हानु (५०)।

विकृत एक० : वइ : 'वइ' पुज्जइ दिल लम्भियां (६२)।

उस : अद 'उस' सू क्या करण आईयां (५८)। 'उस' का वरण मुहंदा भाग (८), मां साहिबा का न्याउ थछग 'उस' कइ दावल पछइ (१०१)।

'त' परिवार :

विकृत एक० कर्त्ता . जिणि लगाइया 'तिणि' ही बुझाइयां (५८)।

वही, कर्म : अंपी अंपिनु वट्टडी जाणि गिलंदी 'ताहि' (३१)।

वही, करण : 'तिसही मुं' पुकारन्इ (४५), 'तिस ही मुं' यो कहइ (५०)

विकृत बहु०, कर्त्ता। कर्म : 'ते' तइ ही हसि हंसरा वइ वर गंजरियाहं (६४), 'तें' सु कहंदी गाइ (८४), 'ते' हवाल्ल कहणा (१०२), जिणि खाइयां 'ते' दियावहू (५)।

वही, सम्बन्ध : 'तिन्ही' तिन्नि अवत्थडी (९५)।

स परिवार :

अविकृत एक० : सा : जादे जा दिन अग्गला साहिब 'सा' दिन रूप (८८)

वही : सो : जिण ही जीय जहमत्तियां 'सोई' हुआ तबीब (६६)।

वही : सु : 'सु' मुह मुहर जंमीरिया मांगती हइ (५), बोलणा हइ 'सु' बोल्लि (५१), ते 'सु' कहदी जाइ (८४)।

---

१. वही, अनु० ३३४।

इन तीनो परिवारोंका प्रयोग दक्खिनीमें भी हुआ है और अन्तर भी अधिक नही है।[1]

सर्वनाम : विशेषण : निजवाचक

निजवाचक सर्वनामके रूपमे 'अप्प' । 'आप' का प्रयोग हुआ है।

एक० कर्त्ता० · आप : 'आपइ' छपी किनहुं छिपाई (१०६)।

वही, कर्म० : अप्प : जे लोड़दे 'अप्प' (९५)।

वही, सम्बन्ध (अविकृत) : 'अप्पाण' पर डर (२५)।

वही, सम्बन्ध (विकृत) : अप्पणइ : दोइ 'अप्पणइ' हत्थइ कीयां (४), 'अपनइ अपनइ' घरह की वाटचां लीनी (३८), खइर करंतइ कोडि कहि मन 'अप्पणइ' विचारि (१०७)।

बहु० कर्त्ता, पु० : अप्पा : 'अप्पा' काम कमच्छला वहु देखंदा कग्ग (९३)

वही, सम्बन्ध (अविकृत) पु० : अप्पणा : जाणे सर्पनि अप्पणा चर चिंदुआ भर्पति (११)।

वही, सम्बन्ध (अविकृत), स्त्री० : आपणी : आपणी जंभीरियां मुहंगियां न वेचुंगी (५)।

वही, सम्बन्ध (विकृत), पु० : आपणइ . 'आपणइ' कपरे कीए (३८)।

इन प्रयोगोसे तुलनीय हैं दक्खिनीका अपना । अपन।[2]

सर्वनाम । विशेषण : सम्बन्धवाचक

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम । विशेषण 'ज' परिवारके हैं। विशेषणके रूपमें अविकृत रूप प्रयुक्त होता है और सर्वनामके रूपमे दोनो प्रयुक्त होते है : अविकृत तथा विकृत रूप।

एक० विशेषणके रूपमें :

जो . 'जो' दरवेस ज्यु था (२३), 'जोई' दानसवंद आवइ (५०)।

जु : 'जु' फुरमाण दीना (७५)।

जा : जादे 'जा' दिन अग्गला (८८)

---

१. वही, अनु० ३३२–३३३।

२. वही, अनु० ३३०।

एक० सर्वनामके रूपमें :

कर्त्ता (अविकृत) जो : 'जो' आवे (२०)।

कर्त्ता-कर्म (विकृत) : जिण। जिणि : 'जिण' मुहर जंभीरियां लिन्न (३), 'जिणि' लगाइयां तिणि बुझाइयां (५८), साहि धरा नाहिवियां 'जिणि' दिण्णयां मुजाणि (६२), जिण' ही जीय जहमत्तियां (६६)।

सम्बन्ध० पु० : जिसका, स्त्री० : जिसकी : 'जिनकी' मूरति लोवनइं-(८)।

बहु० विशेषणके रूपमें :

जे : अप्पाण पर डर गया 'जे' आण मर (२५), 'जे' 'जे' गनि उगनियां काल्हि कहंदी केल्हि (८२), 'जे' गनि नुट्टि मुगुजीयां (८४)।

बहु० सर्वनामके रूपमें :

कर्त्ता-कर्म (अविकृत) : जे : 'जे' मुत्ताहल दिट्ठियां तउ तन मंकरियां (६४), 'जे' दिट्ठा ही पिट्ठ (९२), 'जे' लोअंदे जग्ग (९३), 'जे' पेम मु वुट्ठइ धार (९४), 'जे' लोडंदे अप्प (९५), 'जे' अणरत्ता ही रत्त (९६), 'जे' जुग जोइ अरत्त (९७), 'जे' अंबा ही अव्व (९८), 'जे' जाणि परंता गत्त (९९), 'जे' रंगइ करियांह (१००)।

कर्त्ता-कर्म (विकृत) जिणि। जिणइ : 'जिणि' पाई है ते दिपावहु (५), 'जिणइ' दुणिया जाणी (१०७)।

अविकृत 'जो' तथा विकृत 'जिस' दक्खिनीमें भी प्रयुक्त होते रहे हैं।[1]

सर्वनाम। विशेषण : अनिश्चयवाचक

अनिश्चयवाचक सर्वनाम। विशेषणके रूपमें 'कोउ। को' और 'के' के विभिन्न रूप प्रयुक्त हुए हैं।

एक० सर्व० कर्त्ता : कोउ : जब नव 'कोउ' कुनादे होउ तउ कछु कहुं (५०)।

विशे० : को : मिलावणा तमहं 'को' घो (७३), 'को' घरियां घर लग्गियां रत्ता तोड अरत्त (९९)।

विशे० : के : 'के' दिन के ही केलिया 'के' दिन केही केलि (८७)।

१. वही, अनु० ३३४।

विकृत कर्त्ता० 'किन' : 'किन' हुं छिपाई (१०६)।

विकृत सम्बन्ध 'किसऊ' : 'किसऊ' की डीवी 'किसऊ' की डांगी, 'किस हू' की खालरी चोरी (८३)।

विकृत सम्बन्ध 'केहु' : 'केहु' की वाट इ चाहते हुइ (२०)।

'एक' विशेषणका भी प्रयोग अनिश्चयवाची सर्व० के रूपमे हुआ है :

अविकृत 'एक-स' : 'एकस एकस कु' गहुंगी (५)।

विकृत कर्त्ता एकइं : 'एकइं' योग (९०), 'एकइं' भोग (९०)।

'को', 'किस' तथा 'किन' दक्खिनीमें भी प्रयुक्त हुए है।[1]

सर्वनाम। विशेषण : प्रश्नवाचक

जीववाची प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कउण'। 'कुण' परिवारके है, और अजीववाची 'क्या' परिवारके :

अविकृत 'कउण' : 'कउण' करंदा काणि (६२), 'कउण' गिलंदा पंलि (८७), 'कउण' करंदा वप्प (९५), 'कउण' हुअंदा हाल (१०५)।

विकृत कर्त्ता 'किणि' : साहिजादे 'किणि' बुझाइयां (५८)।

विशे० 'कुण' : 'कुण' स केही पूंगरी जिहि मुहर जंभीरियां लिन्न (७)।

सर्व०। विशे० 'क्या' : खाइयां 'क्या' कहावइ (५), पानइ की क्या चलावइ (४०), अर दिल्ल मइं थी दिल 'क्या' होइगा (५५), मुलतांण 'क्या' रिसाई (४८), 'क्या' स नर, क्या स नारी (५६), 'क्या' करहिगा मरू (५७), अब उससुं 'क्या' करण आइया (५८), पाछइ 'क्या' कीजइ तबीवियांनु (५०), हमारा 'क्या' चलइ (६६), 'क्या' बातियां निसीव (६८), जहमतीयां 'क्या' जाणइं (७३), इती वात कुं 'क्या' समीना (७५), ढढिणियां 'क्या' गाया (८४), न जाणीइ साहिजादे कुं 'क्या' सु रोग (९०), न जाणीयइ गिरइती 'क्या' होइ (१०१), अबे मरणा तइं 'क्या' बुराई (१०६), मां 'क्या' पून (१०८), अउर 'क्या' पून (१०८)

कहा : मुलतांण 'कहा' इउं कीया (७४)।

सर्व० काइं हूआ.हूअदे 'काइं' (११४)।

उपर्युक्त 'कउण' तथा 'क्या' से दक्खिनीके 'कौन' तथा 'क्या' तुलनीय है।[2]

---

१ 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३३५, तथा 'दक्खिनी हिन्दी', पृ० ५१।

२. 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास,' अनु० ३३७-३३८।

'कउण' तथा 'कौन' का अन्तर नागरी तथा फ़ारसी लिपियोंके अन्तरके कारण तो नहीं है, यह अवश्य विचारणीय है।

विशेषण

विशेषण : गुणवाचक

रचनामे विशेषणोके लिंग तथा वचन विशेष्यके लिंग-वचनके अनुरूप दिखाई पड़ते हैं। एक०के लिए सामान्यरूपोंमें –आ तथा –ई लगाकर क्रमशः पुल्लिग और स्त्रीलिंग वनानेकी व्यापक प्रवृत्ति है।

एक० पु० –आ : वर वोलिया 'वडाम' (१), साहिजादा कुतवदी 'जुआंणा' (२), तेगह 'पत्राणां' (८), वरण 'मुहंगा' भग्ग (८), मांगि स 'तत्ता' भात (१९), जाणे जीवण 'इक्करा'—(२९), तूं रस 'कामंघा' 'भूपिया' (३२), ढढ्डिनियां सोना 'भला' (३५), तइ 'तत्ता' पांन षाइया दाभइ साह हियांह (५४), नेह 'समट्टा' निठ्ठ (९२)।

एक० स्त्री० –ई : ढढ्डिनि दानसवंदकी 'अट्ठी' देवर नाम (१) 'दोसी' अग्गा वीवी विवाना वइट्ठी (३), कुण स 'केही' पुंगरी (७), 'पक्की' जाणि जंभीरियाँ (८), 'झुट्ठी' मालनि रुन्न (७), साहिजादे 'केही' कहूं साहिव नूरति मुम्भ (१०), विधि रसु 'रंगी' वाम (१५), पाइ स रत्ता पंकजां 'अन्नी' अंगुलियांह (१६), आसा 'अंवी' ढढ्डिनी (२३), ढढ्डिणि या 'णोकी' कही (५२), 'नीकीय' नारी देपु (५२), इह तउ 'उलटी' कही (३३), साहिवरां साहिवियां जिण दिण्णियां 'सुजांणि' (६२), लज्जा लीक 'उलंघणी' (६६), 'असि' अस माना तर तरुणि (७१), वसंत रितु 'पाछी' भई (८९)।

वहु० पु० –आ। आं : ही 'उट्ठा' दिट्ठाइयां (१४), पाइ स 'रत्तां' पकजा (१६)।

वहु० पु० –ए : सव कोउ 'कुसादे' होउ (५९), सुलतान के वपत 'वड़े' (७४), दुनिया दाणसवंद 'वड़े' वपाणइ (७५)।

वहु० स्त्री० –यां : 'पक्कियां' नारिग्यां गंभीर्‍यां भर्‍या (४), वेलियां 'वकिया' कन्यां (४), अपनी जंभीरियां 'सुहंगियां' न वेचुंगी (५)।

वहु० स्त्री० –यांह : जाणे राई वल्लियां फूल्ली 'नीकलियांह' (१६)

कहीं-कहीं वहु०के लिए भी एक० रूप ही प्रयुक्त हुआ है : 'मूआ' वहंदा साहि (११४)।

दक्खिनीमें भी प्रायः इसी प्रकार गुणवाचक विशेषणोंके लिंग और वचन-का निर्माण होता है।[1] डॉ० श्रीराम शर्मा लिखते हैं, "पंजाबीमें विशेष्यके लिंग और वचनके अनुसार विशेषणके लिंग तथा वचन प्रभावित होते हैं, दक्खिनीमें इस प्रकारके प्रयोग पंजाबीके प्रभावको प्रकट करते हैं।"[2] दक्खिनी-में भी यह प्रवृत्ति खड़ी बोलीसे ही गयी है, यह इस रचनासे प्रमाणित है। इन्शाके गद्यमें जो यह प्रवृत्ति मिलती है, वह भी इसी कारण है।

विशेषण : परिणामवाचक

पु० इता : 'इता' ही पूछता सदि हइ (२०)।

स्त्री० इती। इतनी : 'इती' वात करतइ बीबियां ऊठी (७३), 'इती' वात कुं क्या समीना (७५), 'इतनी' वात करतइ—(३८), 'इतनी' वात्यां कर-तइ—(४१) 'इतनी' करतइ कुपरे फेरे (५५), 'इतनी' वात करतइ—(७६), (८९), (९०), (९१), (१०१)।

स्त्री० उंती . न जाणउ 'उंती' वरी कित एक अमरे (१०९)।

पु० कितएक : न जाणउ उती घरी 'कितएक' अमरे (१०९)।

पु०। स्त्री० कुछ : 'कुछु' पाहु 'कुछु' पुलावहु (२५)।

दक्खिनीमें भी ये विशेषण मिलते हैं।

विशेषण : संख्यावाचक

संख्याएँ बहुत थोड़ी मिलती हैं :

एक। एक–स। एक–सि। हेक : सदकउ 'एक' फुरमाण ल्हुं (५९), 'एकस –एकस' कुं गहुंगी (५), 'एकसि' द्यउस देवर—(४), मुती 'हेक' रुलंति (१३)।

दोइ। दुइ। दो : 'दोइ' अप्पणइ हत्थइ कीयां (४), वार 'दुइ' च्यारि यों ही पुकार्‍या (४६), यों करंतइ रोज 'दुइ' च्यारि गले (५१), नारिंगी 'दो दो' च्यारि वंटे दीयां (४)।

बे : जाणे नी नारिंगिया 'बे' अगिया मझारि (१४)।

जुय : लज्जी गए 'जुय' जोवणा (६१)।

तीनि : 'तीनि' अरव—(११०)।

---

१. वही, अनु० ३५१।

२. वही, अनु० ३५३, ३५५।

तीजी : ढढिणी 'तीजी' वार (८३)।

च्यारि : वार दुइ 'च्यारि' (४६), रोज दुइ 'च्यारि' गले (५१), नारिंगी दो दो 'च्यारि च्यारि' वंटे दीयां (४)।

पाँच : 'पांच' सोवनके टके देवरइ धरे।

दस, वारह, वासठ, नवे, सइ, लाष, करोड़, अरव : फेरिवे 'दस' 'लाष' टके (५९), 'नवे' 'पंच' 'सइ' हत्य सोवन्न लट्ठी (६), दरेस 'सइ' पंच—(२१), पंच 'सइ' सोने के टके (५८) तीनि 'अरव' वासठ करोड़ वारह लाष (११०)।

ये संख्याएँ प्रायः इसी प्रकार दक्खिनीमें भी मिलती हैं।[1]

क्रिया

क्रियार्थक संज्ञा :

यह धातुमे णा। ना लगाकर वनी है :

भत्तु लइ 'आवनइ' हइ (२६, २८), लज्जा लोयन 'नच्चणा' लोय हसंदे कल्लि (३८), दुनिया दुक्ख लगाइया अति 'जागणा' अरंग (३५). वीवी दुख 'लइनइ' कहइ परि 'छूपना' न जाणइ (४०), हाला कइ 'मारणा' न थी (४७), 'मारणा' हइ कि 'जियावणा' हइ (४८), माल 'दारणा' हइ (४८), साहिजादे से सिर ऊपर 'अवारणा' हइ (४८), 'फेरणा' हइ (४८), सुल्ताण 'दइणा' पूव हइ (४९), वीवीहुं 'रोवणां' मांड्या (५१), 'वोलणा' हुइ सु वोलि (५९), साहिजादे कुं 'जीयावणा' (५१), जं 'धावणा' नु धाउ (७०), लाजहं 'सोचणा' हूआ (७३), 'मिलावणा' तुमहं को वी (७३), ते हवाल 'कहणा' (१०२), जिणइ दुनिया जाणी तिणइ का 'लहणा' (१०२)।

डॉ० श्रीराम शर्माके अनुसार दक्खिनीमें-ना लगाकर क्रियार्थक संज्ञा-रूप वने हैं।[2] किन्तु 'णा' और 'ना' फ़ारसी लिपिमें एक-से लिखे जाते हैं, इसलिए यह विचारणीय है कि पुरानी दक्खिनीमे क्रियार्थक संज्ञाओंमें फ़ारसीके 'नूं-अलिफ़' का ध्वनिक मूल्य क्या था।

प्रेरणार्थक रूप

यह धातुमें –आव् और –लाव् लगाकर वना है।

–आव् : विरपे भराए (९०), वारि उंछह लगाए (६०), घर वणाए

१. वही, अनु० ३५३, ३५५।
२. वही, अनु० ३७०।

(९०), भूषण भराए (९०), त्रितन तणाए (९०), नयणे दिपावइ (३), खाइयांका कहावइ (५), ते दिपावहु (५), पानइकी क्या चलावइ (४०), टुकरे भंडारि वरावउ (११०)।

लाव् : कुछ पाहु कुछ पुलावहु (२५), जीव इ तउ जिलाओ (५८)।

विधिके रूप :

ये प्रच्छन्न 'तू' के साथ –इ। –हि, –अइ। –ए अथवा –अ लगाकर, प्रच्छन्न 'तुम'के साथ –उ। –अउ। –अहु। –ए लगाकर और प्रच्छन्न 'आप के साथ –ई। –इय अथवा –ई। इं लगाकर बने है।

–इ। –हि : 'धरि' पल्लरी पवेहि (१८), आरतियां करि 'हेरि' (३६), 'देपि' रि दिपुं (५३), वोलणा हइ सु'त्रोलि' (५९), मो साहिवियां तन 'फेरि' (३६) 'खाहि' न कच्चा पांन (३२), साहिवां आसा 'आणि' (१०१), 'मागि' वे लाल ढमरे (१०९), 'रापि' भावइ 'गमाइ' (१११)।

–अइ। ए. साहिवां दीदे 'ङनइ' (२७), वे मालिनिया आइयां 'करे' (४)।

–अ : ईर कहंदा 'वुज्झ' (३७)।

–उ। अउ : तवीव तमांम दूरि 'करउ' (४८), जं त्रावणा 'सु घाउ' (७०) तउ मिलि मंगल 'गाउ' (७०), नीकी नाडी 'ढेपु' (५८), साहिजादे दीदे न 'भरु' (५७), लज्जी न 'डरु' (५७), कीयां सु 'करु' (५७), टुकरे भंडारि 'वरावउ' (१११)।

–अहु : एताल 'व्यावहु' (५), नातर मुहर मुहर जंभीरियां—'ल्यावहु' (५), कुछ 'पाहु' कुछ 'पुलावहु' (२५)।

–ओ : पंचसइ सोनइ के टके पोरइ मि 'लाओ' (५८), जीवइ तउ 'जिलाओ' (५८), दावल कह आगइ 'विछाओ' ऊली (७३)।

आदरार्थक प्रच्छन्न 'आप' के साथ यह रूप –ई। –इय लगाकर बना है :

–ई : क्या 'रिसाई' (४८), ढोल कई मंदिरि 'मांगी' (५०), जुवान 'हुवांगी' (५९), पाधर सर जिम 'कड्ढीइं' (९२)।

कर्मवाच्यके क्रियारूप –ईइ अथवा –इवा लगाकर बने है :

–ईइ न 'जाणीइ' क्या सुरोग (९०), न 'जाणीइ' गिरइ थी क्या होइ (१०१)।

–इवा : 'फेरिवे' दस लाख टके सिर उप्परइ (४९)।

सामान्य वर्तमान कालकी एक० क्रियाएँ सामान्यतः धातुमें –इ । अइ जोड़कर बनायी गयी हैं :

–इ । अइ : 'गज्जइ' गयण न नच्चिया पावस हदे मोर (३२), पूवतर पूव 'होइ' (४९), 'दज्झइ' साह हियाह (५४), सहुरा ढढिणी नु 'गाणइ' (७६), साहिजाद नू 'वपाणइ' (७६), तुंग तोरण करस 'ठाणइ' (७६), वर सिर 'सोहइ' सेहुरा (७८), काम म 'कहुइ' साल (७९), अबीर महं मुज्झइ भरम 'होइ' (१०१), 'देपइ' तउ पग लग्या (१०६), एक पाइ पग कुतुब दी अरदास 'करइ' (१११), जीर्गा 'जीवइ' कुतुबदी (११४)।

किन्तु इस रूपका प्रयोग भूतकालके अर्थमें भी हुआ है—क्रियाका रूप तो वर्तमान कालका है, किन्तु आशय उसमें भूतकालका है :

वाडियां वेलिया नयणें 'दिखावइ (२), साहिजादा आगइ सरकणइ न 'पावइ' (३), कपूर पानइ न 'भावइ' पानइ की क्या 'चलावइ' (४०), बीबी दुप लइनइ कहइ परि दूपना न 'जाणइ' (४०), जोइ दानमवंद 'आवइ' पानी 'अंजरइ' (४५, ५०), तिस ही नु यों 'पुकारइ' 'कहइ' (४५, ५०)।

–ए : कहीं-कहीं पर यह –अइ –ए में परिवर्तित हो गया है।

'जाने' की करतारियां (१०), जां 'आवे' (२०), दरबार देपतइ दरिया का गर्व 'वादे' (४३), साहिबा ढढ्ढिणी नु 'कहे' (५२)।

ऐसा ज्ञात होता है कि यह परिवर्तन प्रतिलिपि-प्रक्रियामें हुआ है क्योंकि –ए कदाचित् –अइ से परवर्ती है।

हइ : (ह्+अइ) : होना – वर्गकी क्रियाएँ 'हइ रूपमें तीन प्रकारकी हैं : एक वे हैं जो सामान्य वर्तमान कालको व्यक्त करती हैं, दूसरी वे हैं जिनमें किसी कार्यके होते होनेका भाव है और तीसरी वे जिनमें कार्यके आगे होनेका भाव है। पहलेमें केवल 'हइ' प्रयुक्त हुआ है, दूसरेमें क्रियाका वर्तमान कृदन्त रूप और 'हइ' हैं तथा तीसरेमें क्रियाका क्रियार्थक संज्ञा रूप और 'हइ' हैं—

१. मालनी पूव 'हइ' (४), जोवणा पुव 'हइ' (४), अंबे जमा की राति कदि 'हइ' (२०), एह करंदा मुज्झ 'हइ' (३७), सुलतांण दइणा पूव 'हइ' (४९), नाडी दुइ जाइगहइ 'हइ' (५३), तेरा ई 'हइ' (१११)।

२. सुलताण फुरमाण देता ई 'हइ' (४), मुहर मुहर जंमीरियां मांगती 'हइ' (५),—पूछता सदि 'हइ' (२०), मुज्झइ जाणता 'हइ' (४९), साहिजादा

हसता 'हइ' (१०८), पग देपि ऊलसता 'हइ' (१०८)।

३. मुझे धावनइ 'हइ' (२६), दरेम दोस्तान भत्तु लइ आवनइ 'हइ' (२६), फेरणा 'हइ' (४८), फकीर मारणा 'हइ' जीयावणा 'हइ' (४८), माल वारणा 'हइ' (४८), साहिजादे के सिर ऊपर वारणा 'हइ' (४८)।

कही-कहीपर धातुमे –अ प्रत्यय लगाकर भी सामान्य वर्तमानका काम लिया गया है:

–अ : मुख मुदिया न 'जीव' (९०)।

अछए (अछ् + अए) : 'हइ' के स्थानपर 'अछए' (अछ + अए) का प्रयोग भी एक स्थानपर मिलता है : मा साहिवां का न्याउ 'अछए' (१०८)।

अत्थि–नत्थि : संस्कृतके 'अस्ति-नास्ति' के प्राकृत रूप 'अत्थि-नत्थि' का प्रयोग भी एक स्थानपर हुआ है: नाडी 'अत्थि' तदोप कु 'नत्थि' तदोप न लेपु (५२)।

–इ : एक० 'इ' रूपसे वहु० का भी काम लिया गया है.

अंगन चंद निलाटियां भूनर 'नच्चइ' नयण (१२)।

हइ (ह् + अइ) : इसी प्रकार एक० 'हइ' से भी वहु० का काम लिया गया है :

दरवेस पंचसइ आसाउरी करते 'हइ' (३०), दरवेस सइ पंच मांग के नुते दीदे धूरते 'हइ' (८०), दरवेस सइपंच पुदाइ की वंदिगी करते 'हइ' (२०), दानिसवंद कइ घरह तइ सहन केहुकी वाटइ 'चाहते हइ' (२०)।

–अ : इसी प्रकार –अ का प्रयोग भी वहु० के लिए किया गया है :

अंगन चंद निलाटियां भू तर नच्चइ नयण।
जाणे 'आण' वधाइयां आगम हंदा भयण ॥ (१२)

यह अवश्य सम्भव है कि वहु० –अइ तथा हइ मे अनुस्वारका विन्दु रहा हो, जो प्रतिलिपि-क्रियामे छूट गया हो।

एक० -उ। अउं : रचनामे उत्तम पुरुप एक० तथा वहु० के रूप भी मिलते हैं। एक० का रूप धातुके साथ –उं। अउं जोड़कर वना है :

न 'जाणु' निवासा न 'जाणु' फजरि (४५,५०,५६), डीवी डांग पल्लरी न 'जाणु', कहा थी लीन्ही (४७), जीउ का जीउ 'जाणुं' (५६), न 'जाणउं' उंती घटी कित एक अमरे (१०९)।

एक० हूं : किन्तु कही-कहीपर वह वर्तमान कृदन्तके साथ 'हूँ' जोडकर वना है : हां मां जाणता 'हूँ' (४९)।

बहु० –अइं : उत्तम पु० बहु० रूप धातुमें –अइं जोड़कर बना है : जह-मतियां क्या 'जाणइं' (७३), तउ हम आणइं (७३)।

दक्खिनीमें 'हइ' के स्थानपर 'है' मिलता है।[1] किन्तु इस सम्भावनापर विचार करनेकी आवश्यकता है कि पुरानी दक्खिनीमें भी 'हइ' तो नहीं था जो फ़ारसीकी लिखावटके कारण अब 'है' पढा जा रहा है—क्योंकि फ़ारसी लिपिमें दोनो एक प्रकारसे लिखे जाते हैं।

'अछ' धातुका प्रयोग दक्खिनीमें और अधिक मात्रामे 'ह्' धातुकी भाँति हुआ है। इसके सम्बन्धमे डॉ० श्रीराम शर्माका कहना है, 'दक्खिनीमें इस धातुका प्रयोग गुजराती अथवा पूर्वी बोलियोके प्रभावसे आया।'[2] प्रस्तुत रचनाने इस मतको गलत प्रमाणित कर दिया है। दक्खिनीमें वह खड़ी बोली-से ही गया है और किसी भाषासे नहीं, यह स्पष्ट है।

वर्त्तमान कृदन्तके साथ 'हइ' और 'हइं' के स्थानपर 'है' और 'हैं' लगा-कर सामान्य वर्त्त० का रूप बनानेकी प्रवृत्ति दक्खिनीमें भी पायी जाती है।[3] उसी प्रकार उत्तम पु० एक० बहु० के उपर्युक्त रूप भी दक्खिनीमें मिलते हैं।[4]

क्रिया : अपूर्ण वर्त्तमान

अपूर्ण वर्त्तमानका सबसे अधिक प्रयुक्त प्रत्यय एक० में –अंदा है, बहु० मे इसका रूप –अंदे हो जाता है :

एक० पु० : अंपी अंपिनु वट्टडी जाणि 'गिलंदा' ताहि (३१), साहिजादा साहिबियां साहि 'करंदा' लल्लि (३४) साहि 'सुणंदा' सार (६१), कउण 'करंदा' काणि (६२), हंस 'करंदा' केलि : (६३), सेप 'सुणंदा' सार (८०), साहि 'दिहंदा' दयण (८५), इह अउर 'उगंदा' गयण (८५), साहि 'गहंदा' पाणि, (८६), दुक्ख 'छिणंदा' सिच्चणा सुक्ख 'फलंदा' जाणि (८६), तो न 'बुझंदा' धूप (८८), बहु 'देषंदा' कग्ग (९३) कउण 'हुअंदा' हाल (१०५)।

बहु० पु० : लज्जा लोयन नच्चणा लोय 'हसंदे' कल्हि (३४), झलहल 'झालंदे' नयण (८६), जे 'लोअंदे' जग्ग (९३), जे 'लोयंदे' अप्प (९५)।

---

१. वही, अनु० ३८१।
२. वही, अनु० ३७३।
३. वही, अनु० ३८१।
४. वही, अनु० ३८१।

किन्तु कहीं-कहीपर बहु० पु० के लिए भी एक० पुं० रूप –अंदा ही प्रयुक्त हुआ है : ज्युही पाउमु रंगिया ताइ 'मिलंदा' सब्ब (९८), जो जाणि 'परंदा' गत्त (९९)।

स्त्री० एक० का प्रत्यय –अंदी है : कालि्ह 'कहंदी' केलि (८२)।

अंति : संस्कृतके –अतिका भी प्रयोग अपूर्ण वर्त्तमानके लिए हुआ है, किन्तु उसमे लिंग और वचनका ध्यान नही रखा गया है :

केसा के कसि बंधियां के छुट्टियां 'रुलंति' (११), जाणे सर्पणि अप्पणा चर चीटुंआ 'भपंति' (११), बइणी विधि विलबिया मोती हैक 'रुलंति' (१३), जाणं सीप सुमुण्पिया कंठै कीर 'चुगंति' (१३)

इन दोनों प्रत्ययोका प्रयोग पद्योंमें ही हुआ है, यह अवश्य ध्यानमे रखने योग्य है।

क्रिया : पूर्ण वर्त्तमान

पूर्ण वर्त्तमानके रूप भूतकृदन्त रूपोके साथ हइ' लगाकर बनाये गये है :

स्त्री० एक० : साहिब्या सहिन क्यां 'भरी हइ' (२६), रंग पर रंग उठनी साहिजादइ 'दीन्ही हइ' (१०२)।

पु० बहु० : मुलताण केलि की खडकी 'खडे हइ' (३८)।

दक्खिनीमें भी पूर्ण वर्त्तमान इसी प्रकार बनता रहा है,[1] केवल उसमे बहुवचनका रूप 'हैं' है और एकवचनका रूप 'है' है। किन्तु यह सम्भावना अवश्य विचारणीय है कि पुरानी दक्खिनीमें भी 'हइ' न रहा हो, जो फ़ारसी-अरबी लिपिके कारण 'है' पढा गया हो, क्योकि फारसी लिपिमे दोनों एक प्रकारसे लिखे जाते है।

सम्भाव्य वर्त्तमान

सम्भाव्य वर्त्तमानकी रचना संज्ञा और अन्य पुरुषके लिए धातुमे –इ। –अइ लगाकर की गयी है :

–इ। अइ : जउ र 'बिलग्गइ' अंब (९) 'जीइ' तउ जिलाओ (५८), जउ कछू बीबीया 'बजावइ'—(५९), साहिब साहिब्यां बिरह जइ जीवंदा 'जाइ' (६५), तउ मूए हमारा क्या 'चलइ' (६६), मो दिल दिल अज्जइ 'मिलइ'—(७०), नदरि न 'लब्भइ' नदरि कूं नदरि पुकारत 'जाइ' (७२),

---

1. वही, अनु० ३८४।

पूत्र-पूत्र 'होइ' त्युं करावउ (७५), तुमु तरकस अर ईयार 'वाणइ' दुनिया दाणसवंद वड़े 'वपाणइ' (७५), ।

–ए : एक स्थानपर –ए लगाकर भी यह रूप बनाया गया है : साहिबा आसा आणि 'आए' पग पाण (१०१) ।

उत्तम पु० सर्वनामोंके लिए एक० के लिए -उं । अउं तथा बहु० के लिए –इ । अइ लगाकर सम्भाव्य वर्तमानके रूप बने हैं :

–उं । अउं : साहिजादा के ही 'कहूं' (कहुं ?)' साहिब सूरति तुम्ह (१०), हथ 'देपुं' (५७) तउ 'कछु' कहुं (५९), सच्चकइ एक फुरमाण 'लहुं' (५९), तमाना एक अबही 'दिखावउं' (५९), टुकरे 'पाउं' तउ कछू नाम ना 'चलाउं' (१०९) ।

–इ । अइ : तउ कछू हम 'गावइ' (५९), साहिजादा 'जिलावइ' (५९), तमाना एक अब ही 'दिपावइ' (५९); जहमतीयां क्या 'जाणइ' (७३), जीमी आकास तल होइ नउ हम 'आणइ' (७३) ।

हो सकता है कि कु० में प्रत्यय –अउं रहा हो, जिसका अनुनासिकका बिन्दु प्रतिलिपि-क्रियामें छूट गया हो ।

मध्यम पु० बहु० में सम्भाव्य वर्तमानका रूप –अउ लगाकर बनाया गया है : जउ सब कोउ कुमादे 'होउ' (५९),

क्रिया : सामान्य भविष्यत् काल

भविष्यत्में केवल सामान्य भविष्यतके रूप मिलते हैं ।

संज्ञा तथा अन्य पुरुष एक० में सामान्य भविष्यत् अन्य पु० के रूप धातुमें –अइगा । अहिगा लगाकर बने हैं :

–अइगा । अहिगा : साहिजादा 'जीवइगा' (५५), क्या 'करहिगा मरा (५७), पूत कूं पूत होइगा' (४), फेरतइ-फेरतइ पुदाइ रहम 'करइगा' (४८), पूत थी पूत 'होइगा' (४८), मेरे कुं सहम 'होइगा' (५५), जोरां ही 'जाइगा' (५५),

बहु० में धातुमें –अइगे लगा है : तउ 'कहइंगे' ढढिनी तइ हुइ बुराई (३०) ।

कहीं–कहींपर एक० में –इहइ प्रत्यय भी जुड़ा है, किन्तु केवल पद्यमें : सोइ लज्जा 'रष्पिहइ' जाहे साहि निसीब (६६) ।

प्रथम पु० एक०मे प्रत्यय (पु०-अउंगा), स्त्री० अउंगी है :

सुहंगीयां न 'वेचुंगी' (५), तउ मुलतांण सुं 'कहुंगी' (५), एकस एकस कु 'गहुंगी' (५)।

द्वितीय पु० वहु०में प्रत्यय-अहुगे है: जउ न 'देहुगे' तउ मुलतांण सु कहुगी(५)।

दक्खिनीमें भी प्रत्यय ये ही हैं; —इहइ अवश्य उसमे नही मिलता है।[1]

क्रिया : सामान्य भूतकाल

पुल्लिंग एकवचनके क्रियारूप धातुमें सामान्यत: आ। या। इया जोड़कर वनाये गये हैं।

—आ। या। इया : वर 'वोलिया' वडाम (१), एकसि चउस देवर ढढणी मालणीका भेप 'कऱ्यां (करचा)' (४), टुक एक 'गया' (५), मालनी संच 'जाण्या', (२०), साहिजादा सइतान र 'जाण्या' (२०), मुल्तांण वाराम वारी 'आया' (२०), साहिजादा जमा मसीति 'आया' (२०), साप का सोरंभ 'आया' (२२), अगर जाती 'जनाया' (२२), दीनु 'लिया' (२३) जो दरवेस ज्युं का त्यु ही 'धाया' (२३), अवे पुदाइकी फिरस्तइं 'आया' (२३), अप्पाण पर डर 'गया' जे आण मर (२५), साहिजादा पछइ सहं 'था' (३८), चमाऊ हाथ 'वाह्या' (३९), साहिजादा उस ही महल मइ 'आन्या' (४०), पलंग पर 'लेट्या' (४०), तवीवइ तवीव 'लाग्या' (४२), ओपदइ ओपद 'माग्या' (४२), वीविया सहित मुलतांण 'जाग्या' (४२), महल मइं आवतइ इंद्रका गर्व भाग्या' (४२) वार दुइ च्यारि यो ही पुकाऱ्या (४६), दरवेस हु नजरि की 'दीया' (४६), पलिंग तइं उतरि करि सलाम ताई 'हूआ' (४९), यो करतइ दिन 'गऱ्या' (५०), तुलतांण पान 'छंड्या' (५१), वीवी हुं रोवणा 'माड्या' (५१), दिल्ली माहि सोर 'पऱ्या' (५१), साहिजादे सुं सइतांण 'लऱ्या' (५१), दिल मे दिल 'आया' (५३), तइ तत्ता पान 'पाईया' (५४), देपतइ पाणी अंजरि पहर एकइ 'पुकाऱ्या' (५६), कीया सु 'करा' (५७), साहिजादा वोल्या' (५८), तवीवह रोग 'जाण्या' (५८), रोगी इं रोग 'मान्या' (५८), फुरमाण 'हूआ' (५८) स्वर 'हूआ' (५९), सोर 'छूट्या' (५९), दूहा ज्यु कह्या त्यूं साहिजादा उठया (५९), मइ सउणा सुणि 'दिप्पिया' (६३), सोई 'हूआ' तवीव (६६), जीवंदा कहि 'गाइया' (६८), अव 'कंपीया'

---

१. वही, अनु० ३७५ तथा 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ५८।

'तवीत्र' (६८), वीवी वीहन 'पूछीया' (६८), मइं 'जाणिया' निसीत्र (६९), यों 'वोलिया' तवीत्र (६९), असि अन 'माणा' तर तरणि जीमी जीवन मूरि (७१)। लाजहं सोचणा, 'हूआ' (७२), साहिजादा आसिक 'हूआ' (७३), फुरमांण 'हूआ' (७३), पावहं पाव सुल्ताण दरवारि 'आया' (७४) सुल्ताण 'आया (७४), मुकराणा मुकराणा करना सामहा 'धाया' (७४), दावल 'बोल्या' (७५), तांति तूअर राइ 'रंगा' (७६), 'टाहिया' ढंगा (७६), साहिजादा आइ दावल दरहि 'वाना' (७६), मारनु 'किया' सुढार (८०), ढढिणि क्या 'गाया' (८४), हलकइ हालि 'अलापिया' (८४), सइ मुह सोम 'विलग्गिया' (८८), वीया देह स 'दज्झिया' (९६), माया ओढण 'भुल्लिया' (९७), ज्युं ही पाइनु 'रंगिया' वाइ मिलंदा मव्व (९८), दाणसवंद साहिजादी नुं साहिजादइ 'कह्या' (१०१), करणीके कारनर साहिगं 'भर्‌या' (१०२) जागे अपछरां अनी 'हर्‌या' (१०२), धार दुइ 'दीन्हा' (१०२) साहिजादइ 'लीन्हा' (१०२), तीजे के आवन इ हवाल 'कीन्हा' (१०२), 'भग्गा' लाल सुभज्जणा (१०५), टुक एक जातइ साहिजादइ 'कह्या' (१०६), कुमकुमाके जल महि तइ 'निकस्या' (१०६), अवीर महि पोजइं पोज 'देप्या' (१०६) प्याला भूजा 'देप्या' (१०६), देपत ही 'हस्या' (१०६), पूत्र न पत्थर 'भग्गीया' (१०७), लाजनु संकुचि 'आया' (१०८), जानहुं चांद वादलइ 'छिपाया' (१०८), सुल्तांण 'सुण्या' (१०९), सुलतांण 'कह्या' (११०), जिण ही जीव 'अरंगिया' (११२), हल्कइ जलहल 'ओल्हिया' (११२), टुकरे गउप परि 'चीना' (११३), 'हूआ' हुअंदे काइ (११४)।

केवल कहीं-कहींपर –अउ। ओका भी प्रयोग हुआ है : हत्या कांम स पीउ भउ पिउ हत्या 'भउ' काम (१५), एक पुंगरा नेरइ 'हो' पुराणा (४६), लज्जा 'गउ' गुण आ गुणी (६१), लज्जा 'गउ' जुअ गोवणां (६१), ।

स्त्रीलिंग एकवचनमें –ई प्रत्यय लगा है :

–ई : वीवियां लाजलो 'भइ' वंधाना (२), वीवी दिवाना 'वइट्ठी' (३), मालनी फिरि 'आई' (५), साहिब 'सारी' वत्तडी (६), यां तू इहि काम 'आई' (९), हूं इहि काम 'आई' (९), 'सोनी' गल्हरियाह (१७), वीवियां 'आई' (२०), वीवियां हरम द्वार 'धाई' (२०), जमा-राति 'आई' (२०), गुलावीयां 'जागी' (२२), जमा मसीति भिस्त क्या भोरइ 'लागी' (२२), साहिजादइ किसउ की डीवी किसऊ की डांगी किसहू

की पालरी 'चोरी' (२३), दुनिया 'विछोड़ी' (२३), ढढिनी गाइवां ही गुमान 'वोली' (२७), जाणे अंगि अंणगियां 'पड़ी' पुराणइ ढ्रंगि (२८), साहिबा 'उंचाई' (३०), तउ कहइंगे ढढिनी तइ 'हुई' बुराई (३०), पुहर एक या राति 'वीती' (३८), ढीवी डांग पल्लरी 'अतीती (३८), 'जगी' किरण सुविहाणइ (४०), फजरि 'हूई' (४८), इतनई करत वीवी विवानां 'आई' (४८), अम्मा आणि आगइ परी 'हुई' (४९), यां करतइ राति 'पाई' (५०), दूसरी वइरणि 'आई' (५०), ढढिणिआ णीकी 'करी' (५२), ओहि ओहि इह तउ उलटी 'कही' (५२), ढढिणी कहि 'रहि' (५३), साहिवां 'वोली' (५३), ढढिणी 'वोली' (५५), हम तवही 'पाई' (५५), जब तूं सहण क्यां 'सिराई' (५५). हमारा क्यां तू 'पराई' (५५), परतीति 'पाई' (५६), तवीवका भेप करि सुलतांण कइ दरवार 'आई' तवीवानी तवीवानी 'पुकारी' (५६), अवाज्या 'वाजी' (५६), ढढिणी 'वोली' (५७, ५९, ६६), आज 'अणदी' वेलि (६३), इती वात करतइ वीविया 'ऊठी' (७३), दीन दुनियां एक ठउड होत 'जांणी' (७३), वीविया 'वोली' (७३) सुलताण 'मानी' (७३), सुलताण पासि 'गई' छूटी (७३), अमहुं पइर 'करी' (७५), नर ततइ नफेरी 'मंडी' (७६), भेरी भूगल भीम 'नंढी' (७६), सहणाइं 'तंढी' (७६). तरह स 'लग्गी' वेलि (८२), 'गई' गुण रप्पणहार (८३), उह रितु 'गई' (८९), अउर रितु फजर 'भई' (८९), मुरगहु वांग 'दई' (८९), गाइणहु ललित 'कई' (८९), तारह का तेज 'छई' (८९), सुविहाण अंवर 'दई' (८९), वसंत रितु पाछी 'भई' (८९), धूप काला कहल 'लई' (८९), पढमा ची सिगारी 'वोली' (९२), जोगिणी 'बोली' (९३), जोगिणी 'वोली' (९५, ९७, ९९), भोगिणी 'वोली' (९४, ९६, ९८, १००), साहिजादे कु ठंड 'लागी' (१०१) फुरमान ही 'वाई' (१०२), जिणइ दुणिया 'जाणी' (१०२), 'भग्गी' भम्म सु वाल (१०५), 'गई' सामू सरणागतां (१०५), साहिबां अजहुं न 'आई' (१०६), आपइ 'छिपी' किनहुं 'छिपाई' (१०६), खइर करंतउ कोड 'कहि' मन अप्पणइ विचारि (१०७), विभगन 'भग्गी' नारि (१०७), मा आवती 'चीनी' (१०८), चादरि सिर परि 'लीनी' (१०८), मा अरदास 'करी' (१०८), कइमति 'कराई' (११०), कुतवदी 'गमाई' (११०) घरि घरि 'लग्गी' लाइ (११२)।

कुछ स्थलोंपर –आना, ईन, ईना, ईन्हाके प्रयोगसे पुल्लिग और –ईनीके प्रयोगसे भी स्त्रीलिंग रूप बने हैं—

–आना । ईन । ईना । ईन्हा : ग्रून हमहि 'दीन' (१०८), जु फुरमाण 'दीना' (७५), तव मुल्ताण 'रिसाना' (४६), सुल्ताण फुरमाण 'दीना' (११३), वे पुइ 'कीन्हा' भजि (२९)।

–ईनी : साहिजादा चार्दरि सिर ऊपरि 'लीनी' (२२), दोस्तान दोस्तान करि हस्त क्या 'दीनी' (२२), सुलताण सुरति 'कीनी' (३८), हत्थइ हत्थ 'लीनी' (५६)।

पुल्लिंग बहुवचन रूप धातुमें –ए।अए लगाकर बने हैं

–ए। अए : पाँच सोवन्न के टका देवरइ 'धरे' (४), निवाज करणइ सुलताण 'लग्गे' (२४), दीवे 'लग्गे' (२४), सादा नइ 'वग्गे' (२४), साहिजादे साहिव्वियाँ ढढ्ढिडनि हुड़े 'मंभिः' (२९), मालनीके उंमान 'भागे' (३०), साहिजादेके पवे फुरकणइ 'लागे' (३०), दीदे, 'दुराए' (४०), दानसवंद पानी अंजरणइ लागे' (४४), मंत्रहु परजणइ 'लागे' (४८), तवीव तमाम सब सुलताण 'कोके' (४८), दिल्ली सहर मइ ए ज 'घेरे' (४७), सबे फिरस्तइ 'फेरे' (४७), यों करतइ रोज दुइ च्यारि 'गले' (५१), तवीवा हाथ 'धरे' (५१) तवीव होने ते सुल्ताण 'कोके' (५१), आणि दरवार 'रोके' (५१), दावल कुं तीन रोज 'हुए' खाणा खाया (५२), दीदहु सुं दीदे 'जोरे' (५५), लप 'दउरे' (५६), साहिजादे दीदे देपणइ 'लागे' (५८), तवीव के रोर 'भागे' (५८), सुणतइ ही ल्लले 'कीए' (६७), कंपण 'लागे' अंग वल एण सुणंदा हल्ल (६७), दुसमणां के दिन्न 'जरे' (७४), वरततइं नीसाण 'दग्गे' (७६), सज्जणा 'जग्गे' (७६), 'वाए' वज्जण वज्जणा (८१), 'पय (पये ?)' ढढणियाके वोल (८१), साहिजादा कुमकुमई वरपे 'भराए' (९०), वारि उंछहु 'लगाए' (९०), अवीरहु घर 'वणाए' (९०), कपूर कस्तूरी भूपण 'भराए' (९०), फूलहु वितन 'तणाए' (९०), गायणहु 'गाए' (९०), दोउ दूहे 'कहे' (९१), माँ के सिर ऊपर फेरि फेरि 'भाने' (१०७), मुलतान सुणतइं जुहरी 'वुलाए' (११०)।

कहीं-कहींपर –ए का प्रयोग आदरार्थक बहु० के लिए भी हुआ है : साहिजादा दावल कइ दरवारि जाइ 'वग्गे' (२४)।

कहीं-कहीं धातुमें यां। इया लगाकर वहु० रूप बने है.

दीदे दिग्घ 'उचाइयां' (२८), जे मुत्ताहल 'दिट्ठियां' वइ वर 'गंजरियाह'[1] (६४), 'निहमिया' नीसाण नादा (७६)।

---

१. इसमें –ह स्वार्थिक लगता है।

–आनइ। ईनइ : 'न' युक्त रूपमे –'ए। ऐ' के स्थानपर कदाचित् प्राचीनतर –'अइ' प्रत्ययका प्रयोग हुआ है : मुलतांण देस देस मुलक मुलक कुं फुरमाण 'दीनइ' (३८), मुलताण टुक एक 'मुमक्यानइ' (४०), मानु चांद तारा सुं 'रिसानइ' (१०९)।

इन उदाहरणोमे एक-दो आदरार्थक वहु० के भी हो सकते है।

स्त्रीलिंग वहु० का प्रत्यय –यां। इया। ईयां है।

यां। इयां। ईयां : पक्कीयां जभीन्या नारिंग्यां 'भन्यां' (४) वेलिया वंकिया 'कन्यां' (४), साहिजादे के अग्गइ 'धन्यां' (४) दोइ साहिजादे अप्पणइ हत्थइ 'कीया' (४) दो दो च्यारि च्यारि वंटे 'दीयां' (४), दीदे दिग्घ 'उचाइया' (२८), हंसतइ ही वात्या 'कियां' (३९), 'बुझाईया 'बुझाईयां' (५८), साहिजादा किणि 'बुझाइया' (५८)' जिणि 'लगाईयां' तिणि 'बुझाइयां' (५८), अव उससु क्या करण 'आईयां' (५८), साहि घरां साहिवियां जिणि 'दिण्णियां' सु जाणि (६१), सास सरंदा 'वुट्ठिया' (१०३), की पद पतरि 'चुक्किया' (१०४), वज्जे वज्जत 'वज्जिया' (११४)।

इन उदाहरणोमे-से कुछ आदरार्थक वहु० के भी हो सकते है।

कही-कहीपर –आ। या। इयां युक्तरूप एक० मे प्रयुक्त मिलता है :

ढढ्ढिनी माल्नीका मेप 'कन्या' (४), मालिनिया दिट्ठिइया' (१७), साहिव मंची 'दिट्ठियां' (१७), मालणिया कहि 'नट्ठिया' (१९), तू कहां 'थां' (३८), वहा पुज्जइ दिल 'लम्भियां' (६२), मानहु कमल 'निकस्या' (१०६)।

कहीं-कहीपर वहु० के स्थानपर एक० रूप भी मिलता है :

पु० : मेरे दीदे दूषन 'लग्ग' (८), गज्जइ गयण न 'नच्चिया' पावस हुंदे मोर (३३), हमारे दीदे दूपणइ 'आया' (३९) दरवेस वलइं वलइं 'धाया' (३९) दउ 'लग्गिया' सनत्थ (५०), लज्जा 'गउ' जुअ जोवणा (६६) 'मूआ' वहंदा माहि (११४)।

स्त्री० : कइ 'सोनी' गल्हरियाह (१७), ढढिणि 'ढोरी' अंपिया (५४), जिण 'हीजीय' जहमत्तिया (६६), 'वाजिया' ढप ढोल ढंगा (७६), दुइ नटिणी आइ परी 'हुई' (९१)

–न युक्त रूपोमे भी यह प्रवृत्ति मिलती है : जिहि मुहर जंभीरियां 'लिन्न'

(७), सुलताण निवाज्या 'कीनी' (३८), दानशमंदह आनह अपनह घरह हो वाट्यां 'कीन्ही' (३८), किनारइं रही त्यां किनारां 'कीनी' (३८), बीबी राग मल्हरी न जाणु कहां थी 'कीन्ही' (४३), साहिजादह जहमत्यां 'कीन्ही' (४१), दुनी साहिजादह ज्या मत्या 'कीनी' (४१)।

किन्तु यह असम्भव नहीं है कि अनुनासिकका बिन्दु जो बहु० में लगा रहा हो, कु० में प्रतिलिपि किसीसे छूट गया हो।

–आ, या, त्या लगाकर सामान्य भूत दक्खिनीमें भी बनता रहा है।[1]

पूर्ण भूत

पूर्णभूत कृदन्तके साथ 'था' का कोई रूप लगाकर बना है :

सवा बंदियहूकी बंदिगी देयणह हू 'गया था' (४९), पुंगरा मेरह तमा नमीनि देवणइ 'गया था' (४६)।

भूत कृदन्तमें 'था' लगाकर पूर्णभूत दक्खिनीमें भी बनता रहा है।[2]

अपूर्ण भूत

कोई उदाहरण नहीं है।

संयुक्त क्रिया

कुछ संयुक्त क्रियाएँ भी मिलती हैं : मेरे दीवे 'डूपण लग्ग' (८), निवाज 'करणाइ सुलतांग लग्गे' (२४), 'गया जे आप मर' (२५), साहिजादेके पवे 'फुरकणइ लागे' (३०), तदीवइ 'ओतरइ लागी' (५९), मंडप 'छावणइ लागे' (७१), गायणी 'गावणइ लागे' (७६), निवासा 'हुवणइ लागी' (१०१), ओह वेला लाल धरती 'हुई रही' (१०९) फकीर 'लूटणइ लागे' (११३), सादा नइ 'वाजणइ लागे' (११२)।

इसी प्रकार संयुक्त क्रियाएँ दक्खिनीमें भी बनती रही है।[3]

वर्तमान कृदन्त

वर्तमान कृदन्त रूप धातुमें -ता।ती।तइ तथा -ते लगाकर बने है :

---

१. दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास, अनु० ३८२

२. वही, अनु० ३१६

३. वही, अनु० ३८६

–तइ । तइं : जिसकी सूरति 'लोवतइं' मेरे दीदे दूपण लग्ग (८), 'पूछ-तई पूछतइ' जमाराति आई (२९), इतनी वात 'करतइ' – (३८), 'हस्तइ' ही वात्यां कीया (३९), हमारे 'हस्तइं हस्तइं' दीदे दूपणइ आया (३९), साहिजादे 'जागतइं' 'वेल्हतइ' जगी किरण सुविहाणाइ (४०), इतनी वात्यां 'करतइ' साहिजादइ जहमत्यां कीन्ही (४१), महल मइ 'आवतइ' इन्द्र का गर्व भाग्या (४२), दरवार 'देखतइ' दरिया का गर्व वादे (४३), 'फिरतइ फेरतइ' पुदाइ रहम करेगा (४८), यों 'करतइं' दिन गर्‌या राति पाई (५०), यों 'कर-तइ' रोज दुइ च्यारि गले (५१), इतनी 'करतइ' कपरे फेरे (५५), 'देप-तइं' पाणी अंजरि—(५६), 'सुणतइ' ही लल्ले कीए (६७), इती वात 'करतइं' वीवियां ऊठी (७३), इतनी वात 'करतइं' (७६,८९,९०,९१,१०१) तीजइ कइ 'आवतइं' हवा कीन्हा (१०२), टुक एक 'जातइ' साहिजादा कह्या (१०६) 'सुणतइं' जुहरी वुलाए (११०) ।

–ते : फिरस्ता फिरस्ता 'करते' दरवेस वलइ वलइ धाया (३९) ।

किन्तु हो सकता है कि प्रतिलिपिमें भूलसे 'करतइ'का 'करते' हो गया हो ।

–त : कहीं-कहींपर केवल –त जोड़कर वर्तमान कृदन्त वनाया गया है : इतनी 'करत' वीवी विवानां आई (४८), नजरि 'पुकारत' जाइ(७२) दीन दुनिया एक ठउड 'होत' जाणी (७३), 'देपत' ही हस्या (१०६), वज्जे 'वज्जत' 'वज्जियां (११४) ।

–तइ । तइं और-ते में से प्राचीनतर-तइ । तइं ही ज्ञात होता है ।

ता । तां : धातुमे –ता । तां लगाकर वर्तमान कृदन्तके पुल्लिंग रूप वनाये गये हैं : 'पूछता' सदि हइ (२०), सुलताण फुरमाण 'देता' ई हइ (४०), हरम द्वार 'जाता' सुलतांण टुक एक मुसक्यानइ (३९), मुझइ 'जाणता' हइ (४९), साहिजादा 'हसता' हइ पग देपि 'ऊलसता' हइ (१०८), सुकराणा सुकराणा करता' सामहा धाया (७४) ।

–ती : इसी प्रकार –ती लगाकर स्त्रीलिंग रूप वनाये गये हैं । मुहर मुहर जंभीरियां 'मांगती' हइ (५), मा 'आवती' चीन्ही (१०८) ।

उपर्युक्तके अतिरिक्त –अन्दके विभिन्न रूप लगाकर भी वर्तमान कृदन्त वनाये गये है :

एकवचन : अंदा : एह 'करंदा' मुज्झ हइ उर 'करंदा तुज्झ' (३७), साहिव साहिव्यां विरह जउ 'जीवंदा' जाइ (६५), कंपण लग्गे अंग वल एण

'मुणंदा' हल्ल (६७), 'जीवंदा' कहि गाइया (६८), नाम 'मरंदा' चुट्टियां (१०२), चउर 'करंदा' कोडि कइ—(१०७)।

–अंदइ : कुनल 'कहंदड' वार (१०३)।

–अंदे . योग 'करंदे' गोर (३३) हुआ 'हुअंदे' काट (११४)।

–अंदे –अंदइका ही किञ्चित् परवर्ती रूप लगता है।

बहु० –दंदीइ अंदिए : लोयण ते 'लोइंदीइ, । लोअंदिए' (९३-१००)।

–ता, –ती, –त युक्त वर्तमान कृदन्तके रूप दक्खिनीमें भी मिलते हैं।[1]

अंदा वाले रूप कु० में यहाँ तक ही सीमित हैं और पूर्ववर्ती भाषाकाले लिये हुए ज्ञात होते हैं।

भूत कृदन्त

भूत कृदन्त रचनामें निम्न प्रकारसे बनाये गये हैं:

एक० पु० । स्त्री०–इया: वउणी बंधि 'विलंबिया' मुत्ती हेक रुलंनि (१३), तू रस कारंबा 'भुपिया' (३२), मुज 'मुंदिया'न जीव (६०), बेर मंदर 'मंडिया' (७७)।

–ये (य + अइ) -एक जोगिणीका स्वांग किये (९१)।

एक० पु० –आ : साहिजादा 'पगा' हुइ (२७), यह दिल 'जोरा' ही रहइगा 'जोरा' ही जाइगा (५२), वेगि आनहु नत 'मूआ' (७३), देगइ तउ पग 'लग्या' (१०६), प्याला 'भूजा' दप्या (१०६), प्याला 'भग्गा' हइ (१०८), एक पाइ 'परा' कुतुब दी अरदास करइ (१११)।

एक० स्त्री० –ई : साहिबा महिन क्यां 'भरी' हइ (२६), देवर दड्डिनी अगड 'परी' हइ (२६), तबीब को 'जाई' नहीं (५३), अमां जाणि आगइ 'परी' हुई (४९), मुलतांण पासि गई 'छूटी' (७३), साहिबां अरगजइ 'भीनी' हइ (१०२), जाणुं काठ की पूतरी कुंरि 'वणाई' (१०२), लंक लहक्की भीणिया की माणी रति भार (१०३), की 'भीनी' रसभार(१०४)।

बहु० पु० । स्त्री० –इयां । यां । आं : 'पाइयां' क्या कहावइ (५), जिणि 'लाइयां' ते छिपावहु (५), अग्गा अगम 'नट्टियां' (६), केसा के वसि 'वंधियां' के छुट्टिया रुलंति (११), जागे राई बल्लियां फूल्ली 'नीकलियां' (१६) ये मालनियां 'दिट्ठाइयां' के सोनी गल्हरियांह (५७), दावर कुं

---

१. वही, अनु० ३२०।

तीन दिन हुए खाना 'खायां' (५२) जाणे जलहर 'वुट्ठियां' सारसु कीया सुढार (८०), 'रीझडियां' झड मंडि करि—(९४), को घरियां घर 'लग्गियां' (९९), साहिजादे 'पथां' न होउ (१८), जे 'दिट्ठां' ही पिट्ठ (८५) ।

वहु० पु० –ए : हमहु मुलतांण पेरो साहि 'उपाए' वीवी विवाणां 'जाए' (१०८) ।

वहु० –इयां । यांके उदाहरणोमे-से कुछ आदरार्थक वहु० के हो सकते हैं और कुछ स्वार्थिक वहु० के भी ।

कही-कहीपर एक० से ही वहु० का भी काम लिया गया है : ही 'उट्ठा' दिट्ठाइया दीहा पंचइ च्यारि (१४) ।

कही-कहीपर एक० में भी वहु० रूप अनुनासिकके आगमके कारण हो गया है : वे मालनी 'आइयां' करे (४), दीनु 'लीयां' (२३) ।

पूर्वकालिक कृदन्त

कु० मे पूर्वकालिक कृदन्त दो प्रकारसे वनाये गये है : क्रिया के वातु रूप-में –इ । ई लगाकर तथा उसमे –अ लगाकर :

–इ । ई : केसा के 'कसि' वंधिया के छुट्टियां रुलंति (११), लंक घन 'कइ' मुट्ठियां विघ रसुरंगी वाम (१५), 'लइ' चलि संगरियांह (१७), मालणीयां 'कहि' नट्ठियां (१९), दोस्तांन दोस्तान 'कहि' हस्त क्यां दीनी (२२), इतइ वीच साहिजादा दावल कइ दरवारि 'जाइ' वग्गे (२४), वे पुड कीन्हा 'भंजि' (२९), ढढ्ढिनिया हिय हत्थ 'लइ' (३६), आरतियां 'करि' हेरि (३६), फिरस्ता फिरस्ता करते दरवेस 'वलइ वलइ' धाया (३९), इस ही वीच साहिजादा वीवीयनु पकरि 'कइ' उस ही महल मइ आन्या (४०), दरवेसहु नजरि 'की' दीयां (४६), हाला 'कइ' मारणा न 'थी '(४७), अमां 'आणि' आगइ परी हुई (४९), पलिग तइ 'उतरि करि' सलाम कुं ताई हुआ (४९), 'आणि' दरवार रोके (५१), तवीव का भेष 'करि' सुलतांण कइ दरवार आई (५६), ते तई ही हसि हंसरा 'वइ' वर गंज-रीयां (६४), जीवंदा 'कहि' गाइया (६८), सो दिल दिल अज्जइ मिलइ तउ 'मिलि' मंगल गाउ (७०), दुइ दिट्ठिया 'रसाइ' साहिजादा 'आइ' दावल दरहि वादा (७६), हलकइ 'हालि' अलापिया (८४), हलकइ हुरक 'वजाइ' (८४), ते सु कहंदी 'गाइ' (८४), दुइ नटिणी 'आइ' परी हुई (९१), रीझडियां झडि 'मंडिकइ' सरवसु अप्पण हार (९४), जे जुग 'जोइ' अरत्त (९७), षइर करंतइ कोडि कहि मन अप्पणइ

'विचारि' (१०७) पग 'देपि' देपि उलसता है (१०८), लाजनु 'संकुचि' आया (१०८), मां के सिर ऊपर 'फेरि फेरि' मांनें (१०९), ओह वेला लाल धरती 'हुइ' रही (१०९), रहे सु रेप उसाहि (११२), 'लइ' टुकरे गउप पर चीना (११३)।

अ : साहिजादा साहिवां हियां दउ लग्गिया 'सनत्थ' (५७), कंपण पाछइ साहा सुपासण 'चडाया (चड+आया)' (७४), आसिर अप्पत 'भण' दीया (८०), भग्गी 'भम्म' सुत्राल (१०५)।

दक्खिनीमे भी दोनो प्रत्यय मिलते हैं।[1]

अव्यय : अवधारण-वाचक

इ। इं। ई। ही। हीं : सुलताण फुरमाण देती 'ई' हइ : (४), ही उट्ठा दिट्ठाइयां दीहा पंच 'इ' च्यारि (१४), केहु की वाट 'इ' चाहते हइ (२१), जो दरेस ज्युं था त्युं 'ही' वाया (२३), उस 'हीं' महल मइ आन्या (४०), वुन्न 'इ' साहिजादा परा हइ (२७), कपूर पान 'इ' न भावइ (४०), हस्तइं 'ही' वात्यां कीयां (३९), फजरि हुई तवीव 'इ' तवीव लाग्या (४२), ओषद 'ई' ओपद माग्या (४२), जो 'इ' दानसवंद आवइ (४५, ५०), तिस 'ही' सु पुकारइ (४४, ५०), इत्तन 'इ' करत वीवी विवानां आई (४८), ओ 'ही (ओह+ई ?)' हालु (५०), हम तव 'ही' पाई (५५), तमासा एक अव 'ही' दिपावइ (५९) हलक 'इ' हालि बलापिया (८४), रत्ता सो'इ' अरत्त (९९), देपत 'ही' हस्या (१०६), अवीर महिं खोज 'इं' खोज देण्या (१०७), सुलतांण कह्या तेरा 'ई' हइ (१११)।

चा। ची : पुहर एक 'चा' राति वीती (३८), पढमा 'ची' सिंगारी वोली (९२)।

हु। हुं। हू। उ : किस 'हू' की डीवी (२३), किस 'हू' की डांगी (२३), किस 'हू' की पालरी चोरी (२३), दरेस 'हु' नजरि की दीया (४६), मंत्र 'हुं' परजनइ लागे (४४), वीवी 'हुं' रोवणा मांड्या (५१), दावल दानस पूगरी दींदे दीठि 'हु' भूरि (७१), दु'हुं' दिट्ठिया रसाइ (७२), मुरग 'हुं' वाग दई (८९), गाइण 'हुं' ललित कई (८९), दो'उ' दूहे कहे (९१)।

---

१. –इ के लिए दे० 'दक्खिनी हिन्दी', पृ० ५६, तथा –उ के लिए दे० 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३६२।

'ई' तथा 'च' दक्खिनीमें भी है। 'च' के सम्बन्धमे डॉ० श्रीराम शर्माका यह मत है कि वह दक्खिनीमें मराठीसे आया है,[1] इस रचनाके साक्ष्यके अनुसार मान्य नही है।

अव्यय : स्थिति-वाचक

सामहा : सुकराणा–सुकराणा करता 'सामहा' आया (७४)।

तर। तल : भू 'तर' नच्चइ नयण (१२), जिमी अकास 'तल' होइ तऊ हम आणइ (७३), करणी के भार 'तर' साहिबा भर्‍या (१०२)।

पासि : सुलतांण 'पासि' गयी छूटी (७३)।

साथि : कइ साहिजादे कइ 'साथि' गोर मइ वाहणा (५१)।

आगइ। अगइ : दो सी अग्गा 'आगइ' बीबी बिबाना वइट्टी (३), साहिजादा 'आगइ' सरकणइ न पावइ (३), साहिजादे कइ 'अग्गइ' धर्‍या (४), 'आगइ' दावल दानसबंद की पूगरी हइ (४), टेबर ढह्निनी 'अगइ' परी हइ (२६), अमां आणि 'आगइ' परी हुई (४९)।

अग्गम : अग्गा 'अग्गम' नट्ठियां (६)।

पाछी। पछइ। पाछइ : मुहर मुहर जंभीग्गियानकी 'पाछइ' लावहु (५), 'पाछइ' साहा सुपासरा—आया (७६), 'पाछइ' क्या कीजइ तवीबिया नु (५९), साहिजादा 'पछइ' सहं था (३८), मां साहिबा का न्याउ अछइ उसकइ दावल 'पछइ' (१०९)।

तल, ऊपर, पास, पीछे, आगे तथा साथ दक्खिनीमें भी हैं।[2]

अव्यय : स्थान-वाचक

ज़हां : हत्यइ हत्य लीनी 'जहां' साहि कुतुबदीन गाजी (५६)।

कहां : तू 'कहा' था (३८), न जाणु 'कहां' थी लीन्ही (४७), साहिजादा साहि 'कहां' (४९)।

जहा, कहां दक्खिनीमे भी हैं।[3]

---

१. 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३६४।

२. वही, अनु० ३८०–३६६।

३. वही, अनु० ३६५।

अव्यय : काल-वाचक

अज्ज : सो दिल दिल 'अज्जइ' मिलइ तउ मिलि मंगल गाउ (७०)।

कल्हि । काल्हि : लोइ हसंदे 'कल्हि' (३४), 'काल्हि' कहंदी केलि (८२)।

एताल : 'एताल' ल्यावहु (५)।

कदि : अवे जमाराति 'कदि' कइ (२०)।

तव . 'तव' मुलताण रिसाया (४६), हम 'तव' ही पाई (५५)।

जव : 'जव' की सहण क्यां सिराई (५५)।

अव : 'अव' उस मु क्या करण आइयां (५८), तमासा एक 'अव' ही दिपावउं (५९), 'अव' कंपिया तवीव (६८)।

ततइं : नर 'ततइं' नीसाण दग्गे, (७६) नर 'ततइं' नफेरी मंडी (७६)।

ज्युं-ताइ : 'ज्युं' ही पाउनु रंगिया 'ताइ' मिलंदा सव (९८)।

ज्युं-त्युं : दूहा 'ज्युं' कह्या, 'त्यु' साहिजादा उठ्या (५९)।

तो : 'तो' न वुझंदा धूप (६८)।

इतइ वीच, एतइ वीच : 'एतइ वीच' साहिजादा जमाम सीति आया (२०), 'इते (इतइ?) वीच' साहिजादा किसऊ की डीवी—चोरी (२३), 'इतई वीच' साहिजादा दावल कइ दरवारि जाइ वग्गे (२४), 'इतइ वीच' साहिजादा पछइ सहं था (३८), 'इतइ वीच' साहिजादा वीवीय नु पकरि कइ उसही महल मइ आन्या (४०)।

अज्ज, अताल, कद, तव, जव, अव, पछे तथा वीच दक्खिनीमें भी मिलते है।[1]

अव्यय : रीतिवाचक

जिम । ज्युं : अस-अस माणा तर तरुणि 'जीमी' जीवण भूरि (७१), पावर सर 'जिम' कढीइं नेह समट्ठा निट्ठ (९२), ज्यु गज वंगरियाहं (१०१)।

जिउं-किउं : 'जिउं किउं' दक्खा वल्लिया जउ र विलग्गइ अंव (९)।

ज्युं-त्युं : जो दरवेस 'ज्यु' था 'त्यु' ही वाया (२३), पूव पूव होइ 'त्यु' करावउ (७५)।

यों : वार दुइ च्यारि 'यो' ही पुकान्या (४६), 'यों' करतइं दिन गन्या राति पाई (५०), तिस ही सु 'यों' कहइ (५०), 'यो' करतइ रोज दुइ च्यारि गले (५१), 'यो' ही पुकान्या (५६), 'यो' वोलिया तवीव (६९)।

---

१. वही, ३६५-३६६

कुं करि : जाणे पूतरी 'कुं करि' वणाई (१०२)।

जूं, यूं क्यूं कर दक्खिनीमे भी है।[1] पुरानी दक्खिनीमे भी 'यो' रहा हो तो आश्चर्य न होगा, क्योकि फ़ारसीमे उसे 'यूं' पढ़ा जा सकता है, किन्तु 'जूं' और 'क्यूं कर' के साथ 'यूं' होना अधिक सम्भव है।

अव्यय : परिमाण-वाचक

टुक एक : 'टुक एक' धीरे (४), 'टुक एक' गया मालनी फिरि आई (५), 'टुक एक' जमा मसीति मिस्त क्या भोरइ लागी (२२), मुलतांन 'टुक एक' मुनक्यांनेइ (३९), 'टुक एक' जरतइं—(१०६)।

अव्यय : संयोजक

जउ-तउ : 'जउ' न देहुगे 'तउ' सुलतांण सुं कहुंगी (५), तिउं किउं दक्खा वल्लियां 'जउ' र विलग्गइ अंत्र (९), 'तउ' कहइंगे ढढ़िढनी तइ हुई बुराई (३०), 'जउ' जोरां 'तउं' तुज्झ ही (३७), 'जउ' गोरां 'तउ' तुज्झ (३७), जीवइ 'तउ' जिलाओ (५८), 'जउ' सब कोउ कुसादे होउ 'तउ' कछू कहुं (५९), 'जउ' कछू वीवियां वजावइ 'तउ' हम गावइ (५९), 'तउ' मूए हमारा क्या चलइ (६६), देपइ 'तउ' पग लस्या (१०६), टुकरे पाउं 'तउ' कछू नाम न चलाउं (१११)।

तरह : साहिव साहि घर विया 'तरह' स लग्गी वेलि (८२)।

जं-सु : 'ज' घाउणा 'सु' घाउ (७०)।

जइ : साहिव साहिव्यां विरह 'जइ' जीवंदा जाइ (६५), नदरि 'ज' लम्भइ नदरि कुं नदरि पुकारत जाइ (७२)।

नत । नांतर : 'नांतर मुहर मुहर जंभीरियां नकी पाछइ त्यावहु (५), 'नत' माहिजां न साहिवां (७०), 'नत' भूआ (७३)।

सद कइ : 'सद कइ' एक फुरमाण लहु (५९)।

वल : कंपण लागे अंग 'वल' एण सुणंदा हल्ल (६७)।

परि : वीवी दूप लइनइ कहइ 'परि' दूपना न जाणइ (४०)।

कइ, के, की : जाणे 'की' करतारिया (१०), केसां 'के' कसि बंधियां 'के' छुट्टियां रुलंति (११), फकीर मारणा हइ 'कि' जिआवणा हइ (४८), 'कइ' साहिजादे के साथ गोर महि वाहणा (५१), महल हतइं ढोल 'कई' मंदिरि मांगी (५९)।

---

१. वही, ३९७-३९९।

जांणि । जाणुं । जाणे : पक्की 'जांणि' जंभीरियां उसका वरण मुहंदा भ्रग (८), 'जांणे' आण वधाइयां (१२), 'जांणे' सर्पनि अप्पणां चर चीट्ठवा भपंति (११), 'जाणे' जीवण इक्करा वे पुड कीन्हा भंजि (२९), अंपी अंपिनु वट्टडी 'जाणि' गिलंदी ताहि (३१), 'जाणु' साहिजादे की दूसरी वडरणि आई (५०) 'जाणे' संभ मुमुण्पियां सिद्यु सपत्ता सूर (७८) 'जाणे' जलहर बुट्ठिया (७९), नुप्प फलंदा 'जाणि' (८६), 'जांणु' काठकी पूतरी कुं करि वणाई (१०२), 'जाणे' नील कमलपर वे दीयेकी जाला (१०२), 'जाणे' अपछ्रग अमी हरया (१०२) ।

मानहुं । मानुं . 'मानहुं' कमल विकस्यां (१०६), 'मानुं' चांद तारा सुं रिसानइ (१०९) ।

'तउ' दक्खिनीमे 'तो' के रूपमे मिलता है।[1]

अव्यय : स्वीकार-निषेध-वाचक

हां : 'हां' मां जाणता हूं (४९), 'हां' साहिजादे जोवणा पुव हइ (४), 'हां' साहिजादे हूं इहि काम आई (९) ।

न । ना : साहिजादा आगइ सरकणइ 'न' पावइ (२), पाहि 'न' कच्चा पांन (३२), वीवी दूप लडनउ कहइ परि दूपना 'न' जाणइ (४०), डीवी डांग पल्लरी 'न' जाणु कहा थी (४७), 'न' जाणुं निवासा 'न' जाणुं फजरि (४५, ५०, ५६), 'न' जाणीउ क्या मु रोग (९०), टुकरे पाउं तउ कछू नाम 'ना' चलाउं (१०९) ।

नही : तवीव 'नही' (५३), तवीव की जाई 'नही' (५३) ।

'हां', 'न' 'नही' दक्खिनीमें भी हैं।[2]

अव्यय : विस्मयादि बोधक

इओही : 'इओही' साहिवां णजरि साहिवां णजरि (५६) ।

ओहि-ओहि : 'ओहि ओहि' इह तउ उलटी कही (५३) ।

'एयो' के रूपमे 'इओही' दक्खिनीमें भी है। इसे डॉ० श्रीराम शर्माने तेलुगु बताया है,[3] जो कि कु० के उपर्युक्त साक्ष्यके प्रकाशमें ठीक नही है।



१. वही, अनु० ३९८।
२. वही, अनु० ३९९
३. वही, अनु० ४००

'कुतबशतक'की भाषा और 'राउल वेल'की टक्की

ग्यारहवीं शती ईसवीका एक शिलांकित भाषा-काव्य है जिसमें अन्य छह भाषाओंके साथ—जो भारतीय आर्य भाषा परिवारकी तत्कालीन प्रमुख औक्तिक भाषाएँ है—टक्कीका भी वह स्वरूप मिलता है जो अपभ्रंशकी स्थितिसे निकलकर आधुनिक औक्तिक भाषाकी स्थितिमें आ चुका था। इस काव्यका नाम है 'राउल वेल' और इसका यशस्वी कवि है रोड या रोडा।[1] यह काव्य सम्भवतः दक्षिण कोसलमे वहाँके किसी सामन्तकी प्रेरणासे रचा गया था, यद्यपि बादमें शिला-फलकपर उत्कीर्ण होकर धार (मालवा) में किसी प्रासादमे लगाया गया था और इस समय किंचित् भग्न अवस्थामे बम्बईके प्रिन्स ऑव वेल्स म्यूज़ियममे है। भारतीय आर्य भाषा-परिवारकी वर्तमान सात प्रमुख भाषाओंके प्राचीनतम रूप इसमे सुरक्षित है—और शिलांकित होनेके कारण अपने अक्षुण्ण रूपमें सुरक्षित हैं। इस काव्यमे एक सामन्तकी छह प्रदेशोंकी सात स्त्रियोंका रोचक वर्णन बहुत-कुछ उनकी अपनी भाषाओंमे देनेका प्रयास किया गया है। इन सात स्त्रियोंमें-से एक टक्किणी है। वर्त्तमान पंजाबी प्रदेश तथा हरियाणा, जिस समयकी यह रचना (राउल वेल) है, क्रमश. टक्क और भादाणक नामसे अभिहित थे और लगभग एक मिले-जुले क्षेत्रके रूपमे टक्क-भादाणक कहे जाते थे। 'राउल वेल'की टक्किणी इसी परस्पर मिले-जुले क्षेत्रकी कहीकी थी। केवल चौदह अर्द्धालियोमे उसका वर्णन निम्नलिखित प्रकारसे किया गया है; शिलालेखके कुछ अक्षर उसके भग्न होनेके कारण त्रुटित और अपाठ्य है, उन्हे बिन्दु देकर छोड दिया गया है, और जिनके बारेमें अनुमान किया जा सका है, उन्हें कोष्ठकोमे दे दिया गया है; साथमें दी हुई संख्याएँ शिलालेखकी पंक्तियोकी हैं—

(१५) केहा टेल्लिपुतु तुहु झांखहि। अ····डु वेहु तुहुं आख(हि)॥
वेहु एक्कु सो एथु वन्निजइ।····अत्रखंदह ही आ भिज्जइ॥
अड्डा केह पाहु जो वद्धा। सोप्पर तेहा गोरी लद्धा॥
चंद सवाणा टीहा कियइ। जे मुहुं(१६)एक्केणवि मंडियइ॥

---

१. दे० प्रस्तुत लेखक-द्वारा सम्पादित 'राउल वेल और उसकी भाषा'।

अंघिहि कय्यलु डहरा दित्ता। जो (नि)हालि करि मयणू मत्ता ॥
कंय्यडिअहि सोर्हहि दुइ गन्न। म(मं) डन संडन डहि परे अन्न ॥
कंढी कंढि जलाली सोहइ। एहा तेहा सउ जणु मोह(१७)इ ॥
आवूधाडें थर्णहि जो कंय्यू। सो सन्नाह अणंग हो नं''' ॥
(कं)य्यू वियूर्यहि जे थण दीसहि। ते निहालि सव वत्थु उवीसहि ॥
गोरइ अंगि वेरंगा कंय्यू। संझहि जोन्हहि नं संगउं हू ॥
पहिरणु घाघरेंहि जो केरा। कछ(१८)डा वछडा डहि पर इतरा ॥
सूथना झिक''' इला प(हि)रणु। पाखइ पाखउ धावइ तसु जणु ॥
एहा वेहु सुहावा टेल्ल। आन्न तु संदा डहि परइ वोल्ल ॥
एही टविकणि पइसति सोहइ। सा निहालि जणु मल म(१९)ल चाहइ ॥

सुविधाके लिए नीचे इसका भापान्तर दिया जा रहा है—

(१५) ऐ टेल्लिपुत्र (तिलंगीका पुत्र), तू कैसा है कि तू भी झंखता है ?''' देख, कि तू भी कहता है,

एक भी (ऐसी) देखो तो उसका यहाँ वर्णन किया जाये, जिसका वर्णन करते हुए हृदय भीगता (स्निग्ध होता) हो।

जो किसी प्रकारकी वाधाओके चरणों (या पाशों)मे वँवा, उसने और केवल उसी प्रकारके व्यक्तिने (ऐसी) गौरांगीको प्राप्त किया है।

चन्द्रमाके सवर्ण (कोई पदार्थ) यदि दिनोंके लिए भी (निर्मित) किये जायें तो इन्हे (१६)एक (अकेले) (इसके) मुखसे ही वना लिया जाये।

आँखोमे हलका और दीप्त कज्जल है, जिसे निहारकर मदन भी मत्त (हो रहा) है।

दोनो गण्ड कंय्यडियोसे शोभित हो रहे हैं, (जिसके कारण) अन्य मण्डनादि दग्ध हो चुके हैं।

कण्ठमें (जो) जलाली (जल्लार देशकी) कण्ठी शोभित है, वह ऐसे-वैसे सभी जनोको मोहित करती है।

(१७) आधे उघाड़े हुए स्तनोंपर जो कंचुक है, वह मानो अनंगका सन्नाह हो रहा है।

कंचुकके वीचमे जो स्तन दिखाई पड़ रहे हैं, उन्हे निहारकर (लोग) सभी वस्तुओकी उपेक्षा करते हैं।

गोरे अंगपर दोरंगा कंचुक (ऐसा लगता) है, मानो सन्व्या और ज्योत्स्नाका संगम ही हो।

घाँघरेका जो परिधान है, (१८) (उसको देखकर) इतर (परिधान)-कछड़ा आदि दग्ध हो जाते हैं।

सूथने''''परिधान (ऐसा है) मानो (उसका एक) पक्ष (दूसरे) पक्षमें दौड़ रहा हो।

देखो, इस प्रकारके टेल्ल (तिलंगे)के स्वाभाविक (वचन) हैं, (उसके) अन्य सान्द्र (स्निग्ध) बोल तो दग्ध हो जाते हैं।

(राजभवन)मे प्रवेश करती हुई इस प्रकारकी टक्किणी शोभा दे रही है, और इसको निहारकर लोग (आँखें ?) मल-मलकर (१९) देख रहे है।

टक्किणीके इस वर्णनमे मिलनेवाले व्याकरण-रूप निम्नलिखित हैं—संख्याएँ शिलालेखकी पंक्तियोंकी है :

संज्ञा, कर्त्ता (मूल) :

एक० पु० प्रत्ययहीन : हीआ १५, कछडा १७, बछडा १८, कंय्यू १७।

एक० स्त्री० प्रत्ययहीन : कंढी १६, टक्किणि १८।

एक० पु० (अकारान्त शब्द)-ु : जणु १६, सन्नाहु १७, संगउं १७, पहिरणु १७, जणु १८।

एक० पु० (आकारान्त शब्द ?)-उ : पाखउ १८।

बहु० पु० (अकारान्त शब्द) प्रत्ययहीन : गन्न १६, टेल्ल १८, मंडन संडन १६, बोल्ल १८।

संज्ञा, कर्म (मूल) :

एक० पु० (अकारान्त शब्द)-ु : कय्यलु १६।

बहु० स्त्री० प्रत्ययहीन : वत्यु १७।

संज्ञा, कर्म (विकृत) :

बहु० स्त्री० : गौरी १५

संज्ञा, करण :

एक० पु०-ेण : मुहुं एक्केण १६

एक० स्त्री०-हि : कंय्यडिअहि १६

संज्ञा, सम्प्रदान :

बहु० पु० (अकारान्त शब्द)-ा : टीहा १५

संज्ञा, सम्बन्ध :

सामासिक रूप : अड्डा पाहु १५, अणंग संनाहु १७, कंय्यू विय्यहि १७, चंद सवाणा १५, टेल्लिपुतु १५

एक० पु० स्त्री०–हि : संझहि जोन्हहि १७

एक० पु०–हिं केरा : घांघरेहि केरा १७

बहु० पु०–हं : बक्खंदहं हीआ १५

संज्ञा, अधिकरण :

एक० पु० (अकारान्त शब्द)–ि : कंठि १६, अंगि १७

एक० पु० (आकारान्त शब्द ?)–इं : पाखइं १८

एक० पु० (अकारान्त शब्द) – हु : पाहु

एक० । बहु० पु० । स्त्री० (अकारान्त शब्द) –हिं : अंघिहिं १६, थणहिं १७, विय्यहि १७

संज्ञा, सम्बोधन :

एक० पु० – ु : टेल्लिपुतु १५

सर्वनाम, तृतीय पु० :

एक० पु० । स्त्री० कर्त्ता : सो १५, सो १५, सो १७

बहु० पु० कर्म (विकृत) : ते १७

बहु० पु० कर्म (विकृत) : जें १५

एक० स्त्री० सम्बन्ध : तसु १८

सर्वनाम, सम्बन्ध वाचक :

एक० पु० : जो १५, जो १६, जो १७, जो १७

बहु० पु० : जे १७

विशेषण :

एक० । बहु० पु० प्रत्ययहीन : केह १५, दुइ १६, सव १७

वही – ु : एक्कु १५, सउ १६

एक० पु० – ा : केहा १५, तेहा १५, वड्डा १५, डहरा १६, दित्ता १६, मत्ता १६, वेरंगा १७, एहा १७, एहा १८, सुहावा १८

एक० पु० (विकृत) – अइ : गोरइ १७

एक० स्त्री० – ी : जलाली १६, एही १८

वहु० पु० – ा : सवाणा १५, एहा १६, तेहा १६, इतरा १८, संदा १८

वही (विकृत) – ैं : आबूघाडें १७

क्रिया, सामान्य वर्त्तमान :

द्वि० पु० एक० पु० – अहि : झांखहि १५, आख(हि) १५

तृ० पु० एक० पु०।स्त्री० – अइ : भिज्जइ १५, सोहइ १६, मोहइ १६, धावइ १८, परइ १८, सोहइ १८, चाहइ १८

तृ० पु० वहु० पु०। स्त्री० – अँहिं : सोहँहि १६, दीसँहि १७, उवीसँहि १७

तृ० पु० वहु० पु० – अ : पर १८

क्रिया, सम्भावनार्थ वर्त्तमान :

द्वि० पु० एक० पु० – उ : वेहु १५, वेहु १५

द्वि० पु० एक० पु० – इज्जइ । इय्यइ : वन्निज्जइ १५, किय्यइ १५, मंडिय्यइ १६

क्रिया, सामान्यभूत और भूत कृदन्त :

तृ० पु० एक० पु० – उ : हू (हु+उ) १७

वही – ओ : हो १७

तृ० पु० वहु० पु० – ए : परे १६

क्रिया, पूर्वकालिक कृदन्त :

–अ : मल १८, मल १८

–इ : (नि)हालि १६, करि १६, डहि १६, निहालि १७, डहि १८, डहि १८, निहालि १८

क्रिया, वर्त्तमान कृदन्त :

तृ० पु० एक० स्त्री० – अति : पइसति १८

तृ० पु० वहु० पु० – अंद : अक्खंदहं १५

अव्यय :

स्थानवाचक : एथु १५

संयोजक नं : नं १७, नं १७

जणु : जणु १८

अवधारण वाचक – ऊ : मयणू १६

वि : एक्केणवि १६

तु : तु १८

पर : पर १५

एक रचनामें मिलनेवाले कुछ-न-कुछ रूप दूसरीमें इसलिए नही मिलते हैं कि जहाँ एक (राउल वेल) वर्णनात्मक प्रशस्ति काव्य है, दूसरा (कु०) कथा-काव्य है। इसलिए नीचे केवल उन्ही रूपोंपर विचार किया जायेगा जो कु० तथा 'राउल वेल' की टक्किणीकी भाषा – दोनों – में पाये जाते हैं।

कर्त्ता० एक० के अविकृत रूप दोनोमें ही एक प्रकारसे आये हैं : प्रत्यय-हीन रूप तो दोनोमे मिलते ही हैं, एक० पु० अकारान्त शब्द दोनोमें – ॰ तथा उ प्रत्ययोके साथ भी आते है।

कर्त्ता० बहु० पु० अकारान्त शब्दोंके अविकृत रूप टक्किणी भाषामे प्रत्ययहीन ही हैं, कु० में भी वे सामान्यतः प्रत्ययहीन हैं, किन्तु कभी-कभी वे – आ। आ। आन प्रत्ययोके साथ भी आते है।

कर्म० एक० पु० शब्दोंका रूप टक्किणीकी भाषामें अविकृत ही मिलता है, विभक्तियुक्त नही मिलता है, और विकृत रूपका भी उसमे एक ही उदाहरण आता है जो एक० स्त्री० (ईकारान्त शब्द)में अनुनासिक-युक्त है। कु० में वह या तो अविकृत है और या तो विकृत और विभक्तियुक्त है।

कर्म एक० पु० अकारान्त शब्द दोनोमें अविकृत रूपमे – ॰ प्रत्ययके साथ प्रयुक्त हुए है।

करणमे, टक्किणीकी भाषामें विभक्तियाँ नहीं हैं, केवल एक०पु० में – ॆ ए तथा बहु० स्त्री० में – हि प्रत्यय प्रयुक्त हुए है। करणके रूप कु० में सामान्यतः विभक्तियुक्त हैं, केवल कही-कही पर अविकृत हैं। असम्भव नही है कि इन विभक्तियोका विकास बादकी वस्तु हो।

सम्प्रदानमें भी स्थिति वही है जो ऊपर करणकी दिखाई पड़ी है; जबकि कु० मे विभक्तियुक्त रूप ही प्रयुक्त हुए हैं, टक्किणी भाषामे – ा प्रत्यय मात्र है।

अपादानके रूप टक्किणीकी भाषामे नही है।

सम्बन्धके लिए टक्किणीकी भाषामें या तो सामासिक रूप हैं और या तो एक – हि तथा बहु० – हं युक्त रूप हैं, केवल एक स्थानपर एक० – हि के साथ 'केरा' विभक्ति युक्त रूप भी मिलता है। कु० मे विभक्तियुक्त रूप ही मिलते हैं, केवल एक स्थान पर – हि प्रत्यय प्रयुक्त मिलता है।

अविकरण एक० पु० (आकारान्त) शब्दोंमें दोनोंमें – ि प्रत्ययका प्रयोग हुआ है, टक्किणीकी भाषामें – इ तथा – हि का भी प्रयोग मिलता है और एक स्थानपर – हु का भी प्रयोग हुआ है। कु० में विभक्तियुक्त प्रयोग भी प्रचुरताके साथ मिलते हैं, जबकि टक्किणीकी भाषामें ऐसा एक भी नहीं मिलता है। हो सकता है कि इन विभक्तियोंका भी विकास बादका हो।

सम्बोधनमें कु० में अविकृत और विकृत दोनों रूप प्रयुक्त हुए हैं, टक्किणीकी भाषामें केवल एक उदाहरण मिलता है जो अकारान्त शब्दका है और – ु प्रत्ययके साथ आया है।

इस प्रकार प्रकट है कि कु० संज्ञा-रूपोंके सम्बन्धमें टक्किणीकी भाषासे काफ़ी बादकी भाषाका उदाहरण प्रस्तुत करती है—जिसमें प्रत्ययोंका स्थान विभक्तियोंने ग्रहण कर लिया था, यद्यपि प्रत्ययोंका प्रयोग सर्वथा समाप्त नहीं हुआ था।

सर्वनामोंमें-से तृतीय पु० के एक० सो तथा बहु० ते दोनोंमें हैं, निकटवर्ती बहु० स्त्री० (विकृत) टक्किणीकी भाषामें जें है, कु० में बहु० स्त्री० (विकृत) का प्रयोग नहीं मिलता है; टक्किणीकी भाषामें सम्बन्धमें सो का तासु हो गया है, कु० में सो विकृत रूप तिस है, जो कि सम्बन्धके रूपमें प्रयुक्त नहीं मिलता है।

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम एक० जो तथा बहु० जे दोनोंमें समान रूपसे आये हैं।

विशेषणोंके एक० पु० रूप० दोनोंमें प्रायः आकारान्त तथा एक० स्त्री० रूप प्राय ईकारान्त हैं – और दोनोंकी यह समानता महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वर्त्तमान खड़ी बोलीकी यह एक निश्चयात्मक विशेषता है। बहु० पु० के लिए अकारान्त शब्दोंको आकारान्त भी दोनोंमें समान रूपमें किया गया है, दोनोंकी यह समानता भी महत्त्वपूर्ण है।

संख्यावाचक विशेषण एक ही—दुइ दोनोंमें समान रूपसे मिलता है।

क्रियाके अन्तर्गत तृ० पु० एक० सामान्य वर्त्त० के रूप दोनोंमें सामान्यतः – अइ लगाकर बने हैं, किन्तु कहीं-कहीं पर वे – अ लगाकर भी बने हैं।

तृ० पु० बहु० का रूप टक्किणीकी भाषामें – अहि लगाकर बना है, वह कु० में नहीं मिलता है, प्रथम पु० बहु० का रूप कु० में – अइं लगाकर बना है, जो टक्किणीकी भाषामें नहीं मिलता है। वर्त्तमान खड़ी बोलीमें इस विषयमें दोनोंमें समानता है, इसलिए यह असम्भव नहीं है कि – अइं – अहिका ही बादका विकास हो।

सम्भावनार्थ वर्त्तमानका द्वि० पु० एक० का रूप टक्किणीकी भाषा तथा कु० दोनोंमें – उ लगाकर बना है, और टक्किणीकी भाषाका – इज्जइ या – इय्यइ कु० में – ईइके रूपमें मिलता है, जो कि उसीका विकसित रूप ज्ञात होता है।

तृ० पु० एक० पु० सामान्य भूत और भूत कृदन्तका टक्किणीकी भाषाका – उ। ओ युक्त रूप कु० में भी मिलता है। उसका बहु० का – ए युक्त रूप भी कु० में समान रूपसे मिलता है।

पूर्वकालिक कृदन्तके रूप दोनोंमें – इ अथवा – अ लगाकर बने हैं, जिनमेंसे – इ वाले रूप ही अधिकतासे हैं।

वर्त्तमान कृदन्तका एक० स्त्री० का एक रूप टक्किणीकी भाषामें – ति युक्त है जबकि कु० में वह – ती युक्त है। असम्भव नहीं है कि – ती तथा – ति का यह अन्तर छन्द-रचना जनित हो। उसका दूसरा रूप दोनोंमें – अंद युक्त है।

अव्ययोंमें अवधारणवाचक उ दोनोंमें समानरूपसे हैं। टक्किणी भाषाका संयोजक जणु कु० में जाणु के रूपमें मिलता है। टक्किणीकी भाषाका निकट स्थानवाचक एथु कु० में नहीं है, किन्तु प्रश्न तथा सम्बन्धार्थी स्थानवाचक उसमें कहाँ-जहाँ है, इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि निकट स्थानवाचक उसमें इहाँ रहा होगा, जो एथु का परवर्ती रूप हो सकता है। टक्किणीकी भाषाका संयोजक नं कु० में नहीं है, उसका कार्य उसमें जाणि, जाणुं अथवा जाणे से लिया गया है।

इस प्रकार प्रकट है कि दोनो रचनाओंकी भाषा अभिन्न है, अन्तर इतना ही है कि कु० में उसी भाषाका परवर्ती रूप है जिसका पूर्ववर्ती रूप 'राउल वेल' की टक्किणीकी भाषामें मिलता है।



वार्तिक तिलकके शब्द-रूप

संज्ञा : एकवचन (अविकृत)

पु० तथा स्त्री० शब्द प्रत्ययहीन रूपोमें प्रयुक्त हैं। उदाहरण देना अनावश्यक होगा।

संज्ञा : वहुवचन (अविकृत)

पुं० : आ>ए : तिसके च्यारि वेटे (१), ए च्यारि वेटे पलकोके 'डोरे' खैंचि दिस, तारे सौं वांधीए (२), मेरे च्यारि 'वेटे' (४), दो लाख 'रुपैए' खैर करो (८), ढाइ लाख 'रुपैए' कुरवान हुवए थे (९), दाई 'कपड़े' पिन्हाइ···पेस कीया (१०) सोनेके 'तुके' कुतुव चलावै (१४), 'तूके' ढूंढनेवाले···जमा होई (१४), मसालीके 'चांदणे'···टूट टूट परैगे (१४), ईस ही रौसनि 'वाले' गिणे (१५)।

पु० : अ (फ़ारसी)>आन : वादिसाहान (३)।

स्त्री० : अ>एं : आखै की 'पलकौ (पलकैं ?)' गालै सौं आई लगी (२), ठौर ठौर 'नववतौ' वाजती है (९)।

स्त्री० : ई>इयां : 'वारीया (वारीया) वेलियां' नैंनां दिपलावो (१३)।

वहु० के लिए एक० का प्रयोग : चालीस अरवकी 'चौकी', ए तीन 'वस्त' जिस लडिकि मैं होइगी (१२)।

संज्ञा : एकवचन (विकृत)

आ> एं : पातिसाह 'देपणै' सौं रहा (२)।

आ> ए : 'घोड़े'का घोडा, तुम्हारे 'वेटे' का नवल नाम दीया है (११), 'खाणं 'खाणें' कु आए (१५)।

प्रत्ययहीन : 'सोना रूपा' की जंजीर से औंवे लटकै (४)।

संज्ञा : वहुवचन (विकृत रूप)

पुं० : अ> आं : फेरि 'मसालां' की रौसनाई यौं····(१५)।

स्त्री० : अ>एँ : 'आंखें'की पलकों गालें मों आई लगी (२)।

,, अ>ओं : तब 'पलकों' सौं रेसके डोरे लगे रहे (२)।

,, ई>यौं : तब मकड़ी 'मान्यों' पर छोड़िए (३)।

लिंग-निर्माण

पु० : अ। आ>स्त्री०-ई : तब 'मकड़ी' मान्योंपर छोड़िए (३), सो ऐसी 'मकड़ी' की सिकार पातिसाह जी देषै (३), तब ऐसी 'मकड़ी'की सिकार (३) उसी पातिसाहकी 'बेटी' व्याहीए (४), 'बेटी' कौन कै दे (५), जहा 'लड़िकी' सुरति जमाल होइगी (१२), मां 'साहिजादी' (१२) नानी 'साहिजादी' (१२), ए तीन वस्त जिस 'लटिकि' मैं होइगी (१२), पंज सौ 'बूटी' (१३, १५) पंच सै सोवन 'लटी' (१३) सोनेकी 'छडी' लिये रहौ (१३)।

संज्ञा : प्रथमा विभक्ति

पुं०।स्त्री० : नैं, नै : पेरोज साहि 'नै' बीबी विवांनां व्याही (५), मांगणै लायक जाति साह 'नै' बदी करी नांह (८), पातसाह 'नै' हुकम कीया (१०), तब पातसाह 'नै' भी फाल देखा (११), एता जवाब बीबी विवांना 'नै' कीया (१२) यह जवाब पातिसाह 'नै' कीया (१२), जिस पुदाय 'नै' हमको कुतुब बेटा दीया है....(१२), महल बादसाह 'नै' सहर बाहिरे कराए (१५)।

निर्विभक्तिक : पुं० : 'पातिसाह' हुकम कीया(८), 'पातिसाह' कह्या(११), तब 'पंडितां' आपणा सास्त्र देष्या (११)।

स्त्री० : आ >एं : तब बीबी 'विवानें' बोली (१२)।

द्वितीया विभक्ति

पुं०।स्त्री० कौं, को : ज्यौं रंगरेज चूनडी 'को' बंद देता है (२), तब पातसाहि 'को' नजरि आवै (२), सदर 'को' आय माखी लगै (३), मकणी 'कौं' पकड़ै (३) ज्यौं हिरण 'कौं' चीता पकड़ै (३), आपणे साहिब 'कौं' यादि करै (४), पातिस्याह पेरोज साहि 'कौं' (५), पातसाह 'कौं' फेरि जवांनी चढी (५), पुदाय'को' आदि करता हुवा....(५), बीबी विवानां 'कौं' फारसी हिंदुही दिल मही थी पैदा हुई (६), ऐसी बीबी विवानां पातसाह 'कौं' व्याही। (६), बीबी विवाना 'कौं'—पेट रहै (७), बीबी विवानां 'कौं' फरज्यंद होइ (७), बीबी विवानां 'कौं' फेरि पेटिकी

उमेद रहै (७), वीवी विवानां 'कौं' पेटकी उमेद रही (८), फेरि फेरि महीने 'कौ' ओरु पातसाहकी नजरि (१०), तव पातसाह 'कौं' भी''''नाम नजरि आया (११), तुम कुतुवुद्दीन नवल 'को' एक व्याहका नांव क्यौं लीया (१२), कुतुव 'को' अवलि तही व्याहैंगे (१२), सो अलाह कुतुव 'को' ऐसा व्याही भी देगा (१२), साहिजादे 'को' को मत पूछियो (१३), तिसकी साहिजादे 'कौ' मालूम होई (१३), पचीस पचीस मुहुर 'कौ' गज एक अपनी समसेर जमधड़ 'कौं' कचा सूत सौ परोई (१४), घोड़े 'को' वुरी करावैगे (१४) ।

वही, कै : विवानां 'कै' फरज्यंद हुआ (९), कोई ऐसी उमर को वेटी कौन 'कै' दे (५) ।

तृतीया विभक्ति

पु०।स्त्री० : सौं : आहु पाना पेरोज खां 'सौं' पैदा हुवा, वकरा हिरण सो लडावै (१), आँखै की पलकौं गालै 'सौं' आई लगी (२), पातिसाह देषणै 'सौ' रहा (२), पलकौं के डोरे खैंचि दिस तारे 'सौं' वाँधीए (२), तव सिकार 'सौं' वहुत प्यास पातसाह का रहै (३), जंगल की सिकार 'सौं' रहै (३), सोना रूपा की जंजीर 'सौं' औंधे लटकै (४), पुदाइकी रहम इन्याइति 'सौं' पैदा हुई (६), पातसाह उमराव 'सौं' वोले (१०), पर मुसकलि 'सौं' पैदा होहिंगे (१२), पुव जतन 'सौं' राष्या चाहिए (१२), कोई किस हीं के साथ 'सौं' लेणै न पावै, कचे सूत 'सौं' नग जौ हार परोए (१४), असवारके डील 'सौं' टूटि टूटि परैंगे (१४), उसके हाथ 'सौं' कोई और लेणै न पावै (१४) ।

वही, ते : सांव अलाह 'ते' होइगी (१२) ।

निर्विभक्तिक : वारियां वेलियां 'नैनां' दिपलावो (१३) ।

चतुर्थी विभक्ति

पु०।स्त्री० कु : आप अंदर पाणां पाणै 'कु' आए (१५) ।

वही, कौं : परणनै 'कौं' असवार हुवाए, एक सौ मुहुरकी हिमानी दरवाजे की खैर 'कौं' (१३), पाणा पाणै 'कौं' वैठा कुतवदी नवल (१६) ।

पंचमी विभक्ति

पु०।स्त्री० : थी : दिल यही 'थी' पैदा हुई (६) ।

वही, सौं : हरम खानै 'सौं' दौड़ी ही आई (७) ।

षष्ठी विभक्ति

एकवचन पु० का : जब कीसी उमराव 'का' काम (२), हाथी 'का' हाथी (२), घोड़े 'का' घोड़ा (२), आदमी 'का' आदमी नजरि आवै (२), तब सिकार सौ बहुत प्यास पातसाह 'का' रहै (३), ऐसी पातिसाही 'का' धणी (२) अपने उमरावै 'का' (४), हाथी घोड़ा'का' (४), समरकंदके पातसाह 'का' नालेर आया (५), सुलतान सलेम 'का' (५), मोतियन 'का' सेहुरा सें बांधि (५) फरज्यंद 'का' पेट रहै (७), एक रोज फजर 'का' वख्त है (७) हुकम खुदाइ 'का' ऐसा हुआ (७), माहीना एक 'का' लडिका (१०), साहिजादा केरि माहीने 'का' होय तव नजरि करिये (१०), ''' तैता महीना तीस 'का' नजरी अडै (१०), तुम्हारे बेटे 'का' नवल नाम दीया है (११), कुतवुदीन नवल 'का' एक व्याह''''(१०), वहुत वंहिगी 'का' फरजंद है (१२), एक व्याह 'का' नांव क्यों लीया (१२, १८), तिस 'का' जीन करिए (१४), उसके वख्तके दूसरा घोड़ा उस ही रीस 'का''''(१४), इबादति 'का' वक्त है (१५, १५) दुनिया 'का' जनावर''''(१६) दुनिया 'का' दरख्त'''' (१६), जंगल 'का' ही जनावर (१६), जंगल 'का' ही दरख्त (१६)।

एकवचन स्त्री० : की : तिन दरियाव 'की' मछी मारी (१), तिसकी निवै वरस 'की' उमर हुई (२), आँखै 'की' पलकौ गालै सैं आई लगी (२), तव सिकार काहे 'की' देपीयै (३), ऊजली चादरि सितारे 'की' विछाय (३), सो मकड़ी चीते 'की' नाहायति मपी कौं पकड़ै (३) सो ऐसी मकड़ी 'की' सिकार पातिसाह जी देपै (३), जंगल 'की' सिकार सौं रहै (३), तव ऐसी मकड़ी 'की' सिकार देपै (३), पुदाइ 'की' वंदिगी करणै लागा (४), सोना रूपा 'की' जंजीर सौं ओधे लटकै (४), सरोस 'की' वंदिगी करै (४), सामके वक्त 'की' (४), पुव चुस्त वंदगी पुदाय 'की' की (४), नव्वै वरस 'की' उमर मों''''नालेर आया (५), समरकंदके पातसाह 'की' वेटी व्याही (५), तरीक वेद 'की' पैदा हुई (६), कुरान 'की' पैदा हुई (६), पुदाई 'की' वंदगी करने लागे (३), बीबी विवानां 'की' दाई''''दोड़ी ही आई (८), वीवी विवानां कौं पेट 'की' उमेंद रही (८), उमेद 'की' पवर पर''''(९), ताज कुलह 'की' तापी सिरपर रापी (१०), पातसाह 'की' नजरि पेस कीया (१०), पातसाह 'की' नजरि आगै रापा (१०), साहिजादा पातसाहि'की' नजरि ऐसा आया''''(१०), पातसाहि 'की' नजरि (१०), इसकै वासतै तुम कौण कौंण वंदिगी पुदाय 'की' की है (१२), किसी वात 'की' कमी नाही (१२), सोने

'की' छडी लिये रही (१३), एक सौ मुहर 'की' हिमानी (१३), दरवाजे 'की' पैर कुं (१३); पचीस पचीस मुहर को गज 'की' नीलक (१४), नगों 'की' दोस्ती कुतब घोड़ैको पुरी करावैगे (१४), वीवा विवानां 'की' हजूरि (१५), घुंट एक ठंडा आव पाणी 'की' पीजीए (१५), योगिणी पाणी 'की' घुंटै (१५), फेरि मसालां 'की' रोसनाई मौ (१५), दुनिया 'की' वतास पवन लगने न पावै (१६), पवन भी लगै सु जंगल 'की' ही लगै (१६)।

एकवचन पु० (विकृत) : कैं, कै, के : दिल्ली 'कै' तपत''''वादसाही करै (१), दिली 'कैं' वाजारि''''(९), घोड़े 'के' गले मौ वाधिए (१४), दिल्ली 'के' वड़े वाजार आइ जमा होई (१५), कुतुव० दिल्ली 'के' घर साहिजादा पैदा हुवा (१२), साम'के' वक्तकी''''(१४), खवरिदार चिहरा मुहला 'के' होय (४), समरकंद 'के' पातसाहका नालेर आया (५), समरकंद 'के' पातसाहकी वेटी व्याही (५), पातसाह 'के' दिलके दरद कढ़े (५) काजी मुल्ला 'कै' आगै''''(६)।

एकवचन पु० (विकृत) कौ : मसालै 'कौ' उजियारे''''(१४)।

वहुवचन पु० : के : ए सुलतान 'के' मजलिसी उमराव (१), पलकों 'के' डोरे खैंचि''''(२), तव पलकोसे रेस 'के' डोरे लगे रहै (२), पातसाहके दिल 'के' दरद कढे (५), अव तौ लापों करोड़ो 'के' मुहुरि''''(९), पातिसाह 'के' मनच्यते कारिज हुए (९), एक सै सौ व्याह कुतुव 'के' हमे सौ करै (१२), कुतुवुदीन नवल 'के' हम वहुत व्याह करैगे (१२), सोने 'के' तुके कुतुव चलावै (१४), तिस रोज मसालों 'के' चादरौं''''टूटि टूटि परैगे (१४)।

वहुवचन स्त्री० की : चालीस हरम 'की' चौकी (१)।

निर्विभक्तिक (विकृत) : किसी कौ 'पंडितों' पास रखीए (६), बीवी विवानां कौं 'पेटि' उमीद रहै (७) 'मांगणै' लायक पातिसाह तैं वदी करी नांह (८)।

सप्तमी विभक्ति

– अ > इ : सु वीवी विवांना 'अवलि' वहुत सुरति जमाल (६), दिली कै 'वाजारि'''''(९), कि 'अवलि' पातिसाहि वोल्यो (११), पै 'अवलि' व्याह तहां करैगे (१२), कुतुव कौ 'अवलि' तहीं व्याहैगे (१२), 'अवलि' पुरांनवाला वोला (१५); 'वाहरि' छडीदार पड़े रहैं (१५)।

– आ>ऐं, ऐ : पै 'घोड़ै' असवार हुवा न जाय (३), किसी कै काजी मुला कै 'आगै'.....(६), 'डेरै डेरै' नवबतां बाजती है (९), साहिजादा 'दरवाजै' वासै आइ उतरै (१४), मसालों के 'चांदणै'.....(१४)।

– आ>ऐ : मसालै को 'उजिआरे'.....(१४), महल सहर 'बाहिरे' कराए (१५)।

में, मैं, मैं : कोई ऐसी उमर में' बेटी कौन कै दे (५), सायति 'में' गुसल किया (१०), सिर 'मैं' पानी डालि कपड़े पिहने (१०), हिंदुई 'मैं' पंडित नाम राखो (११), तुमारे फाल 'मैं' क्या नाम नजरि आया (११), हमारे फाल 'मैं' भी याही नाम है (११), साहिजादा हरमखानै 'मैं' ले गए (११), ए तीन वस्त जिस लड़िकि 'मै' होइगी.....(१२), घोड़े के गले 'में' बाधा (१४)।

मही : दिल 'मही' थी पैदा हुई (६)।

मो, मों : नवै बरस की उमर 'मों' नालेर आया (५), फेरि मसालों की रौसनाई 'मों'.....(१५)।

पर, ऊपर, उपर : तब गिलम 'ऊपर'.....चीनी सकर बखेरियै (३), तब मकड़ी मार्‍यो 'पर' छोडिए (३), एक दिन तख्त 'पर' क्या स करता.....(४), बादशाह तख्त 'पर' आइ बैठे (७), बिवानां 'उपर' कुरबान करि खैर करो (८), उमेद की खबरि 'पर'...(९), सिर 'पर' राषी (१०)।

निर्विभक्तिक : एक-एक 'रानि' आवै (१), तब पातिसाह 'तषत' आइ बैठे (२), तसबी पातिसाह चारयो 'पहर' यादि करै (४), किसी को पंडितों 'पास' रखीए (६) एक 'रोज' फजरका वख्त है (८), तिस 'रोज' दीजीए (८), 'ठौर ठौर' अब मोती छाडींये है (९), 'ठौर ठौर' नवबतों बाजती है (९), 'नजरि' पेस कीया (१०), 'नजरि' ऐसा आया (१०), लरिका 'नजरि' आवै (१०), तब कुतबुदीन नवल नाम 'नजरि' आया (११, ११), कुतब दिल्लीके 'घर' पातिसाहजादा पैदा हुवा (१२), ग्यारह सै आदमी कुतुब० 'पास' रखे (१३), तिन्हों कै 'हाथ' (१२), आठवै 'रोज' जुमाराति आवै (१४), तिस 'रोज' वपसीए (१४), आठवै 'रोज' (१४), दिल्ली कै बड़े 'बाजार' आइ जमा होई (१४), 'हाथ' पहली बाग लागै (१४), आपणै 'महल' आए (१५)।

सम्बोधन

एकवचन – आ>ऐ : साहिजादे सलामति (१५)।

बहुवचन :– आ।आ > ओ।औं : 'यारो', 'उलमावो', 'पंडितो' (११), ना 'यारो' (११), क्यौं 'यारौं' क्यौं वोलते नाही (११), क्यौं 'यारो' वोलते क्यों नाही (११)।

ए, ऐ : 'ए' पाक परवर दिगार''''(५), 'ए' दाई तू व मांग (८), 'ऐ' दाई किछू तू मांग (८), 'ए' दाई साहिजादा फेरि माहीनेका होई तव नजरि करिये (१०), 'ए' वीवी (१२), 'ए' साहिजादे (१५)।

सर्वनाम : उत्तमपुरुष

एकवचन कर्त्ता (अविकृत) मैं : 'मैं' क्या मांगौ (८, ८)।

एकवचन सम्बन्ध (अविकृत) मेरा : 'मेरे' च्यारि वेटे (४)।

वहुवचन कर्त्ता (अविकृत) हम : तव 'हम' कहैगे (११), कुतुव के 'हम' वहुत व्याह करेंगे (१२)।

वहुवचन कर्म-सम्प्रदान (अविकृत) हमकौं : जिस पुदाय ने 'हमकौं' वेटा दीया है (१२)।

वहुवचन सम्बन्ध (अविकृत) हमारा, (विकृत): पु० हमारे, स्त्री० हमारी : 'हमारे' फाल मौ भी याही नाम है (११), 'हमारी' एक अरज है (१२)।

सर्वनाम : मध्यमपुरुष

एकवचन (अविकृत) तू : 'तू' व मांग (८), कुछू 'तू' मांग (८)।

वहुवचन कर्त्ता (अविकृत) : 'तुम' कुतुबुदीन नवल को एक व्याह का नांव क्यौ लीया (१२), 'तुम' कौण कौण वंदिगी पुदायकी की है (१२)।

वहुवचन सम्बन्ध (विकृत) पु० तुमारे : 'तुमारे' फाल मैं क्या नाम नजरि आया (११), 'तुमारे' वेटे का नवल नाम दीया है (११)।

सर्वनाम विशेषण : निकटवर्ती निश्चयवाचक

एकवचन (अविकृत) यह, य, याह : हमारे फाल मैं भी 'याही' नाम है (११), 'यह' जवाव पातिसाह नै कीया (१२), 'यह' वात दरोग लगती है (१२), 'याह' वात दरोग लगती है (१२), तिन्हकौ 'य' हकीकति फुरमाई (१३), 'यह' मेलिकरि घोड़े के गले मौ वाधिए (१४)।

एकवचन (विकृत) इस : 'इसके' वास्ते तुम कौंण कौंण बंदिगी खुदायकी की है (१२), अलह तौ 'इसनौं' भी आले आले देगा (१२), दुनिया का जनावर 'हंसकी' नजरि न आवै (१५)।

बहुवचन (अविकृत) ए : 'ए' सुलतान के मज[ल]सी उमराव''''(१), 'ए' च्यारि वेटे (१), 'ए' उलमा भी आपना फाल देखौ (११), 'ए' तीन वस्त जिस लड़िकि मैं होइगी (१२)।

सर्वनाम विशेषण : दूरवर्ती निश्चयवाचक

वह-परिवार :

एकवचन (विकृत) उस : 'उसका' ही घोड़ा (१४), कुदरत नाही 'उसके' हाथ सौ कोई और लेणै न पावै (१४), सो 'उसके' वप्तके (१४), दुसरा घोड़ा 'उस' ही रांस 'का'''(१४), 'उसकी' नजरि न आवै (१६)।

त-परिवार :

एकवचन (विकृत) कर्त्ता तिन : 'तिन' दरियाव की मछी मारी (१)।

एकवचन (विकृत) अन्यकारक तिस : 'तिसके' च्यारि वेटे (१), 'तिसकै' पेरोज खां सिकारी (१), 'तिस' पर चीनी सकर वपेरियै (३), 'तिस' के पेटका असलि पातसाहजादा''''(४), 'तिस' की निवै वरस की उमर हुई (८), 'तिस' रोज कीजीए (८), 'तिसको' एक व्याह का नांव क्यों लीया (१२), 'तिसकौं' लाख देहु सौ लाख दीजीयौ (१३), 'तिसपर' अभ्नातंच लीखीए (१३), जो पावै 'तिस ही का' (१३), 'तिस' रोज पंज पंज हार के''''(१४), 'तिस' थे माह'''' दरोग लगती है (१२), 'तिसमैं' पंज सौ बूढ़ी (१३), 'तिसकी' साहिजादै कौ मालूम होई (१३)।

बहुवचन (अविकृत) तिन्ह, (विकृत) तिन्हौ : 'तिन्होको' पातिस्याह हुकम कीया (१३), 'तिन्हकौं' ये हकीकति फुरमाई (१३), 'तिन्हौ कै' हाथ पंच सै सोवन लठी (१३)।

स-परिवार :

एकवचन (अविकृत) सो, सु : 'सु' कैसा एक पातिस्याह (१), 'सु' दीजीए (८), 'सोई' नाम पूव (११), 'सो' अलाह कुतुव को ऐसा व्याही भी देगा (१२), 'सु' जंगल का जनावर''''(१६), 'सो' मकड़ी मपी पौं पकड़ै (२), 'सु' जंगल की ही लगै (१६)।

सर्वनाम विशेषण : निजवाचक

एकवचन कर्त्ता (अविकृत) : 'आप' खुसाल होय उतरै (१४), 'आप' अंदर आए (१४)।

एकवचन सम्बन्ध (अविकृत) आपना, अपनी, (विकृत) अप्पणे, आपणे : हजरति भी 'आपना' फाल देषो (११), 'आपणे' महल आए (१५), 'अप्पणे' साहिब कौं यादि करै (४), 'अपनी' समसेर जमधड़ कौं कच्चा सूत सौ परोईए (१४)।

बहुवचन सम्बन्ध (अविकृत) आपणा, आपना : पंडितौ 'आपणा' सास्त्र देखा (११), ए उलमा भी 'आपना' फाल देखौ (११)।

सर्वनाम विशेषण : सम्बन्धवाचक

एकवचन (अविकृत) जु, जो : 'जु' कौडी लायक आदमी आवै (१३), 'जु' इसकी नजरि पडै (१५), 'जो' पावै तिस ही का (१४)।

एकवचन (विकृत) जिस : 'जिस' पुदाय नैं हमका....बेटा दिया है (१२), जब 'जिसकौं' हाथ पहली बाग लागै (१४), ये ए तीन वस्त 'जिस' लड़िकि मैं होइगी (१२), 'जिस' रोज बीबी बिवानां....(८)।

सर्वनाम । विशेषण : अनिश्चयवाचक

एकवचन (अविकृत) कोई : असल पातिसाहजादा 'कोई' नही (४), 'कोई' अैसी उमरमे बेटी कौन कै दे (५), साहिजादै को 'कोई' मत पूछियो (१३), 'कोई' बड़ा गुनी...(१३), 'कोई' बिसही के हाथ सौ...(१४), 'कोई' और लेणैं न पावै (१४)।

एकवचन (विकृत) किसी, किस हीः 'किसी कै' काजी मुला कै आगै पठए, 'किसी कौं' पंडितौ पास रषीए....(६), जब 'कीसी उमराव का' काम....(२), किसी पातिसाह की' बेटी व्याहीए (४), 'किसी बातकी' कमी नाही (१२), 'किस ही के' हाथ सौ लेणै न पावै (१४)।

सर्वनाम । विशेषण : प्रश्नवाचक

एकवचन (अविकृत) कौंन : 'कौंन कौन', उमराउ (१), 'कौन' कै दे (५), तुमा 'कौण कौण' वंदिगी पुदायकी की है (१२), 'कौन' नाम रषै (११)।

क्या : तुमारे फाल में 'क्या' नाम नजरि आया (११), ऐसी 'क्या' अरज है (१२), तू 'क्या' मांगती है (८), मैं 'क्या' मांगों (८)।

एकवचन (अविकृत) काहे : तब शिकार 'काहे की' देषीये (३)।

एकवचन (विकृत) किस : 'किस' वासतै बंदिगी करनै लागे (७), दरोग 'किस' वासते (१२), 'किस' वास्ते (१५)।

विशेषण : गुणवाचक

एकवचन पु० अकारान्त : 'कुछ' साहिजादेका नाव 'खूब' सा राखो (११)।

एकवचन पु० अकारान्त : ऐसा' सुल्तान (१), सु 'ऐसा' एक पातिसाह (१), होइ तो 'भला' (४), हुकम षुदाइका 'अैसा' हूवा (९), साहिजादा पातसाहिकी नजरि 'अैसा' आया (१०) 'ऐसा' व्याही भी देगा (१२)।

पु० ईकारान्त : तब पातिसाह बहुत 'षुसियाली' होय ३, 'जनलि' पातसाहिजादा होइ'''(४)।

स्त्री० ईकारान्त : सो 'अैसी' मकड़ीकी सिकार पातिसाह जी देषैं (३), 'अैसी' पातिसाही का धणी (३), 'अैसी' बीबी चिवानां पातसाह कों व्याही (६), 'अैसी' बंदिगी करतां करतां (७), 'अैसी' क्या अरज है (१२), 'काली' चादरि सितारे की''''(३), कोई अैसी' शहर में बेटी कौन के दे (५), ग्यारह सै आदमी 'असी' मांति रषै (१३), हाथ 'पहली' वाग लागैं (१४)।

एकवचन (विकृत) पु०–आ>ए : 'अैसे में' बीबी चिवानांकी दाई'''' आई (७), 'अैसे मो' सुलतान (३)।

बहुवचन पु०–आ>ए : 'अैसे' पख''''(१२), पीछे व्याह और 'बहुतेरे' करैंगे (१२), अलह तो इसमों भी 'आले आले' देगा (१२), 'तूके' ढूंढनेवाले''' (१४), तारे 'से' नग टूटि टूटि परैंगे (१४)।

विशेपण : परिमाण वाचक

एकवचन (अविकृत) बड़ा : तू 'बड़ा' साहिब करीम मिहिरवान (५)।

एकवचन (अविकृत) बहुत : 'बहुत' सुरति जमाल''''(६), 'बहुत' अजमति (१०), हम 'बहुत' व्याह करेंगे (१२)।

एकवचन (अविकृत) षूब : 'षूब' फहिम अकलिदार''''(६)।

एकवचन (अविकृत) कुछु : 'कुछू' तू मांग (८)।

एकवचन (विकृत) – आ>ए : 'बड़े' बाजार आइ जमा होई (१४)

विशेषण : संख्यावाचक

एक : 'एक एक' रांति आवै (१), 'एक' अवल फरज्यंदका पेट रहै (७), कुतुबुदीन नवलका 'एक' व्याह····(१२), 'एक' व्याहका नांव····(१२), गज 'एक' (१४), 'एक' दोइ नग (१४), 'एक' नेवाला उठाय उठायए (१५), घुंट 'एक' लीजीए (१५)।

दोइ, दो : एक 'दोइ' नग (१४), 'दो' ईराकी वकसिए (१४)।

तीन : ए 'तीन' बस्त जिस···(१२)।

पंज : 'पंज पंज' हारके····(१४)।

सैं। सै : एक 'सै' सौ व्याह····हमे सौ करै (१२), ग्यारह 'सै' आदमी असी भांति रपै (१३)।

अवल : एक 'अवल' फरज्यंदका पेट रहै (७)।

पहली : 'पहली' वाग लागै (१४)।

आठवै : 'आठवै' रोज जुमाराति आवै (१४)।

क्रिया

क्रियार्थक संज्ञा – णा – ना : 'परणनै' कौ असवार हुवा (५), पातिसाह 'देषणै' सौ रहा (२)।

क्रियार्थक संज्ञा – ला : जब किसी उमरावका काम 'होला' होय (२)

प्ररणार्थक रूप – आव् : घोड़े कौ पुरी 'करावैगे' (१४)।

प्रेरणार्थक रूप – लाव् : वारीया वेलियां नैनां 'दिखलावो' (१३)।

विधिरूप, मध्यम पुरुष : प्रच्छन्न 'तू'के साथ प्रत्ययहीन रूप : तू व मांग (८), तू कुछू मांग (६)।

वही, प्रच्छन्न 'आप'के साथ – इए। यए : तिसपर चीनी····'वपेरीयै' (३), तब मकड़ी माखीपर 'छोडिए' (६), सु 'दीजीए' (८), तब फेरि नजरि 'करिये' (१०), एक नेवाला 'उठायए' (१५), घुट एक ठंडा आव पानीकी 'लीजिए' (१५)।

वही, प्रच्छन्न 'तुम'के साथ–ओ। औ। औं (?)। यौ : पैर 'करो' (८),

'जीवौ' पातिसाहु सलामति (८), कुछ साहिजादेका नाव गुप सा 'रापौ'(११), हिंदूई कौ पंडित नाम 'रापौ' (११), कि 'जीवौ' पातसाहु सलामति (११), ए उलमा भी अपना फाल 'देषौ' (११), हजरति आपना फाल 'देषौ' (११), कि आचलि पातिसाहि 'बोल्यौ' (११), ढूंढ़ि के पैदा 'करौ' (१२, १२), खिह सै छटीदार सोनेकी छुरी लिये 'रहौ' (१३), बागीयां वेल्यां नैनां 'दिपलावो' (१३)।

वही, प्रच्छन्न 'तुम'के साथ, भविष्यत् कालमें : -इयौ : नाप 'दीजीयो' (१३), कोई मत 'पूछियौ' (१३)।

वही : अन्य पुरुष। संज्ञाके साथ – ऐ : 'मैं' साहिजादा अलैन जाने न 'पावै' (१३), कोई न 'पावै' (१८), दुनियाकी पवन लगने न 'पावै' (१५), दुनियाका जनाव उनकी नजरि न 'आवै' (१५), दुनियाका दरद उनकी नजरि न 'आवै' (१५), जु उनकी नजरि 'पड़ै' (१६)।

वही, अन्यपुरुष, आशीर्वादके रूपमें – अइ : साहिजादा बरपुरदार उमर दराज 'होइ' (१०)।

कर्मवाच्य : भूतकाल, भूतकृदन्त रूप : ऐसी बीबी विवानां पातसाहु सौं 'व्याही' (६)।

क्रिया : सामान्य वर्त्त०

संज्ञा : अन्य पुरुष एकवचन ऐ। अय :

[इन उदाहरणोंमे-से अनेक रूपमें सा० वर्तमान किन्तु अर्थमें सा० भूत-कालके हैं।]

वादस्याही 'करै' (१) एक-एक रांति 'आवै' (१), एक वकरा हिरण सो 'लडावै' (१), तव पातिसाह तपत आइ 'वैठै' (२), तव पातिसाहको नजरि 'आवै' (२), आदमीका आदमी नजरि 'आवै' (२), मुहला लै पातसाह 'उठै' (२), तव सिकार सौं वहुत प्यास पातसाहका 'रहै' पै घोड़ै असवार हुआ न 'जाय' (३), रुकर को आय मापी 'लगै' (३), सो मकड़ी''' मक्खी कौ 'पकड़ै' (३). ज्यौं हिरण कौं चीता 'पकड़ै' (३), तव पातिसाह वहुत पुसियाली 'होय' (३), सो ऐसी मकड़ीकी सिकार पातिसाह जी 'देषै' (३), जंगलकी सिकार सौं 'रहै' (३), तव ऐसी मकड़ीकी सिकार 'देषै' (३),

पात्र उरि 'करै' (४), सिर नीचा 'रपैं' (४), सोना रूपाकी जंजीर सों औवे 'लटकै' (४), आपणै साहिव कौ यादि 'करै' (४), सरोसकी वंदगी 'करै' (४), तसवी पातिसाह चारयो पहर यादि 'करै' (४), चेहरा मुहराके खवरिदार 'होय' (४), अपत काजी यौं 'पढ़ै' (५), फेरि पेटि उमेद 'रहै' (७), सोनेके तुके कुतव 'चलावै' (१६), जो 'पावै' लिए ही का (१४), आठवै रोज जुमाराति 'आवै' (१४), साहिजादा आह 'उतरै' (१४), उसके हाथ सौं कोई और लेणै न 'पावै' (१४), जंगलका ही 'देवै' (१६), पवन भी लगै सु जंगलकी ही 'लगै' (१६)।

–ए : पै तू 'दे' (५)।

वही, ह् + ऐ = है : 'है' हंदा (४, ४), यक रोज फजरका वप्त 'है' (७) हमारे फालमे भी याही नाम 'है' (११), हमारी एक अरज 'है' (१२), ऐसी क्या अरज 'है' (१२), वहुत वंदिगीका फरजंद 'है' (१२), सायतका वक्त 'है' (१५)।

वही, –ता है–ताहै : ज्यौं रंगरेज चूनडीको वंद 'देता है' (२), तू व क्या 'माँगती है' (८), नववती 'वाजती है' (९), यह वात दरोग 'लगती है' (१२, १६)।

वहुवचन –ऐं : तव पलको सौ रेसके डोरे लगे 'रहैं' (२), एक दोह नग लगे 'रहै' (१४), वाहर छडीदार खड़े 'रहै' (१५)।

अपूर्ण वर्त्तमान

कोई उदाहरण नही है।

पूर्ण वर्त्तमान

एकवचन संज्ञा : तुम्हारे वेटेका नवल नाम 'दीया है' (११), जिस पुदाय नै हमकों वेटा 'दीया है' (१२), कौण कौंण वांदगी खुदायकी 'की है' (१२)।

सम्भाव्य वर्त्तमान

एकवचन संज्ञा, अन्य – पु० इ।ई।य।ऐ :

[कुछ क्रियाएँ रूपमें सम्भाव्य वर्तमानकी किन्तु अर्थमें सम्भाव्य भूतकी हैं, जैसे सा० वर्त्तमानमे ।]

जबैं कीसी उमरावका काम होला होय' (२), असलि पातसाहजादा 'होइ' तौ भला (४), तौ इलम 'आवैं' (६), तौं विदा 'आनैं' (६), कि पेट 'रहैं' (७), विवानां कौ फरज्यंद 'होइ' (७), वादसाहकी जीप 'आवै (८), माहीना एक का लडिका 'होय' (१०), साहिजादा फेरि माहीनेका 'होई' तव नजरि करिये (१०), एक सैं सौं व्याह कुतुबके हमेसाँ 'करै'.....तौ भी...(१२), जु कौडी लायक आदमी 'आवैं' (१३), जब जिसको हाथ पहली वाग 'लागैं' (१४)।

वही, –औ : कोई वड़ा गुनी 'आवौ' (१३)।

एकवचन उत्तम पु० –हुं।औं : तिसकौ लाप 'देहुं' (१३), मैं क्या 'मांगौं (८)।

एकवचन मध्यम पु० : प्रच्छन्न 'आप'के साथ –इयै।इए : पलकोंके डोरे पैंचि दिस तारै सो 'वाधीए' (२), तव सिकार काहे की 'देपीयैं' (३), किसी कैं काजी मुला कैं आगैं 'पढीए' तौ इलम आवै (६), किसी कौं पंडितौ पास 'रखीए'...(६), तिसपर अभ्रात च 'लिखीए' (१४), दो ईराकी 'वकसिए' (१४), नीलक खरीद तिसका जीन 'करिए' (१४)। कचे सूत सौं नग जौ हार 'परोए' (१४), यह मेलि करि घोड़ेके गले मौं 'वांविए' (१४), नग 'वांवीए' (१४)।

एकवचन संज्ञा। अन्य पुरुष पु० :–गा।इगा।अइगा।इएगा; स्त्री०–इगी। ईगी। ईएगी : साहिजादा पूव अजमति पैदा 'होइगा' (१०), जैसा पप 'होइगा' (१२), सो पुदाय....ऐसा व्याही भी 'देइगा' (१२), इससे भी आले-आले 'देगा' (१२), जहा ल्ड़िकी सुरत्ति जमाल 'होइगी' (१२), खूब फहीम 'होइगी' (१२), सूरति 'पाईगी' (१२), तौ फहीम कहा 'पाईएगी' (१२), अर फहीम 'पाईएगी तौ पख कहां 'पाईएगी' (१२), सांव अलाह ते 'होइगी' (१२)।

वहुवचन वही, पु० –अहिंगे। ऐंगे; स्त्री० –इगी : पर मुसकलि सौं पैदा 'होहिगे' (१२), घोड़ैको खुरी 'करावैंगे' (१४), तीन वस्त जिस लड़िकि मैं 'होइगी' (१२)।

एकवचन उत्तम पु०, पु० –ऊंगा : पीछैं पाल 'काढूंगा' (१३)।

वहुवचन वही, वही –ऐंगे।अहिगे : तव हम 'कहैगे' (११), हम वहुत व्याह 'करैगे' (१२), मैं अवलि व्याह तहां 'करैगे'...(१२), अवलि तहौ 'व्याहैंगे' (१२), पीछैं व्याह और वहुतेरे 'करैंगे' (१२), नग टूटि टूटि 'परैंगे' (१४), गरीव 'लूटहिगे' (१४)।

सामान्य भूत

एकवचन पु० –आया : आहु षांना पेरोज षां सौं पैदा 'हुवा' (१), पातिसाह देषणै सौं 'रहा' (२), एक दिन तपतपर कयास करता 'हुवा' ज मेरे च्यारि वेटे (४), तव साहिव मिहरवान 'हुवा' (४), समरकंदके पातसाहका नालेर 'आया' (५), बहुत पुसाल 'हुवा' (५), खुदायको आदि करता 'हुवा' (५), परणनै कौं असवार 'हुवा' (५), पुदाय मिहरवान 'हुवा' (७), पातिसाहि 'पूछ्या' कि दाई क्यौ आई (७), पातिसाह हुकम 'दिया' (८), हुकम खुदाइका ऐसा 'हुवाय' एक रोज गुजरांन 'हुवा' (१०), दूसरा रोज गुजरांन 'हुवा' (१०) सायति मै गुसल 'किया' (१०), दाई कपड़े पिन्हाइ ले " पेस 'कीया' (१०), साहिजादा पातसाहिकी नजरि असा 'आया' (१०), पातसाह नै हुकम 'कीया' (१०), साहिजादा राषा 'तव' पातसाहिकी नजरि साहिजादा ऐसा 'आया' (१०), असा 'देषा' (१०), साहिजादा बहुत अजमति पैदा 'हुआ' (१०), तब पंडितां आपणा सास्त्र 'देष्या' (११), तब साहिजादा कुतवदीन नवल नाम नजरि 'आया' (११), तब पातसाहने भी फाल देखा (११), तव पातसाह कौ भी नवल नाम नजरि 'आया' (११), तुमारे फाल मै क्या नाम नजरि 'आया' (११), साहिजादा कुतवदीन नवल नाम 'दीया' (११), की षूव 'कीया' (११), एक व्याहका नांव क्यौं 'लीया' (१२, १२), कुतुवदी दिल्लीके घर पातसाहजादा पैदा 'हुआ' (१२), एता जवाव वीबी बिवानां नै 'कीया' (१२), यह नवाब पातिसाह नै 'कीया' (१२), तिन्होको पातिस्याह हुकम 'कीया' (१३), एस होणै 'लागा' (१४), खाना खाणै को 'बैठा' कुतवदीन नवल (१५), अवलि पुरांन वाळा 'बोला' (१५), कुतव० पाणी पाय करि वाहरि 'आया' (१५) दूसरा घोड़ा उस ही रौसका फेरि करि 'आया' (१५), हाजिर 'हुवा' (१५)।

एकवचन स्त्री०-ई : तिन दरियावकी मछी 'मारी' (१), तिसकी निवै वरसकी उमर 'हुई' (२), षुव चुस्त वंदगी पुदायकी 'की' (४), पातसाह कौ फेरि जवानी 'चढी' (५), जाय समरकंदके पातसाहकी वेटी 'व्याही' (५), पेरोज साह नै वीवी बिवाना 'व्याही' (५), पैदा 'हुई' (६), दौडी ही 'आई' (७), दाई क्यों 'आई' (७), खुस खबरि 'ल्याई' (७), वीवी बिवानां कौ पेट की उमेद 'रही' (७), वदी 'करी' नांह (८), ताज कुलह की ताषी सिर पर 'राषी' (१०), तव वीबी बिवानां फेरि 'वोली' (१२), तब वीबी बिवानां 'वोली' (१२), तिन्हकौ य हकीकति 'फुरमाई' (१३)।

बहुवचनके लिए एक०का प्रयोग : आखें की पलकों गालें सों आई 'लगी' (२), तरीक वेद की कुरान की''''पैदा 'हुई' (६)।

बहुवचन पु०-ए।अए : मन च्यंते कारिज 'हुए', कपड़े 'पिहने' (१०), साहिजादे कुं कपड़े 'पिन्हाए' (१०), उलमा वा पंडित 'बोले' (११), तब ताई पंडित व उलमा 'बोले' नाही (११), तब पंडित उलमाव 'बोले' (११), तब पातसाह 'बोले' (१२), ग्यारह सै आदमी कुतुब पास 'रखे' (१२), ग्यारह सै आदमी अमी भांति 'रपै' (१३), ह्यंदुगी तुरकी कुरांन भी हाजरि 'हुए' (१५) ईस ही रौस निवाले 'गिणे' (१५) महल सहर बाहिरे 'कराए' (१५)।

वही, –अते : पंडित 'कहते' नाही (११)।

आदरार्थक बहुवचन-ए।ऐ : पेरोज बादिसाह दिल्ली 'आऐ' (६), बादसाह तख्तपर आइ 'बैठे' (७), पातसाह उमराव सौं 'बोले' (१०), पातसाहि 'बोले' (११), पातसाहि 'लागे' पूछने (११), पातिसाहि कहणै 'लागै' (१२), तब पातसाह 'बोले' (१२), पातसाह 'बोले' (१२, १२), आप अंदर पाणां पाणैं कुं 'आए' (१५), आपणे महल 'आए' (१५)।

अपूर्ण भूत

कोई उदाहरण नहीं है।

पूर्ण भूत

बहुवचन पु० –अए थे : दोइ लाख रुपैये कुरबान 'हुवए थे' (९)

वर्त्तमान कृदन्त

एकवचन पु० –ता : एक दिन तख्त पर क्या स 'करता' हुवा''''(४), पुदाय को आदि 'करता' हुवा (५), ऐसी बंदिगी 'करतां करतां''''' (७), खुश 'करावते' (१५), नंग 'लुटावते' (१५)।

वही, स्त्री० –ती : यह बात दरोग लगती है (१२), याह बात दरोग लगती है (१२)।

भूत कृदन्त

एकवचन पु० –या : कुतुब पुब जतन सौं 'राख्या' चाहिए (१२)।

वही, स्त्री० –ई : ऐसी बीबी त्रिवानां पातसाह कौं 'व्याही' (६), 'दौड़ी' ही आई (७)।

बहुवचन पु० ए : तब पलकों सौं रेस के डोरे 'लगे' रहै (२), एक-दोइ नग 'लगे' रहै (१४), छड़ीदार बाहरी 'खड़े' रहै (१५)।

पूर्वकालिक कृदन्त

ई, इ : आंपै की पलकौ गालै सौं 'आई' लगी (२), तब पातिसाह तप्त 'आइ' बैठे (२), सेहुरा सै 'बांधि' पातिसाह परणनै कौं असवार हुवा (५), दिल्ली 'आइ' फेरि पातसाह पुदाय की बंदिगी करने लागे (७), कुरवान 'करि' खैर करो (६), सिर मैं पानी 'डालि' कपड़े पिहने (१०), दाई कपडे 'पिन्हाइ' पेस किया (१०), तसलीम 'करि' बिवानां कहा (११), सो पुदाय कुतुब० को ऐसा 'ब्याही' देगा (१२), नीलक खरीद 'की' तिसका जीन करिए (१४), 'टूटि टूटि' परैंगे (१४), 'जाई'....पाणा पाणै कौं बैठा (१५)।

ऐ, ए : मुहला 'से' पातिसाह उठै (२), दाई कपड़े पिन्हाइ 'ले'....पेस कीया (१०), साहिजादा हरम खानै मैं 'ले' गए (११), आप खुसाल 'होय'.... आई उतरै (१४)।

य : तब गिलम ऊपर ऊजली चादरि 'बिछाय'....(३), सकर कौ 'आय' मापी लगै (३), 'जाय' समरकंद के पातसाह की बेटी ब्याही (५)।

बिना प्रत्ययके : पातसाह नौ नाम 'देकर'....(११)।

वर्तमान कृदन्त करि, कै, कर : मकड़ी दौड़ि 'कै' मक्खी कौं पकड़ै (३), साहिजादे कुं न्हलाइ 'कै' कपड़े पिन्हाइ (१०), कुतुबुदीन नवल का एक ब्याह 'ढूंढि' कै पैदा करो (१२), 'ढूंढि' करि पैदा करौ (१२), येह मेलि 'करि करि' घोड़े के गले मौं बांधीए (१४), कुतुब० षाणा पाय 'करि' बाहरि आया (१५), दुसरा घोड़ा फेरि 'करि' उस ही रौस का आया (१५)।

मिश्र क्रिया

असवार 'हुवा न जाय' (३), 'करणै लागा' (४), 'करने लागे' (७), 'करनै लागे' (७), 'करणै लागे' (७), पातसाह 'लागे पूछणै' (११), हरम पातिसाह 'कहणै लागै' (१२), 'ब्याही देगा' (१२), 'राण्या चाहिए' (१२), 'जाणै न पावै' (१३), 'करणै न पावै' (१२), 'लेणै न पावै' (१४, १४), एक दोइ नग 'लगे रहै' (१४), रास 'होणै लागा' 'लगने न पावै' (१६)।

अव्यय : अवधारण वाचक

-औ, -औं : तसबी पातिसाह 'चारचौ' पहर आदि करै (४), 'च्यारौ' ही हकीकति पैदा हुई (६)।

ई : 'सोई' नाम पूव (११)।

च : तिस पर अभ्मात 'च' लीपीए (१४)।

तौं : अव 'तौं' लापौ (९), अलह 'तौं' इससे भी आले आले देगा (१२)।

ही : च्यारौ 'ही' हकीकति पैदा हुई (६), पहलै 'ही' पेट रहै (७), दौडी 'ही' आई (७), हमारे फाल मैं भी या'ही' नाम है (११), जो पावै तिस 'ही' का (१४), किस 'ही' के हाथ से.... (१४), जंगल का 'ही' जनावर जंगल का 'ही' दरप्त जंगल का 'ही' देपै (१६), पवन भी लगै मु जंगल की 'ही' लगै (१६)।

भी : ए उलमा 'भी' अपनां फाल देपौ (११), हजरति 'भी' अपना फाल देपौ (११), तव पातसाह नै 'भी' फाल देखा (११), तव पातसाह कौं 'भी' नजरि आया (११), हमारे फाल मैं 'भी' याही नाम है (११), तौ 'भी' किसी वात की कमी नाही (१२)।

अव्यय : स्थिति वाचक

उरि : पाव 'उरि' करै (४)।

नीचा : सिर 'नीचा' रखै (४)।

औधे : पातस्याह 'औवे' लटकै (४)।

पहलै, : 'पहलै' ही एक अवल फरज्यंद का पेट रहै (७)।

आगै : तव पातसाह की नजरि 'आगै' रापा (१०)।

अवलि : कि 'अवलि' पातिसाह वोल्यो (११), पै 'अवलि' व्याह....तहां करैगे (१२), कुतुव० को 'अवलि' तही व्याहैगे (१२), 'अवलि' पुरानवाला वोला (१५)।

पीछ : 'पीछै' व्याह और वहुतेरेक रंगे (१२), 'पीछै' खाल काढूंगा (१३)।

उपरांति : सौ मुहुर 'उपरांति'....(१३)।

अव्यय : स्थानवाचक

तहां : पै अवलि व्याह 'तहां' करैगे (१२), अवलि 'तही' व्याहैगे (१२)।

जहां : 'जहां' लड़िकी सुरति जमाल होइगी (१२), 'जहां' तक पूव व्याह '' पैदा करौं (१२)।

कहां : तौ फहीम 'कहा (कहां) पाईएगी (१२), अर फहीम पाईएगी तौ पप 'कहां' पाईएगी (१२)।

अनंत : पै साहिजादा 'अनंत' जाणै न पावै (१३)।

अव्यय : कालवाचक

यो : 'यो' गिणी पाणी की घुटं (१५)।

हमेसौं : एक सै सौ व्याह 'हमेसां' करै (१२)।

फेरि : पातसाह कौं 'फेरि' जवांनी चढी (५), दिल्ली आइ 'फेरि' पातसाह पुदाइ की वंदिगी करने लागे (७), 'फेरि' पेटि उमेद रहै (७), साहिजादा 'फेरि' माहीनेका होई (१०), 'फेरि'.... (१२, १३, १४, १५)।

तव : 'तव' पलको सौ रेस के डोरे लगे रहैं (२), 'तव' पातिसाह तपत आइ वैठे (२), 'तव' पातिसाहिको नजरि आवै (२), 'तव' सिकार सौं वहुत प्यास पातसाह का रहै (३), 'तव' सिकार कांहे की देषीयै (३), 'तव' गिलम ऊपर....(३), 'तव' मकडी माप्यौं पर छोडिए (३), 'तव' पातिसाह वहुत पुसियाली होय (३), 'तव' ऐसी मकडीकी सिकार देषै (३), 'तव' साहिव मिहरवान हुवा (४), 'तव' पातिसाह की नजरि आगै रापा (१०), 'तव', नजरि करिए (१०), 'तव' पंडितो अपणा सास्त्र देप्या (११), 'तव' साहिजादा कुतव....नाम नजरि आया (११), 'तव' हम कहैंगे (११), 'तव' पातसाहनै भी फाल देपा (१), 'तव' ताई पंडित व उलमा वोले नाही (११), 'तव' पंडित उलमा व वोले (११), 'तव'....(१२, १२, १२, १२, १२, १३, १३)।

जव : 'जव' किसीहु उमरावका काम होला होय....(२), 'जव' जिसकी हाथ....(१)।

अव, व : तू 'व' मांग (८), 'अव' तो लापी (९), 'अव' मोती छाडीयै है (९)।

अव्यय : रीतिवाचक

ज्यौं, जौं : 'ज्यौं' रंगरेज चूनडी कौं वंद देता है (२), 'ज्यौं' हिरण चीता कौं पकडै (३), नग 'जौं' हार पिरोए (१४)।

यौं : अपत काजी 'यौं' पढ़ै (५)।

क्यौं : दाई 'क्यौं' आई (७), 'क्यौं' यारी 'क्यौं' वोलते नाही (११, ११), एक व्याह का नांव 'क्यौं' लीया (१२, १२)।

सैं : सेहुरा 'सै' वांधि परणनै को असवार हुवा (५)।

अव्यय : संयोजक

या : 'या' मुसकलि 'या' सान सांव अलाह ते होइगी (१२)।

परि, पैं, पै, पर : 'पर' मुमकलिसौ पैदा होहिगे (१२), 'पै' कुतुब० पूत जतन सौ राष्या चाहिए (१२), 'पै' साहिजादा अनंत जाणै न पावै (१३), 'पै' घोड़ै असवार हुवा न जाय (३), 'परि' असल ' कोई नही (४), 'पै' तू दे (५), 'पै' अवलि व्याह ··(१२)।

तौ : होइ 'तौ' भला (४), 'तौ' विछा आवै (६), 'तौ'····(१२, १२, १२, १३)।

जु, ज : 'ज' मेरे च्यारि वेटे (४), किस वासतै 'जु' मेरे च्यारि वेटे··· (१६), दुनियां की वतास····न लागनै पावै 'जु' दुनियाका जनावर····नजरि न आवै (१६)।

सु, सो : 'सु' वीवी विवानां सुरति जमाल (६), 'सो' ऐसी मकड़ी (३), 'सो' किस रौस वकसिए (१४)।

अर : 'अर' च्यारी पहर····होय (४), 'अर' फहीम पाईएगी (१२)।

कि : 'कि'····(६, ७, ८, १०, १०, ११, ११, ११, ११, ११, ११, ११, १२, १२, १२, १३)।

अव्यय : स्वीकार-निषेधवाचक

हां : 'हां (११)।

न, ना, नही, नांह, नाही : कोई 'नही' (४), वदी करी 'नांह' (८), 'ना' (११), पंडित कहते 'नाही' (११), पंडित कहते नाही (११), वोले 'नाही' (११), किसी वातकी कमी 'नाही' (१२), 'न' पावै (१४), कुदरत नाही (१४),।

मत : साहिजादै को कोई 'मत' पूछियौ (१३)।



तुलनात्मक विवेचन

विशेष : कु० = कुतवशतक; वा० = कु० की वार्त्तिक टीका (जिसकी प्रति सं० १७२२ की है)।

संज्ञा : एकवचन पु० (अविकृत रूप)

कु० तथा वा० दोनोंमें शब्द अपने प्रत्ययहीन रूपमें प्रयुक्त हुए मिलते हैं।

कु० में कहीं-कहीं पर अकारान्त शब्दोंके साथ स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें -उ प्रयुक्त मिलता है, यद्यपि केवल कर्त्ता और कर्म कारकोंमें। वा० में यह नहीं है।

कु० में केवल पद्योंमें—और वह भी दो-चार स्थानोंपर—अकारान्त शब्दोंमें -आं। आंह स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें लगा मिलता है। वा० में यह भी नहीं है। हो सकता है कि पद्य उसमें नहीं आते हैं, इसलिए यह प्रत्यय उसमें न मिलता हो। कु० में यह प्रत्यय स्त्रीलिंगमें भी इसी प्रकार मिलता है।

कु० में केवल पद्योंमें कहीं-कहीं पर — इयां भी स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें लगा हुआ मिलता है। वा० में यह नहीं है। वा० में कोई पद्य नहीं आता है, इसीलिए सम्भव है यह प्रत्यय भी न मिलता हो।

संज्ञा : एकवचन स्त्री० (अविकृत रूप)

कु० तथा वा० दोनोंमें शब्द अपने प्रत्ययहीन रूपमें प्रयुक्त हुए मिलते हैं।

कु० में अकारान्त शब्दोंके साथ स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें — इयां और ईकारान्त शब्दोंके साथ उसी प्रकार — आ। आंह जुड़ा हुआ मिलता है। वा० में यह नहीं है।

संज्ञा : बहुवचन पु० (अविकृत रूप)

कु० में अकारान्त शब्दोंका बहुवचन —आ। आं लगाकर बनाया गया है। दक्खिनी हिन्दीमें प्रत्यय केवल —आं मिलता है, —आ नहीं। इसलिए यह असम्भव नहीं है कि कु० में भी प्रत्यय —आं ही हो, जिसका अनुनासिकका बिन्दु प्रति-लिपि-क्रियामें भूलसे छूट गया हो। वा० में यह प्रत्यय नहीं मिलता है।

कु० मे कभी-कभी अकारान्त शब्दोंका बहुवचन –ह प्रत्यय लगाकर भी बनाया गया मिलता है।

अकारान्त फ़ारसी शब्दोंका बहुवचन कु० तथा वा० दोनोमे कभी-कभी –आन प्रत्यय लगाकर बनाया गया है।

आकारान्त शब्दोका बहुवचन दोनो कु० तथा वा० में –आ के स्थानपर –ए रखकर बनाया गया है।

बहुवचनके लिए एकवचन रूपका प्रयोग कहीं-कही पर कु० तथा वा० दोनोमें मिलता है।

संज्ञा : बहुवचन स्त्री० (अविकृत रूप)

कु० मे अकारान्त शब्दोंके बहुवचन –या। यां लगाकर बनाये गये हैं। वा० मे इसके उदाहरण नही हैं। दक्खिनीमे –या नहीं मिलता है –यां ही मिलता है, इसलिए असम्भव नही है कि कु० में भी प्रत्यय –यां रहा हो, जिसका विन्दु प्रतिलिपि क्रियामें कहीं-कही पर छूट गया हो।

इसी प्रकार कु० मे अकारान्त शब्दोंके बहु० –इयां। –इया लगाकर भी बनाये गये हैं, जो वा० मे नही हैं। दक्खिनीमे –इया के उदाहरण नही मिलते हैं, –इयां के ही मिलते हैं। इसलिए असम्भव नहीं है कि कु० मे भी प्रत्यय –इयां ही रहा हो, जिसका विन्दु प्रतिलिपि-क्रियामें कही-कही पर छूट गया हो।

कु० में कहीं-कही पर अकारान्त शब्दोके बहुवचन –इं लगाकर भी बनाये गये हैं। वा० मे इसके उदाहरण नही हैं। यही –इं बादमे –एं के रूपमें विकसित हुआ है।

वा० में अकारान्त शब्दके बहु० –ओ। ओं लगाकर बनाये गये हैं, जो कि कु० में नही है। यह परवर्ती –ओं से तुलनीय है।

कु० तथा वा० दोनोंमें इकारान्त। ईकारान्त शब्दोंके बहुवचन –यां जोड़कर बनाये गये है।

कु० में पद्योंमे ही कभी-कभी –इ। ईकारान्त शब्दोके बहुवचन –यां के बाद स्वार्थिक –ह और जोड़कर बनाये गये हैं। वा० में इसके उदाहरण भी नहीं हैं।

कु० तथा वा० दोनोंमे कभी-कभी बहुवचनके स्थानपर एकवचनका ही प्रयोग हुआ है।

संज्ञा : एकवचन (विकृत रूप)

कु० तथा वा० दोनोमें आकारान्त पु० शब्दोंका –आ कहीं-कही पर –अइ। ऐ मे परिवर्तित हुआ है, अथवा कु० तथा वा दोनोमें यह –आ। –ए में परिवर्तित हुआ है। इन दोनोंमें से –अइ। ऐ प्रयोग प्राचीनतर लगता है, जो घिसकर पीछे –ए हो गया। फारसी-अरबी लिपिमे तीनों ध्वनियोके एक प्रकारसे लिखे जानेके कारण पुरानी दक्खिनीसे इस समस्यापर कोई प्रकाश नही पड़ता है, क्योकि पुरानी दक्खिनीकी समस्त रचनाएँ फ़ारसी-अरबी लिपिमे मिलती हैं।

कभी-कभी दोनोमें आकारान्त शब्द प्रत्ययहीन रूपमे ही प्रयुक्त हुए हैं।

विकृत रूप-निर्माणको यह प्रवृत्ति दोनोंमें आकारान्त शब्दों तक ही सीमित है।

संज्ञा : वहुवचन (विकृतरूप)

कु० मे अकारान्त पु० शब्दोंका वहुवचन –आ। आं लगाकर वना है। वा० में –आ ही प्रयुक्त हुआ है। दक्खिनीमें भी –आं का ही प्रयोग मिलता है। इसलिए यह ज्ञात होता है कि कु० मे भी –आं का ही प्रयोग हुआ होगा, जिसका अनुनासिकका विन्दु प्रतिलिपि-क्रियामे छूटकर निकल गया होगा।

कु० मे अकारान्त पु० शब्दोंका वहुवचन कही-कहीं पर –ह। हु जोड़कर वनाया गया है। कु० की यह प्रवृत्ति वहुवचनके अविकृत रूप-निर्माणमें भी ऊपर देखी जा चुकी है।

कु० में अकारान्त स्त्री० शब्दोके वहुवचनके उदाहरण नही हैं। वा० में स्त्री० अकारान्त शब्दोमे एं। ओ जोडकर विकृत रूप वनाये गये हैं।

कु० मे इ। ईकारान्त शब्दोमें –न। नु लगाकर विकृत रूप वनाये गये हैं, जवकि वा० में –यौं लगाकर वनाये गये हैं। दक्खिनीमे वे –न तथा –यों दोनों लगाकर वने हैं।

संज्ञा : लिंग निर्माण

पु० अकारान्त। आकारान्त शब्दोंके स्त्री० कु० तथा वा० दोनोमे –अ। आ के स्थानपर –ई लगाकर वनाये गये है।

कु० मे इकारान्त। ईकारान्त शब्दोके स्त्री कभी इकार। ईकारको अकार-मे परिवर्तित कर और कभी उन्हे विना परिवर्तित किये नि। नी। न जोड़कर वनाये गये है। वा० में इसके कोई उदाहरण नही है। दक्खिनीमे भी दोनों प्रकारसे स्त्रीलिंग-निर्माण हुआ है।

संज्ञा : प्रथमा विभक्ति

कु० में एकवचन तथा बहुवचन अकारान्त । आकारान्त शब्दोंकी प्रथमा-की विभक्ति –इ । ई है, ईकारान्त शब्दोंमें भी यही विभक्ति लगी है, केवल कहीं-कहींपर आकारान्त शब्दोंमें इसके स्थानपर –ए । एं की विभक्ति लगी मिलती है । वा० में ये विभक्तियाँ नहीं मिलती हैं । केवल एक स्थानपर उसमें अकर्मक क्रियाके साथ अकारान्त स्त्री० शब्दके आकारको –ऐ में परिवर्तित कर विभक्ति युक्त रूप बनाया गया है, अन्यथा वा० में सर्वत्र इस कार्यके लिए विकृत रूपके साथ नै । नैं परसर्गका प्रयोग हुआ है । दक्खिनीमें 'ने' का ही प्रयोग मिलता है, जो नै । नैं का घिसा हुआ रूप ज्ञात होता है । अनेक विद्वानोंकी धारणा है कि खड़ी बोलीमें नै । ने का प्रयोग बादमें प्रचलित हुआ, पहले नहीं था । कु० से इस धारणाका समर्थन होता है । –इ । ई, –ऐ । ऐं, ए । एं में-से अधिक प्रामाणिक कदाचित् सानुनासिक बिन्दु युक्त रूप है, जिसका बिन्दु प्रति-लिपि-क्रियामें छूट गया है । इनमें-से अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन –इ । इ रूप लगता है जो कि क्रमशः ए । ऐं ए । एं में बदल गया है ।

कु० तथा वा० दोनोंमें एकवचन तथा बहुवचनमें विभक्ति युक्त अर्थोंमें निर्विभक्तिक रूप प्रयुक्त हुआ है । दक्खिनीमें भी यह प्रवृत्ति मिलती है ।

द्वितीया विभक्ति

कु० में द्वितीयाकी दो प्रकारकी विभक्तियाँ मिलती हैं : एक० । बहु० में –कुं, और एक वचनमें –नु तथा बहुवचनमें –नइ । वा० में –कौं । को मिलती है । केवल एक स्थानपर उसमें –कै विभक्ति भी मिलती है । दक्खिनीमें भी –कुं । कूं विभक्ति ही मिलती है । अतः –कौं । को –कुं । कूं का ही परवर्ती रूप ज्ञात होती है । –न और –नइके प्रयोग अब केवल पंजाबी तथा राज-स्थानीमें रह गये हैं । ऊपर हमने देखा है कि कु० में –नै । नैं परसर्गोंका प्रयोग प्रथमामें नहीं मिलता है । इसलिए यह असम्भव नहीं है कि पुरानी खड़ी बोलीमें द्वितीयामें एक० –नु और बहुवचन –नइ का ही प्रयोग रहा हो, जिसका स्थान क्रमशः ब्रज० –कुं । कूं, और –कौं । कौ ने ले लिया हो जब उसमें –नैं । नै का प्रयोग प्रथमामें होने लगा हो ।

तृतीया विभक्ति

कु० में दो कुलोंकी विभक्तियाँ मिलती हैं : –स कुलकी –सुं । सूं । सौं तथा –थ । त कुलकी –थी । ती तथा –तइं । तइ । वा० में –स कुलकी –सौं

विभक्ति ही सामान्यतः प्रयुक्त हुई है, केवल एक स्थानपर –त कुलकी –ते प्रयुक्त हुई है। दक्खिनीमे भी दोनों कुलोंकी –सूं। से तथा –थें। थे और –तें। ते प्रयुक्त मिलती हैं।

कु० मे कहीं-कहीं अकारान्त शब्दोंका अकार –ए मे बदलकर ही तृतीयाका काम लिया गया है। वा० में यह नहीं है।

विभक्ति युक्त अर्थोंमे निर्विभक्तिक प्रयोग कु० तथा वा० दोनोंमें मिलते हैं।

चतुर्थी विभक्ति

कु० में चतुर्थीकी विभक्तियाँ –कुं और –कुं ताई हैं जो शब्दोंके अविकृत रूपके साथ लगी हैं, वा० में वे –कुं तथा –कौ हैं। दक्खिनीमें –कूं। को तथा –तइं। ताईं विभक्तियाँ मिलती हैं। –कौ और –को। –कुं के परवर्ती विकास ज्ञात होते हैं।

कु० में क्रियार्थक संज्ञाओंको –आ>–अइ युक्त विकृत रूप मात्रमें प्रयुक्त किया गया है। आधुनिक –ए रूप इसीका विकास है।

पंचमी विभक्ति

कु० में पंचमीके लिए –हतइं। हनइ परसर्गका प्रयोग हुआ है, जो वा० और दक्खिनीमें नहीं है। 'त' परिवारकी –तइ तथा –थी भी कु० में पायी जाती है, जो कि तृतीयाकी –तइ और –थी से अभिन्न लगती हैं। वा० मे इनमे-से –थी ही मिलती है। दक्खिनीमें भी –थी की समानान्तर थे। थे है, यद्यपि यह असम्भव नहीं है कि पुरानी दक्खिनीमे वह –थी ही रही हो, और क्योंकि फ़ारसी लिपिमे –थी तथा –थे एक ही प्रकारसे लिखे जाते थे, इसलिए –थी को भी –थे पढ़ लिया गया हो। –तइ और –थी –हतइं। हतइ से विकसित ज्ञात होते हैं।

वा० में 'स' परिवारकी –सौं भी प्रयुक्त हुई है, जो कि तृतीयाके –सौं से तुलनीय है। कु० में यह नही है। दक्खिनीमे यह –सूं के रूपमें जिस प्रकार तृतीयामे पायी जाती है, उसी प्रकार पंचमीमें भी।

कु० में एक स्थानपर विभक्तियुक्त अर्थमे निर्विभक्तिक प्रयोग भी मिलता है।

षष्ठी विभक्ति

कु० तथा वा० मे षष्ठीकी विभक्तियाँ 'का' परिवारकी है। केवल कु० के पद्योमें –हंदा परिवारकी विभक्तियाँ भी प्रयुक्त हुई हैं, जो न वा० मे मिलती है

और न दक्खिनीमें। यह 'हंदा' उस प्राचीनतर भाषा रूपका अवशेष प्रतीत होता है जिससे पंजाबी और खड़ी बोलीके समान तत्त्व विकसित हुए होंगे। पंजाबीमें यह –दा के रूपमें अभीतक सुरक्षित है। इस –हंदा का प्रयोग उस खड़ी बोली कवितामें भी बहुतायतसे मिलता है जो राजस्थानमें बहुत पीछे तक रची गयी है।

कु० में –का का विकृत रूप –कइ। के है, वा० में –कैं। कै। के है, दक्खिनीमें –के मात्र है। ऐसा ज्ञात होता है कि विकासका क्रम कइ—>कैं। कै—>के है।

कु० में स्त्री० बहु० मे –कीया। क्यां विभक्ति है, दक्खिनीमें भी –कियां के रूपमें मिलती है। वा० मे –की का ही प्रयोग स्त्री० बहु० में भी हुआ है, जैसा आधुनिक खड़ी बोलीमें मिलता है। वा० की यह प्रवृत्ति कु० की तुलनामें परवर्ती ज्ञात होती है।

कु० में एक स्थानपर –हि विभक्तिका भी प्रयोग मिलता है, जो न वा० में है और न दक्खिनी मे। यह –हि अवधारण वाची अव्यय भी हो सकता है, उक्त उदाहरणमे ऐसा ज्ञात होता है, इसलिए यह विभक्तिके रूपमें सन्दिग्ध है।

कु० तथा वा० दोनोंमें विभक्तियुक्त अर्थोंमे निर्विभक्तिक प्रयोग भी मिलते हैं। दक्खिनीमें इनकी स्थिति ज्ञात नहीं है।

सप्तमी विभक्ति

कु० में अकारान्त शब्दोंका सप्तमीयुक्त रूप अकारको –इ। अइ में परिवर्तित करके बनाया गया है। वा० में यह विभक्ति –इ। –ऐ। –ऍं के रूपमें मिलती है। दक्खिनीमें सर्वत्र –ए का प्रयोग हुआ है। विकास क्रम कदाचित् है –अइ—>-ऐ। –ऍं—>ए। पुरानी दक्खिनीमें भी यदि –अइ रहा हो और उसे फारसी लिपिमें लिखे जानेके कारण –ए पढ़ा गया हो, तो आश्चर्य न होगा।

कु० में आकारान्तका एक ही उदाहरण मिलता है और वह पद्यमें है। उसमें –आ –ए मे परिवर्तित हो गया है और उसके अनन्तर –ह स्वार्थिक लगा दिया गया है। वा० में आकारान्त शब्दोंके उदाहरण नहीं हैं।

कु० में कभी-कभी अकारान्त। आकारान्त शब्दोंको हकारान्त करके उनमे –आं का स्वार्थिक प्रत्यय भी लगाया गया है। वा० में इसके उदाहरण नहीं हैं।

इनके अतिरिक्त कु० और वा० दोनोमें 'मे' और 'पर' परिवारोके परसर्ग पाये जाते हैं। कु० में –में परिवारके परसर्ग हैं –मइ। मि। मै तथा महि। मंहि। माहि; वा० में इस परिवारके परसर्ग है –मै। मैं। मे तथा मही। इनके अतिरिक्त वा० में –मो। मौ। भी मिलते हैं। दक्खिनीमे उपर्युक्त परसर्गोमें-से –मे तथा मंह। मांही हैं। प्रथमके विकासका क्रम ज्ञात होता है –मइ—>मै। मैं—>में। मो। मौ का आगमन व्रजभाषाके प्रभावसे हुआ ज्ञात होता है।

कु० मे 'पर' परिवारके परसर्ग हैं –परि। पइ तथा उप्परइ। उप्परि। उप्पर। वा० मे हैं –पर तथा –ऊपर मात्र। दक्खिनीमे भी –पर तथा –ऊपर ही मिलते हैं। विकासका क्रम कदाचित् है –परि—>पर तथा उप्परइ। उप्परि—>उप्पर—>ऊपर।

विभक्ति-युक्त अर्थोमें निर्विभक्तिक प्रयोग कु० तथा वा० में समान रूपसे पाये जाते हैं। दक्खिनीमे भी ये मिलते है।

संबोधन विभक्ति

आकारान्त एक० शब्दोंके विभक्ति-युक्त उदाहरण नही है। वा० में अकारान्त बहु० शब्द ओकारान्त हो गये हैं। कु० मे उनमे – आन जुड गया है, जो फारसीसे आया हुआ लगता है। आकारान्त शब्द कु० तथा वा० दोनों-में एकारान्त हो गये हैं।

स्वतन्त्र संबोधनात्मक अव्ययोके रूपमे कु० मे प्रयुक्त हैं पु०। स्त्री० मे 'अवे'। 'वे' तथा स्त्री० मे 'रि'। वा० मे प्रयुक्त है 'ए'। दक्खिनीमे 'रि' का पु० 'रे' है और 'ऐ' के रूपमें 'ए' है। 'अवे'। 'वे' फ़ारसीसे आये हैं। 'ए' तथा 'ऐ' मे प्राचीनतर 'ए' लगता है जो आकारान्त शब्दोके –आपके स्थान-पर आता है। पुरानी दक्खिनीमे भी यदि 'ए' ही रहा हो, जिसे फ़ारसी-अरबी लिपिके कारण 'ऐ' पढ़ा गया हो, तो आश्चर्य न होगा।

शब्दोके निर्विभक्तिक रूप भी कु० तथा वा० दोनोमे प्रयुक्त हुए हैं।

मिश्र विभक्तियाँ

कु० में कहीं-कहीपर मिश्र विभक्तियोके भी उदाहरण मिलते है; वा० में ऐसे उदाहरण नही है।

कु० में कर्ता एक० मे कर्तृवाच्यका 'हूं' तथा कर्मवाच्यका 'मइ। मइं' दोनों मिलते हैं, वा० मे केवल 'मैं' का प्रयोग मिलता है। दक्खिनीमें भी 'मइं। मैं' ही मिलता है। 'हूं' की परम्परा प्राकृत और अपभ्रंशकी है और प्राचीनतर है। कर्मवाच्यके रूपोंमे विसास-क्रम कदाचित् होगा 'मइ'—>'मइं'—> 'मैं'। पुरानी दक्खिनीमें यदि 'मइं' ही रहा हो, 'मैं' न रहा हो, तो आश्चर्य न होगा, क्योकि फ़ारसी-अरवी लिपिमें दोनो एक ही प्रकारसे लिखे जाते हैं।

कु० मे एक० के कर्म—सम्प्रदानके रूप हैं 'मुझइ' तथा 'मेरे कुं'। वा० में इसके उदाहरण नही हैं। दक्खिनीमे ये 'मुझे' तथा 'मेरे कूं' रूपमे मिलते हैं। पुरानी दक्खिनीमें भी ये यदि 'मुझइ' और 'मेरे कुं' रहे हो तो आश्चर्य नहीं होगा क्योकि ये भी फ़ारसी-अरवी लिपिमें उसी प्रकार लिखे जाते हैं जैसे 'मुझे' और 'मेरे कू'। विकास-क्रम कदाचित् है 'मुझइ'—>'मुझे'!

कु० में एक० सम्वन्वका रूप एक० विशेष्यके साथ है 'मेरइं' तथा वहु० विशेष्यके साथ है 'मेरे'। वा० मे केवल वहु० विशेष्यके साथका 'मेरे' रूप मिलता है। दक्खिनीमें भी 'मेरे' रूप ही मिलता है। या तो यह है कि एक० और वहु० विशेष्यका यह अन्तर पहले प्रचलित था, वादमें उठ गया और या तो यह है कि दोनोका कार्य एक ही है, उनमे केवल रूप-भेद है। यदि पिछला अनुमान सही हो तो विकास-क्रम कदाचित् होगा 'मेरइं'—>'मेरे'। दक्खिनीमें जो 'मेरे' है, असम्भव नही कि वह 'मेरइ' रहा हो और फ़ारसी-अरबीमें दोनोंके एक प्रकारसे लिखे जानेके कारण 'मेरे' पढ़ा गया हो।

कु० मे एक० सम्वन्धमे 'मैं' के विकृत रूप 'मुज्झ' तथा 'मो' विना किसी विभक्तिके भी मिलते हैं, जो वा० मे नही है। दक्खिनीमे 'मुझ'। 'मुंज' मिलता है 'मो' नही। 'मो' का यह प्रयोग व्रजभाषा साहित्यमें ही अव मिलता है। कु० मे ये दोनों प्रयोग केवल पद्यो तक सीमित हैं और हो सकता है कि प्राचीनतर भाषा—परम्पराके अवशेष-मात्र हों।

वहु० मे कु० तथा वा० दोनोमें 'हम' के रूप मिलते हैं। अविकृत रूप 'हम' दोनोमे कर्त्ता० और कर्म० के लिए मिलता है। कर्त्ता० के विकृत रूपके लिए कु० मे 'हमइं' मिलता है, जो संज्ञाके समानान्तर रूपसे तुलनीय है। वा० तथा दक्खिनीमे —'इं' युक्त यह रूप नही मिलता है। कर्म० का विकृत रूप कु० मे नही मिलता है, वा० में वह है 'हमकों', जो दक्खिनीके 'हमन कूं'

से तुलनीय है। सम्बन्धका एक० रूप कु० तथा वा० दोनोंमे पुं० 'हमारा' स्त्री० 'हमारी' है, जिसमें विशेष्य एकवचन रहता है, और 'हमारा' का बहुवचन रूप कु० में 'हमारे' है, जिसमे विशेष्य बहु० रहता है। वा० में इसका उदाहरण नहीं है। इसी प्रकार वा० में 'हमारा' का विकृत रूप 'हमारे' है, जिसका उदाहरण कु० में नही है। दक्खिनीमे भी ये सभी रूप मिलते हैं, और इनके सम्बन्धमें कोई अन्तर उसमे भी नही है। विकासका क्रम होगा 'हमइं'—>'हमे'।

सर्वनाम : मध्यम पुरुष

कु० में एक० अविकृत कर्त्ताका रूप 'तुं। तूं। तू' है, वा० में केवल 'तू' है, दक्खिनीमे 'तूं। तू' है। 'तुं' तथा 'तूं' फारसी-अरबी लिपिमें एक ही प्रकारसे लिखे जाते हैं, इसलिए यदि पुरानी दक्खिनीमे भी 'तु' और 'तू' दोनो रूप प्रचलित रहे हों तो आश्चर्य न होगा। विकासका क्रम कदाचित् होगा 'तुं'—>'तूं'—>'तू'।

एक० विकृत कर्त्ता० का रूप कु० मे 'तइ। तइं' है। वा० में इसका उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमे इसके स्थानपर 'तूने' प्रयुक्त होता है। 'तइं' तुलनीय है ऊपर आये हुए 'हमइं' तथा संज्ञाके समानान्तर रूपसे। असम्भव नही कि 'तइ' रूप कु० में 'तइं' के बिन्दुके प्रतिलिपि-क्रियामें छूट जानेके कारण मिलता हो। यही 'तइं' बादमें 'तैं' के रूपमें विकसित हुआ है।

एक० सम्बन्धके रूप कु० मे 'तेरा' और 'तुझ' हैं, जो इसी प्रकार दक्खिनीमें भी हैं। वा० मे इनके उदाहरण नही हैं।

बहु० अविकृत कर्त्ताका रूप कु० मे 'तुमह' है। वा० में इसका उदाहरण नही है। दक्खिनीका 'तुम्ह' इसीसे विकसित प्रतीत होता है।

बहु० विकृत कर्त्ताका कोई उदाहरण कु० मे नही है। वा० में इसके लिए 'तुम' का प्रयोग हुआ है। दक्खिनीमे इसके लिए 'तुमने' मिलता है।

बहु० सम्बन्धका कोई उदाहरण कु० मे नही है। वा० में इसका विकृत रूप 'तुमारे। तुम्हारे' मिलता है। दक्खिनीमे भी 'तुमारा। तुम्हारा' अविकृत बहु० सम्बन्धका रूप है।

सर्वनाम। विशेषण : निकटवर्त्ती निश्चयवाचक

कु० मे पु० एक० अविकृतका रूप 'इह' तथा स्त्री० एक० अविकृतका रूप 'अइ' है। वा० में पु०। स्त्री० एक० अविकृतका रूप 'यह। याह। य'

है। दक्खिनीमें 'ई' तथा 'यै' क्रमशः 'इह' तथा 'यह' से तुलनीय है, यद्यपि दक्खिनीके इन रूपोंका आधार लिंग-भेद नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि लिंग-भेद पहले था, जो धीरे-धीरे इस सर्व० में घिसकर निकल गया।

कु० में पु० एक० विकृतका रूप 'इहि' है, वा० में पु० । स्त्री० का 'इस'। दक्खिनीमें भी वह 'इस' है।

कु० में पु० बहु० अविकृतका रूप 'ए' है। वा० में पु० । स्त्री० का 'ए' है, और दक्खिनीमे भी वह 'ए' है।

कु० मे पु० बहु० विकृतका रूप 'एण' है। वा० मे इसका उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमे 'इन' है जो 'एण' से तुलनीय है। विकासका क्रम 'एण'—>'इन' प्रतीत होता है।

सर्वनाम । विशेषण : दूरवर्त्ती निश्चयवाचक

कु० में अविकृत एक० 'ओह' है। वा० मे इसका उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमे 'ओ । वो । वह' है जो 'ओह' से तुलनीय है। विकास-क्रम कदाचित् है 'ओह'—>'ओ । वह।

विकृत एक० कर्म० के लिए कु० में 'वइ' प्रयुक्त है, जो न वा० में है और न दक्खिनीमे। किन्तु यह केवल पद्यमें प्रयुक्त है, इसलिए असम्भव नहीं कि कु० मे पूर्ववर्ती भाषा-परम्परासे आया हो।

वैसे, कु० में सामान्य विकृत एक० 'उस' है, जो इसी प्रकार वा० तथा दक्खिनीमे भी मिलता है।

कु० में उपर्युक्तके अतिरिक्त त-परिवारके भी रूप मिलते हैं। एक० कर्त्ता (विकृत) उसमे है 'तिणि', कर्म० है 'ताहिं', करण० है 'तिस -सु''। बहु० कर्म० विकृतका रूप 'तें' और सम्बन्धका स्त्री० 'तिन्ही' है। वा० में एक० कर्त्ता० (विकृत) 'तिन' है। जो कु० के 'तिणि' से विकसित है। शेष समस्त कारकोंके लिए एक० विकृत रूप 'तिस' है। बहु० विकृत रूप 'तिन्ह । तिन्हों' है, जो विभक्तियोंके साथ विभिन्न कारकोमें प्रयुक्त हुआ है।

कु० तथा वा० में स-परिवारके भी रूप मिलते हैं, किन्तु वे सबके सब एक० अविकृतके हैं। कु० मे ये 'सा । स । सो । सु' हैं। वा० में ये 'सो । सु' हैं। दक्खिनीमें केवल 'सो' मिलता है।

सर्वनाम : निजवाचक

कु० तथा वा० दोनोंमें निजवाचक सर्वनामके रूपमें 'अप्प । आप' आता है। कु० मे एक० कर्त्ता०/। कर्म० है 'आप । अप्प', सम्बन्ध (अविकृत) पु०

है, 'अप्पाण', और सम्बन्ध (विकृत) पु० है 'अप्पणइ। अपनइ'। वा० में कर्ता० है 'आप', सम्बन्ध० (अविकृत) है 'अपना' और सम्बन्ध (विकृत) हैं पु० 'अप्पणे। आपणे' [तथा स्त्री० 'अपनी']। कु० में बहु० कर्त्ता है 'अप्पा', बहु० सम्बन्ध (अविकृत) है पु० 'अप्पणा', स्त्री० 'आपणी', तथा सम्बन्ध (विकृत) है पु० 'आपणइ'। वा० में बहु० सम्बन्ध (अविकृत) है पु० 'आपणा। आपना' दक्खिनीमें कर्त्ता०–कर्म० 'अपस। अपन। अपना' है। सम्बन्ध० 'अपस। अपस–का–की–के' हैं। विकास-क्रम कदाचित् है 'अप्प'—> 'आप'—>'अपस'; 'अप्पाण'। 'अपन'। 'अपना'—>'आपना'—>'अपस–का–की–के'; 'अप्पणइ'। 'अपनइ'—>'अप्पणे'। 'आपणे'।

सर्वनाम। विशेषण : सम्बन्धवाचक

कु० में विशेषणके रूपमें एक० 'जो। जु। जा' तथा बहु० 'जे' प्रयुक्त हैं। वा० में एक० 'जु' है, बहु० का उदाहरण नही है। दक्खिनीमें एक० जो। जु। ज' तथा बहु० 'जे' (?) हैं। कु० मे सर्व० के रूपमे एक० अविकृत रूप है 'जो' और बहु० अविकृत रूप है 'जे'। वा० मे भी एक० अविकृत रूप 'जो' है, बहु० का उसमे कोई उदाहरण नही है। दक्खिनीमे सर्व० एक० अविकृतके रूपमें 'जो' तथा बहु० अविकृतके रूपमे 'जे' (?) हैं। कु० में सर्व० विकृत एक० कर्त्ता–कर्म० 'जिण'। 'जिणि', सम्बन्ध० पु० 'जिसका'। स्त्री० 'जिसकी' है और विकृत बहु० कर्त्ता० 'जिणइ', कर्म० 'जिणि' है। अन्य कारकोंके उदाहरण नहीं है। वा० में बहु० के उदाहरण नही हैं। दक्खिनीमे बहु० कर्त्ता०। कर्म० अविकृत 'जिन' है, शेष कारकोमे 'जिन' मे विभक्तियाँ जोड़कर रूप बनाये गये हैं। कहनेकी आवश्यकता नही है कि सम्बन्धवाचक वि०। सर्व० के विषयमें कु०, वा० तथा दक्खिनीमें साम्य बहुत है।

सर्व०। वि० : अनिश्चयवाचक

कु० में इसके एक० अविकृत रूप 'कउ। को। के' हैं, एक० विकृत कर्त्ता रूप 'किन' तथा अन्य कारकोमे एक० 'किसऊ–। केहु–' तथा उस कारककी विभक्ति हैं। वा० मे इसका एक० अविकृत रूप 'कोई' तथा विकृत रूप विभिन्न कारकोंमे 'किसी–' तथा उस कारककी विभक्ति है। दक्खिनीमे इसके अविकृत रूप 'को। कोई। कोय' हैं, और विकृत रूप विभिन्न कारकोमे 'किसी–' तथा उस कारककी विभक्ति है। विकास-क्रम कदाचित् 'कउ'—> 'को'—> 'कोय। कोई' तथा 'किन'—> 'किसी ने' बहु० के रूप कु० तथा वा० में नही है।

सर्व० । वि० : प्रश्नवाचक

कु० तथा वा० मे जीववाची प्रश्नवाचक 'कउण' तथा अजीववाची 'क्या' परिवारके हैं। कु० में 'कउण' का एक अविकृत रूप 'कउण । कुण' है, एक० कर्ता० विकृत रूप 'किणि' है, अन्य कारकोके विकृत रूप नहीं मिलते हैं। वा० में एक० अविकृत रूप 'कौंन । कौन' और विकृत रूप 'कौन– । किस–' तथा उस कारककी विभक्ति का है। कु० में 'क्या' का अविकृत रूप 'क्या । कह्या । काइ' हैं। कु० मे विकृत रूप इस सर्व० का नहीं है। वा० में विभिन्न कारकोंमें इसके रूप किस– तथा काहे– के साथ उस कारककी उस विभक्ति के है। दक्खिनीमे ये 'कौन' और 'क्या । का' हैं। 'कौन' का विकृत रूप 'किस–' है जिसमे कारकोके अनुसार विभक्तियाँ लगती हैं, कर्त्ता अविकृतका एक० रूप 'किन' भी है, जो आदरार्थक प्रतीत होता है। विकास-क्रम कदाचित् है 'कउण'—> 'कुण' । 'कौंन' । 'कौन' ।

विशेषण : गुणवाचक

कु० तथा वा० में विशेषण एक० में अपने सामान्य रूपमें प्रयुक्त हैं। आकारान्त विशेषण स्त्री० में इकारान्त हो जाते हैं। वहु० में आकारान्त पु० वि० एकारान्त हो जाते हैं और ईकारान्त स्त्री० वि० 'ईकार' को 'इकार' मे वदलकर 'यां' जोड़ लेते हैं। दक्खिनीमें भी ऐसा ही है। किन्तु कु० मे आकारान्त पु० वि० अकारको –आ । आं मे वदलकर तथा ईकारान्त स्त्री० वि० ईकार को इकार में वदलकर और फिर –यां जोड़कर वहु० रूप वनाते हैं। वा० मे यह नहीं है। दक्खिनीमे यह है। कु० मे पद्योंमें कही-कही पर वहु० रूपके साथ –ह स्वार्थिक भी जुडा मिलता है, जो न वा० में मिलता है और न दक्खिनीमें। वहु० के लिए कभी-कभी एक० का प्रयोग कु०, वा० तथा दक्खिनीमें समान रूपसे मिल जाता है। ऐसा ज्ञात होता है कि –आं अन्त्य पु० वहु० तथा –यां अन्त्य स्त्री० वहु० के रूप खड़ी वोली और पंजावीमें साथ-साथ अवतरित हुए थे, जो पीछे खड़ी वोलीमे-से निकल गये, यद्यपि पंजावीमे वने रह गये।

विशेषण : परिमाणवाचक

कु० में दो प्रकारके परिमाणवाचक वि० हैं : कुछ तो सर्वनामात्मक हैं और कुछ-एक अन्य प्रकारके हैं। सर्वनामात्मक वि० 'इता', 'इती' । 'इतनी', 'उंती', 'कित' और 'एक' हैं, अन्य प्रकारका एक ही है : 'कुछ'। वा० में

प्रथम प्रकारके वि० नहीं हैं। दूसरे प्रकारके वि० हैं : 'कुछ', 'वहुत', 'वड़ा'। दक्खिनीमें दोनों प्रकारोंके पाये जाते हैं।

विशेषण : संख्यावाचक

संख्याएँ अनेक मिलती हैं, जिनमें-से दो विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं : एक तो 'एक' की, और दूसरी 'दो' की। कु० में एक 'एक' के अतिरिक्त 'हेक' तथा पु० 'एक-स' और स्त्री० 'एक-सि' रूपोंमें मिलता है। वा० में वह केवल 'एक' के रूपमें मिलता है। कु० में 'दो' इसी प्रकार 'दो। दुइ। दोइ। वे' रूपोंमें मिलता है। वा० में 'दो। दोई' मात्रके रूपोंमें। दक्खिनीमें भी 'एक' के लिए 'एक' के अतिरिक्त 'एक-स' मिलता है, और 'दो' के लिए 'दो' के अतिरिक्त 'दोइ' मिलता है। 'वे' पूर्ववर्ती अपभ्रंशसे उत्तराधिकारमें प्राप्त हुआ होगा। शेष संख्याओंमें कु०, वा० और दक्खिनी प्रायः समान हैं।

क्रिया

क्रियार्थक संज्ञाएँ कु० तथा वा० दोनोंमें धातु*में –णा। ना लगाकर वनी हैं। वा० में इसके अतिरिक्त वे –ला लगाकर भी वनी हैं। दक्खिनीमें वे –ना लगाकर ही वनी हैं किन्तु पुरानी दक्खिनीमें वे यदि –णा लगाकर वनती रही हों तो आश्चर्य न होगा, क्योंकि फ़ारसी-अरवी लिपियोंमे, जिनमें पुरानी दक्खिनीकी समस्त रचनाएँ उपलब्ध हैं, –णा तथा –ना एक ही प्रकारसे लिखे जाते हैं।

क्रियाओंके प्रेरणार्थक रूप कु० तथा वा० दोनोंमें धातु –आव्। लाव् लगाकर वने हैं। –आव्से जो प्रेरणार्थक रूप वनते हैं, उनका सामान्यभूत रूप –व निकालकर वनता है, इसलिए उनमे –आ मात्र लगे होनेका भ्रम हो सकता है। दक्खिनीमे भी दोनों प्रकारके रूप मिलते हैं।

क्रियाओंके विधिके रूप कु० में प्रच्छन्न 'तू' कर्त्ताके साथ धातुमे –इ। अइ। ए लगाकर अथवा विना कुछ लगाये हुए, प्रच्छन्न 'आप' के साथ –ई (<इय)। ईइं लगाकर और प्रच्छन्न 'तुम' के साथ –उ। अउ। [हु]। अहु। ओ लगाकर वने हैं। वा० में वे प्रच्छन्न 'तू' के साथ विना कुछ लगाये हुए, प्रच्छन्न

* हिन्दुईकी धातुएँ दो प्रकारकी हैं : स्वरान्त तथा व्यंजनान्त। स्वरान्त यथा खा, पी, हो तथा व्यंजनान्त यथा कर्, चल्, रह्। उदाहरणोंमें कभी-कभी एक ही प्रकारकी धातुएँ मिली हैं। उनमें प्रयुक्त प्रत्ययको देते हुए, विवेचनमें वह प्रत्यय भी दिया गया है जो दूसरे प्रकारकी धातुओंमें लगेगा।

'आप' के साथ –इए। यए लगाकर तथा प्रच्छन्न 'तुम' के साथ –ओ। औ। औं (?)। यौ लगाकर बने हैं। वा० में भविष्यत्की विधिका रूप भी मिलता है। उसमें प्रच्छन्न 'तुम' के साथ धातुमें –इयौ लगा हुआ है। अन्य पुरुष विधिका रूप कु० में नहीं है। वा० मे वह एक० में धातुमें –ऐ लगाकर बनाया गया है। इसी प्रकार उसमें आदरार्थक बहु० के साथ धातुमें –अंह लगाकर बनाया गया आशीर्वादात्मक रूप भी मिलता है। दक्खिनीमें प्रच्छन्न 'तू' एक० के साथ धातुमें बिना कुछ लगाये हुए बने विधिका रूप तो मिलता है, अन्य रूपोंके सम्बन्धमें पर्याप्त जानकारी नहीं है।

इन रूपोंमें विकास-क्रम कदाचित् है –इ–> प्रत्ययहीन रूप; –अइ–> –ए; –उ–> –ओ; –अउ–> –औ; –उ–> –हु; –अउ–> –अहु; –ई (<इय)–> – इए। यए; –ईइं–> वर्त्तमान –एं।

कर्मवाच्यके रूप इन रचनाओंमे बहुत विरल हैं। कु० में वे धातुमें – इयइ। ईइ अथवा –इवा लगाकर बनाये गये हैं। वा० मे केवल एक उदाहरण है जो स्त्री० का सामान्य भूतकालका है और धातुमे –ई लगाकर बनाया हुआ है। दक्खिनीमें इनकी स्थितिकी जानकारी यथेष्ट नहीं है।

क्रिया : सामान्य वर्त्तमान काल

कु० में सामान्य वर्त्त० का रूप धातुमें –इ। अइ। ए जोड़कर बनाया गया है, और अनेक स्थलोंपर यह रूप सामान्य भूतके अर्थमे भी प्रयुक्त हुआ है। वा० में धातुमें –ऐ। ए। य जोड़कर यह रूप बनाया गया है, और उसमें भी यह रूप सामान्यभूतके अर्थमें भी प्रयुक्त हुआ है। दक्खिनीकी स्थिति इस विषयमें यथेष्ट रूपसे ज्ञात नहीं है, किन्तु वर्त्तमान साहित्यिक खड़ी बोलीमें यह रूप समाप्त हो गया है, और इसका स्थान वर्त्तमान कृदन्त 'है' ने ले लिया है। यह रूप प्राचीनतर भाषासे उत्तराधिकारमें मिला हुआ था, और व्रजमें अब भी बना हुआ है। विकास-क्रम कदाचित् है –इ। अइ–> –ऐ। –ए। –य।

स्थिति-वाची एक० ह् + अइ = हइ का प्रयोग कु० में तीन प्रकारसे हुआ है : (१) जिसमें किसी वस्तुके होने मात्रका भाव है, (२) जिसमें किसी कार्यके होते होनेका भाव है, तथा (३) जिसमें किसी कार्यके आगे होनेका भाव है। प्रथम प्रकारके प्रयोगमें केवल 'हइ' आता है, द्वितीय प्रकारके प्रयोगमें क्रियाका वर्त्तमान कृदन्तका रूप और 'हइ' आता है, तथा तीसरे प्रकारके प्रयोगमें

क्रियाका क्रियार्थक संज्ञा रूप और 'हइ' आता है। वा० में यह स्थितिवाची क्रिया 'है' के रूपमें आती है। इसमें उपर्युक्त प्रथम दो प्रकारके ही प्रयोग मिलते है, तीसरे प्रकारके नहीं। दक्खिनीमें तीनों प्रकारके प्रयोग मिलते हैं और क्रियाका रूप 'है' है, किन्तु पुरानी दक्खिनीमें वह यदि 'हइ' रहा हो तो आश्चर्य न होगा क्योंकि फ़ारसी-अरबी लिपिमें दोनो एक ही प्रकारसे लिखे जाते है। विकास क्रम होगा 'हइ'—> 'है'।

कु० में एक स्थानपर धातुके प्रत्ययहीन रूपसे ही सामान्य वर्त्तमानका काम लिया गया है। वा० में इसका उदाहरण नही मिलता है। दक्खिनीमे इसकी स्थिति ज्ञात नही है। यह प्रवृत्ति पुरानी अवधी तकमे मिलती है और हो सकता है कि प्राचीनतर भाषा रूपसे पुरानी खड़ी बोलीको भी प्राप्त हुई हो।

कु० मे 'हइ' के स्थानपर एक बार 'अछ्+अए' = 'अछए' का भी प्रयोग हुआ है और पद्यमें एक वार 'अत्थि', 'नत्थि' का। वा० में इनके उदाहरण नही है। दक्खिनीमें 'अछ्' क्रियाका प्रयोग प्रचुर परिमाणमें मिलता है।

कभी-कभी वहु० के लिए एक० [-इ]। अइ तथा ह्+अइ=हइ रूपोंसे कु० तथा वा० दोनोंमें काम लिया गया है। इसके अतिरिक्त धातुके प्रत्ययहीन रूपका प्रयोग कु० में वहु० के लिए भी उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार एक० के लिए। वा० और दक्खिनीमे इनमे-से प्रथम प्रवृत्ति तो मिलती है, दूसरी नहीं।

उत्तमपुरुषके रूप कु० में तो हैं, वा० में नही हैं। कु० मे एक० के रूप धातुके साथ – उं। अउं लगाकर बनाये गये हैं। वे स्थितिवाची 'ह्' धातुकी सहायतासे वर्त्तमान कृदन्त रूपके साथ 'हूं' लगाकर भी बनाये गये हैं। बहु० के रूप धातुमें [–इं]। अइं जोड़कर बनाये गये हैं। दक्खिनीमे –उं। अउं। तथा 'हूं' युक्त रूप एक० में तथा एं युक्त रूप वहु० मे मिलते हैं। विकास-क्रम कदाचित् है –उं (स्वरान्त धातुमे)। अउं—>उं (स्वरान्त तथा व्यंजनान्त दोनोमे) ऊं—>हूं; इं। अइं—>एं। मध्यम पु० के रूप न कु० में हैं और न वा० में।

क्रिया : अपूर्ण वर्त्तमान काल

कु० में ही अपूर्ण वर्त्त० के रूप पाये जाते हैं, वा० में नही। कु० में इसका एक० पु० प्रत्यय –अंदा। हंदा। एक० स्त्री० –अंदी। [हंदी], तथा वहु० पु० –अंदे। [हंदे] है। संस्कृतके—अंति प्रत्ययका प्रयोग भी उसमें अपूर्ण

वर्त्त० के लिए हुआ है, और इस प्रयोगमें लिंग-वचनका भेद नहीं है। ये प्रत्यय दक्खिनीमें नहीं मिलते हैं। कु० में भी ये पद्यों तक ही सीमित हैं। किन्तु गद्यमें अपूर्ण वर्त्त० का कोई अन्य रूप भी नहीं है, इसलिए इन्हें कु० की सामान्य भाषाका अंग माना जा सकता है। अता। [हुंता] प्राचीनतर भाषा रूपसे प्राप्त प्रतीत होते हैं और अब भी पंजाबी, गढ़वाली तथा नेपाली-में थोड़े-बहुत अन्तरके साथ मिलते हैं।

क्रिया : पूर्ण वर्त्तमान काल

कु० तथा वा० दोनोंमें पूर्ण वर्तमानके रूप भूत कृदन्तके साथ 'होना' क्रियाके वर्त्तमानके रूपको लगाकर बनाये गये हैं। कु० में क्रियाका यह रूप ह् + अइ = 'हइ' है और वा० में ह् + ऐ = 'है' है। दक्खिनीमें भी यह 'है' है। कु० में बहु० में भी 'हइ' ही है, जिस प्रकार यह उसमें सामान्य वर्त्त० बहु० में है। वा० में बहु० का उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमें बहु० 'हैं' है। विकास-क्रम होगा हइ—>है।

क्रिया : सम्भाव्य वर्त्तमान काल

कु० में संज्ञा तथा अन्य पु० के सम्भाव्य वर्त्त० के रूप धातुमें –इ। अइ लगाकर बनाये गये हैं, केवल एक स्थानपर –ए लगाया गया है। पुनः कु० में उत्तम पु० एक० के रूप धातुमें –अउं तथा बहु० के रूप धातुमें –अइ लगाकर बने हैं। वा० में अन्य पु० के रूप धातुमें –इ। ई। ऐ। य लगाकर बने हैं, केवल एक स्थानपर –ओ लगाकर उसका रूप बना है। इसके अतिरिक्त वा० में प्रच्छन्न 'आप' के साथ धातुमें –इय। इए। ए लगाकर बने हैं। दक्खिनीमें इनकी स्थिति यथेष्ट रूपसे ज्ञात नहीं है। विकास-क्रम कदाचित् है : –इ। अइ—>ऐ—>ए—>य।

उत्तम पु० के रूप कु० में ही मिलते हैं और वे एक० में धातु में –उं। अउं लगाकर तथा बहु० में –इ। अइ लगाकर बनाये गये हैं। सामान्य वर्त्त० में भी हम ऊपर देख चुके हैं कि इ–। अइ लगाकर ही बहु० के रूप बने हैं। दक्खिनीमें एक० के रूप –ऊं लगाकर तथा बहु० के –एं लगाकर बने हैं। विकास-क्रम कदाचित् है –उं (स्वरान्त धातुओंके लिए)। –अउं—>–उं (स्वरान्त तथा व्यंजनान्त दोनोंके लिए)—>–ऊं; –इ। अइ—>-एं।

मध्यम पु० एक० का रूप कु० में नहीं है। बहु० का रूप कु० में प्रच्छन्न 'तुम' के साथ धातुमें –उ। [अउ] लगाकर बना है। वा० में एक० का रूप

प्रच्छन्न 'आप'के साथ धातुमे –इयै। इए लगाकर बना है, बहु० का उसमें नहीं है। दक्खिनीमें प्रच्छन्न 'तुम'के साथ –ओ युक्त रूप है, और प्रच्छन्न 'आप'के साथ –इए युक्त रूप। विकास-क्रम कदाचित् है –अउ–>ओ; –इये–>–इए।

क्रिया : सामान्य भविष्यत् काल

कु० में संज्ञा तथा अन्य पु० एक० पु० रूप धातुमे –इगा। अइगा अथवा – हिगा। अहिगा लगाकर बने हैं, और बहु० पु० [–इंगे]। अइंगे लगाकर। एक स्थानपर उसमें एक० में –इहइ प्रत्यय भी मिलता है, किन्तु वह पद्यमें है। वा० में एक पु० मे –गा। इगा। अइगा। इएगा, एक० स्त्री० मे –इगी। ईगी। इएगी लगे हैं। बहु० पु० में –हिंगे। [अहिंगे]। ऐंगे है, और बहु० स्त्री० का रूप एक० स्त्री० से अभिन्न है। दक्खिनीमे ये समस्त रूप मिलते हैं : अन्य पु० एक० पु० का प्रत्यय है –एगा, तथा बहु० पु० का –एंगे। एइंगे। आंगे। कु० का –इहइ प्राचीनतर भाषा-रूपका अवशेष है और वह पद्य तक ही सीमित है। ब्रज० मे वह अभीतक सुरक्षित है। विकास-क्रम कदाचित् है : –इगा। अइगा–>–हिगा। अहिगा–>–इएगा। एगा; –इंगे। अइंगे–>–ऐंगे –>–एंगे।

कु० में उत्तम पु० एक० पु० का प्रत्यय [–उंगा], स्त्री० का उंगी है; बहु० का उदाहरण उसमें नही है। वा० मे एक० पु० का है –ऊंगा, बहु० पु० का है –हिंगे। अहिंगे। ऐंगे। दक्खिनीमें एक० पु० का प्रत्यय है –उंगा और बहु० पु० का है –एंगे। अइंगे। विकास-क्रम कदाचित् है : –उंगा–>ऊंगा; –इगे। अइंगे–>–हिंगे। अहिंगे तथा –ऐंगे–>–एंगे।

कु० मे द्वितीय पु० बहु० पु० का प्रत्यय है –हुगे : एक० का उदाहरण नही है। वा० मे द्वितीय पु० का कोई उदाहरण नही है। दक्खिनीमे एक० पु० का प्रत्यय है –एगा। इंगा। आगा और बहु० पु० का है –इंगे। एंगे। आगे। दक्खिनीके रूप कुछ अव्यवस्थित-से प्रतीत होते हैं। विकास-क्रम कदाचित् है : –हुगे–>वर्त्तमान –ओगे।

क्रिया : सामान्य भूत काल

कु० मे एक० पु० के रूप धातुमें –आ। या। इया जोड़कर बनाये गये हैं : कही-कहींपर –अउ। ओ लगाकर भी उनकी रचना हुई है। वा० मे केवल –आ। या लगाकर यह रूप बने हैं। दक्खिनीमें प्रत्यय है –आ। या। इया।

—अउ । ओ पूर्ववर्ती पश्चिमी अपभ्रंशके भूत कृदन्त प्रत्यय —अउ । इउ का अवशेष है, जो अब भी राजस्थानी, पश्चिमी पहाड़ी और व्रज० में —ओ के रूपमें विद्यमान है।

कु० तथा वा० में एक० स्त्री० का प्रत्यय —ई है। दक्खिनीमें भी यही है।

कु० मे कुछ स्थलोपर एक० पु० रूप —आना । ईन । ईना । ईन्हा प्रत्ययसे भी बने हैं, जो एक० स्त्री० में —ईनी हो गया है। वा० में यह प्रत्यय नहीं मिलता है, और न कदाचित् दक्खिनीमें। यह पूर्ववर्ती पश्चिमी अपभ्रंशके —इण्ण । ईण का अवशेष है।

कु० तथा वा० में बहु० पु० रूप धातुमें —ए । अए लगाकर बने हैं। दक्खिनीमें भी यह प्रत्यय मिलता है। कु० में कही-कहीपर —यां । इयां । ईयां लगाकर भी बहु० रूप बनाये गये हैं। —ईन । ईना वाले रूपका बहु० —ईनइ लगाकर बना है। वा० मे इनका अभाव है। दक्खिनीमे इनकी स्थिति ज्ञात नही है।

कु० में बहु० स्त्री० रूप धातुमें —यां । इयां । ईयां लगाकर बनाये गये हैं। वा० में ये नही मिलते हैं। दक्खिनीमें इनकी स्थिति ज्ञात नहीं है।

कु० में कहीं-कहीपर —आं । या । इयां युक्त रूप एक० में भी प्रयुक्त हुए हैं। वा० में ऐसा नही है। दक्खिनीमे इस प्रवृत्तिकी स्थिति ज्ञात नही है। कु० में यह अनुनासिकता अकारण आयी हुई प्रतीत होती है।

कु० मे कभी-कभी एक० रूपोंसे ही बहु० का भी काम निकाला गया है। बहु० बनानेके लिए एक० प्रत्ययोमें केवल अनुनासिकता और लायी गयी है। बिन्दु प्रतिलिपि-क्रियामे प्रायः छूट जाया करता है, इसलिए असम्भव नही है कि अनुनासिकताका अभाव कही-कहीपर इस कारण भी हो गया हो, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि बहु० के लिए एक० क्रियाका प्रयोग सदोष न माना जाता रहा हो और किया जाता रहा हो।

कृदन्त युक्त सामान्य भूतका एक ही उदाहरण है: वह वा० मे है और बहु० पु० का है, जिसमें धातुमें —अते ही लगाकर उसे रहने दिया गया है। दक्खिनीमें इसकी स्थिति यथेष्ट रूपसे ज्ञात नही है।

क्रिया : अपूर्ण भूत काल

इसके कोई उदाहरण न कु० में हैं और न वा० में।

क्रिया : पूर्ण भूत काल

कु० तथा वा० दोनोंमें पूर्ण भूतके रूप भूत कृदन्तके साथ पु० में 'था', स्त्री० मे 'थी' तथा बहु० पु० में 'थे' जोड़कर बनाये गये है। दक्खिनीमें भी ऐसा ही हुआ है।

वर्त्तमान कृदन्त

कु०में वर्त्तमान कृदन्तके रूप धातुमें पु०में –ता। तां, स्त्री०में –ती तथा विकृतियुक्त रूपमें–तइ। तइं। ते लगाकर बने हैं। कहीं-कहीपर केवल–त लगाकर भी वर्त्त० कृदन्तका रूप बनाया गया है इनके अतिरिक्त, कु० में एक पु० –अदा, [स्त्री० –अंदी], विकृतियुक्त –अंदइ। अंदे, बहु० इंदीइ। अंदिए रूप भी पाये जाते हैं, जो पद्यों तक ही सीमित हैं। वा० मे एक० पु०-ता तथा स्त्री०-ती वाले रूप ही मिलते है। दक्खिनीमें पु०–ता, स्त्री०-ती और विकृति युक्त –ते वाले रूप ही मिलते हैं। पश्चिमी अपभ्रंशमें वर्त्तमान कृदन्त –अंत लगाकर बनता था, उसीसे –अंदा वाले रूप विकसित हुए हैं, और अब भी पंजाबी, गढ़वाली और नेपालीमें थोड़े-बहुत अन्तरके साथ सुरक्षित हैं। –त वाले रूपका विकास भी –अन्तवाले अपभ्रंशके रूपसे हुआ प्रतीत होता है, जिसका अनुस्वार सम्भवतः घिसकर धीरे-धीरे निकल गया है। पु० तथा स्त्री० के रूप उसी –त युक्त रूपमे –आ तथा –इ लगाकर विकसित हुए हैं। विकास क्रम अतः होगा— त—>पु० –ता तथा स्त्री० –ती विकृति युक्त –ते।

भूत कृदन्त

कु० में भूत कृदन्त एक० के रूप धातुमें –इया लगाकर बनाये गये हैं। किन्तु पु० तथा स्त्री० रूप क्रमशः, –आ तथा –ई लगाकर भी बने हैं। इसी प्रकार बहु० का सामान्य रूप –इयां। यां। आं लगाकर बना है, और पु० रूप –ए लगाकर। बहु० स्त्री० का कोई उदाहरण नही है। वा०में पु०मे –या, स्त्री० में –ई और बहु० पु० में –ए युक्त रूप ही मिलते हैं। दक्खिनीकी स्थिति यथेष्ट रूपसे ज्ञात नही है। –इया वाले रूप पश्चिमी अपभ्रंशके –इय वाले रूपोंके विकास हैं। विकास-क्रम कदाचित् है –इया—>पु० –या। –आ तथा स्त्री० –ई, बहु० पु० –ए।

कु० मे कहीं-कहींपर एक० रूपसे ही बहु० का भी काम लिया गया है। और कहीं-कहीपर एक० रूपमें भी अकारण अनुनासिकताका आगम हुआ है। वा० में प्रथम प्रवृत्ति तो मिलती है, दूसरी नही।

पूर्वकालिक कृदन्त

कु० में ये धातुमें –इ लगाकर अथवा बिना कुछ लगाये बनाये गये हैं। वा०मे ये –ई। इ। ऐ। ए। य लगाकर अथवा बिना कुछ लगाये बनाये गये हैं। वा०में कभी-कभी इनके अतिरिक्त की। कै। कर भी लगाया गया है। दक्खिनीमें इनकी स्थिति यथेष्ट रूपसे ज्ञात नहीं है। विकास-क्रम कदाचित् है –इ—>ऐ—>ए—>य—>प्रत्ययहीनता।

अव्यय

एक अवधारण वाचक अव्यय कु० में 'इ। इं। ईं' है, जो वा०में 'ई' मात्र-के रूपमें मिलता है। दूसरा 'हीं' है जो वा०में 'ही'के रूपमें मिलता है, तीसरा हु। हुं। हू है जो वा०में औ। औं के रूपमें पाया जाता है। कु०में पु० 'चा', स्त्री० 'ची' है, वा० मे 'च' मात्र है। वा० में 'भी' तथा 'तो' भी हैं, जो कु० में नही हैं। दक्खिनी में 'च', 'भी', 'तक' हैं, शेषकी स्थिति यथेष्ट रूपसे ज्ञात नहीं है।

स्थितिवाचक अव्यय कु० में 'सामटा', 'तर। तल', 'पास', 'साथ', 'आगइ', 'अग्गम', 'पाछी। पछइ। पाछइ' हैं और वा०में 'उरि', 'नीचा', 'औंचा', 'पहलै', 'आगै', 'अवलि', 'पीछै', 'उपरांति' हैं। दक्खिनीमें इनमें-से 'तल', 'पास', 'पछे'। पिछे, तो हैं, शेषके विषयमें यथेष्ट रूपसे ज्ञात नहीं है। विकास-क्रम कदाचित् है : आगइ—>आगै, पछइ। पाछइ—>पीछै।

स्थानवाचक अव्यय दोनोंमें 'जहाँ', 'कहाँ', 'तहाँ' हैं, जो दक्खिनीमें भी हैं। वा०में 'अनंत्र' (अन्यत्र) और मिलता है।

कालवाचक अव्यय दोनोंमें 'अब', 'तब', 'जब' हैं। कु०में इस वर्गके अन्य अव्यय 'कद', 'अज्ज', 'कल्हि', 'तत', 'एताल', 'ज्युं', 'त्युं', 'ताइ', और 'तो' हैं, वा० में 'यो', 'हमेसा' और 'फेरि' हैं। दक्खिनीमें भी 'अब', 'जब', 'तब', 'तो', 'आज', 'अताल', 'अद', 'कद', 'जद', 'तद' मिलते हैं।

रीतिवाचक अव्यय कु०में 'जिम। जिउं। ज्युं', 'किउं, कुं करि', 'त्युं' तथा 'यो' है। वा०में वे हैं 'ज्यौं। जौं', 'क्यौ', 'यौं', 'सैं'। दक्खिनीमें हैं : 'ज्यूं। जूं' 'यूं', 'त्यूं', 'क्यूंकर'। विकासक्रम कदाचित् है : जिम। जिउं ज्युं—>ज्यौं–जौं, किउं—>कुं—>क्यौं।

संयोजक अव्यय कु०मे हैं : 'जउ', 'तउ', 'तरह', 'जं', 'सु', 'जइ', 'नत। नातर' 'वल', 'परि' 'कई। की। के', 'जांणि। जाणे। जाणुं', 'मानुं'; वा०में

कुतब शतक

पाठ और अर्थ









[१]

*'ढढ्ढिनि दानसवंद की'[1] अड्डी 'देवर'[2] नाम।
'साहिब सुं सूरत्तियां'[3] वर वोलिया 'वडाम'[4]॥[5]

पाठान्तर—१. अ. ढढिनि दांणस वंद री, घ. ढढणि दानसवंद की, का. ढंढणी दानसमंद री। २. घ. देवल। ३. घ. साहिब सा सुं रत्तीयां, का. साहिब से

---

* का० में इसके पूर्व और आता है : [का० में प्रथम पत्र नहीं है, उद्धृत अंश उसके बादका है] :

'''ला ४। कामसेना ५। कामवती ६। चम्पावत्ती ७। रम्भावती ८। ए आठ अपछरा वडी जांण छै। एकदा प्रस्तावे। इन्द्र सभा मांहि मृत्यु लोक की बात चली। ताहरां साहिबां री सुरति देवता वषाणण लागा। ताहरां अपछरा बोली। मानवीयां मांहे देवता की घणी सुपछै। दीठां वणि आवै। ताहरां देवतो बोलीय किसही देवांगना मै एक कवाव रूप है। किस ही में दोइ कवाव रूप है। किस ही मै तीन कवाव रूप है। किस ही मै दस कवाव रूप है। साहिबां मै सोलह कवाव रूप है। सहर दिली मै सेज दावल दानसमंद की बेटी है। ऐसा रूप तीन लोक मै किस ही का नांही। तव जयती अपछरा उहां थी स्वर्गलोक थी, मनुष्य लोक मै आई। तव उलेणी मै आई। उहां ष्याल देखती थी सहर दिली मे आई। तव देष्या जु मुगलां के अंदर कुं जाव ण पाईयें। तव अपछरा नै ढाढिणी का रूप कीया। ढोलक गल बीच वाह दावल के दरवार गई। उहा जाई सुर कीया। ढोलक वाई। तव साहिबां के ढोलक का सवद सुणि ढाढणी कु इदर लोक बोलाइ लई। हजूर तेढी। हुकम कीया जु गावो। तव ढाढणी गांवणैं वावणे लागी। साहिबां बहुत रीझी। ऐसे वीचि साहिबां के पांणा तयार हूया। तव साहिबां कह्यो। इहांई ल्यावो। तव तवा का पांणै क्या आया। तव साहिबां ढाढणी सुं बहुत पुसीयाल थी कह्या ढाढणी पांणा पाइ। तव पांणा ढाढणी कुं दीया। तव पांणा ढाढणी पांणा पाइ करी बहुत राजी हूई। देवता आपर पुसी हूया वर देवे। ढाढणी बोली साहिबा मांगि तूठी। तव साहिबां हसी। अरीसाहिबां क्या हसती है। मांगि मांगि तूठी। तुझ कुं पसाव कीया। तव साहिबां बोली। क्या जी तूं म पसाव कीया। कह्यौ जी हमारे बडे बूढ को ईसाफ करोगे। उंर का पसाव देयोगे। कह्यो जी देवर के दिल मै दिल तौ तुझ कुं साहिजादा वरूंगी। कहां साहिजादा कहां हम। हम तौ दोइ लाप टकां के चाकर। दरवार जावण पावां तौ भी बहुत। मामुस के रहौ। ढाढणी बोली अरी साहिबां जो देवर कौ दिल मै दिल तौ तुझ कु साहिजादा कुतवदीन वरा मामुस के रहौ।

(शेषांश आगेके पृष्ठपर देखिए)

संरत्तीयं, अ. साहिब सों सूरत्तियां। ४. ध. बोलीये वडाम, का. बोलियां विडांम। ५. अ. में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो '१' है।

अर्थ—[दावर—न्यायकर्त्ता] दानिशमंद की [एक] गुण-संपन्ना ढाढिनी थी, [जिसका] नाम देवर [देवक] था। [दानिशमंद की कन्या] साहिबा से अत्यधिक प्रसन्न होनेके कारण [उसने] एक बड़ा कर [वचन] बोल (दे) दिया।

टिप्पणी—ढढिनि : ढाढी जातिकी स्त्री जो गाने-बजानेका काम करती है। यह नाम 'ढड्ढ' [दे०] = भेरी से पड़ा ज्ञात होता है। राजस्थानमें फाग के समय बजाये जानेवाले चंगको भी कहीं-कहीं 'ढड्ढा' कहते है। दानसवंद < दानिशमन्द [फा०] = बुद्धिमान्। अड्ढ < आढ्य = सम्पन्न; यहाँपर आशय कदाचित् है 'गुण-सम्पन्न'से। सूरत्ति < सु + रक्त = अत्यधिक प्रसन्न। वर = देवताका प्रसाद, वचन। वड्ड [दे.] = बड़ा, महान्।

[२]

दिल्ली 'सहर'[१] 'सुरतांण पेरोज साहि थाना'[२]।
साहिजादा 'कुनबदी'[३] 'जुआंणा'[४]॥
वरस नव तीनि तेरह 'पचाणा'[५]।
बीबीयां लाजलो 'भइ'[६] बंधाना॥[७]

पाठान्तर—१. ध. नयर। २. का. सुरतांण पेरो साह थांणा। ३. का. कुतदीन। ४. व. का. जुवांनां। ५. ध. का. प्रमाणा। ६. का. भे, अ. जइ (< भइ)। ७. अ. में इस अंशकी क्रम संख्या भी दी हुई है, जो है '२'।

ध० में इसी प्रकार प्रथम दोहेके बाद आता है :

एक दिवसि साहिबां ढढणी कुं पाणा पुलावनी थी। ढढणी प्रसाद कीया। साहिबो तुम्ह कुं क्या उपगार करूं। हम कुं क्या उपगार करहुगे। हमारे बडां बूढा के उवसाफ करउ। ते हउ। अवर क्या उपगार करहुगे। देउल के दिल नइ दिल तउ तुम्ह कुं साहिजादा कुनबदीन वरूंगी। नन दुरोग क्या बोलहु। हम लाख टका के चाकर। दरबार आवइ पावइं तउ भी बहुत। कहां साहिजादा कहां हम।

[प्रकट है कि दोनों प्रतियोंकी ये सूचनाएँ प्रथम दोहेकी टीकाओंके रूपमें हैं। सम्भवतः ध. का रूप पूर्ववर्ती है, जिसमें और विस्तार करके का. का रूप बनाया गया है : ध. का 'एक लाख टका' का. में 'दो लाख टका' हो गया है, यह भी इसी अनुमानका समर्थन करता है।]

अर्थ—दिल्ली नगर सुल्तान फीरोज़शाहका स्थानक (शासन-केन्द्र) था । [उसका] शाहज़ादा कुतुबुद्दीन युवा [हो चुका] था । नव + तीन [= बारह] वर्षों [की अवस्था] में वह तेग़ (तलवार) [चलाने] में प्रमाण हो गया [था], [जिस समय] लज्जालु बीबी (बिवाना) [उसके लिए] बन्धन हो गयी ।

टिप्पणी—थाना < स्थाणय < स्थानक = चौकी, सैनिक केन्द्र, कदाचित् यहाँपर तात्पर्य शासन-केन्द्रसे है। जुआण < युवन् = तरुण, जवान । लाजलो < लज्जालुआ < लज्जालु = लज्जावाली स्त्री । बीबी [फ़ा०] = कुलवधू, भले घरकी स्त्री; बीबीया का-आ युक्त रूप बहुवचनका नहीं, आदर अथवा प्यारका है । बंधाणा < बंधणया < बन्धन ।

[३]

डोसी 'अग्गा'[1] 'आगइ'[2] 'बीबी बिवानां'[3] 'वइट्ठी'[4] ।
'नवे'[5] 'पंच सइ' 'हत्थ सोवन्न लट्ठी' ॥
'वाडीयां'[8] 'वेलियां'[9] नयणे 'छिपावइ'[10] ।
'साहिजादा आगइ'[11] 'सरकणइ'[12] न 'पावइ' [13-14] ॥*

पाठान्तर—१. अ. अगा (=अग्गा) का. आगा, घ. आगां । २. का. आगे । ३. घ. दरबारि । ४. का. वैठी । ५. घ. जथे । ६. घ. पांच सइ, का. पांच सै । ७. घ. हाथि सोवन्न लाठी । ८. घ. का. वारीयां । ९. घ. वोलीया । १०. का. दिपावै । ११. का. पिण साहिजादा आगै । १२. घ. सरकणे, का. सिरकणै । १३. का. पावै । १४. अ. में इस अंगकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '३' ।

अर्थ—वृद्धा आग़ा और बीबी बिवानां [जो उस शाहज़ादेकी माता थी] उन सबके आगे बैठी [होती थीं] । [ऐसी स्त्रियाँ] पाँच सै नवे [होतीं] थीं, और उनके हाथोंमें स्वर्ण-यष्टि [होती थी] । वे [शाहज़ादेको उसके]

* का. में यहाँ निम्नलिखित पंक्तियाँ और हैं :

वचनिका—बीबीयां का नाम । बीबी अगा १, बीबी बीवांनां २, बीबी अंगीया ३, बीबी पेम प्यारी ४, बीबी गुलाब ५, बीबी महबूब ६, असी बीबी पांच सै गुलांम पासेवांण सुं साहिजादे के पासे रहै । हाथूं बीचि सोना का आसा सोने के गुरज लीय बैठी रहै कोऊ आवण पावै नहीं ।दरवाजे पांच सै प्यादा खड़ा रहै । इस भांति रहै । पातिसाह का हुकम एक पूंगरी पातिसाह के है सो जतन सुं साहिजादा कुं राषत है । कोइ हरामजादा छल छिद्र साइंण माइंण बुरा आवण न पावै । असी जाब्ता साहिजादे की है ।

नन्नास वाटिका और [उसकी] कतारोंको दिखाती [रहती] थी। [उनके द्वारा परिवेष्टित] शाहज़ादा आगे सरकने (जाने) नहीं पाता था।

टिप्पणी—डोसी = वुड्ढी (द० 'दक्खिनी-हिन्दी' : बाबूराम सक्सेना, पृ० ७९ पर 'डोसा')। अग्गा ∠ आग़ा [तु०] = एक उपाधि जो प्रायः मुगलोंकी होती थी। सोवन < सोवण्ण < सौवर्ण = स्वर्ण निर्मित। लट्ठि < यष्टि = लाठी, छड़ी। वाडीया < वाटिका = उद्यान। वेली [दे०] = लता। सरक् < सर् < सृ = खिसकना, जाना।

[४]

'एक सि घउस देवर ढढिनीं मालनी का'[१] भेप कर्‌यां'[२]।
'पक्कीयां नारिंग्यां जंभीरयां भरयां' ।
वेलीयां 'वंकीयां करयां'[४]।
हेलीयां 'साहिजादे कइ अग्गइ[५] धरयां ।*
दोइ साहिजादें अप्पणइ हत्थइ कीयां'[६]।
[७]'आगा' [८]मालनी पुव (पूव) 'हइ'[९]।
हां 'साहिजादे'[१०] 'जोवणा'[११] पूव हइ।
'पूव कुं पूव'[१२] होइगा।
टुक एक 'धीरे'[१३]।
सुलतांण फुरमाण 'देता ई हइ'[१४]।
'नारिंगी दो दो च्यारि वंटे दीयां'[१५]।
'पांच सोवन के टके देवरइ* धरे'[१६]।
'वे मालनी'[१७] 'आईयां'[१८] करे'[१९]॥

पाठान्तर—१. ध० एक दिवस देवर ढढणी मालणीका, का० एक दिन ढिढणी मालणीका। २. का० करया। ३. ध० पक्की नारंगी जंभीरीयां उदिला भरया,

---

* का० में यहाँ और है :
वहाँ दरबार आगै पुकारी। तब साहिजादे सुण्या। सुणत ही इंदर बोलाई। हां मालिणी हाजर। एते बीच हजूरी दोडे। पकर वांह इंदर ल्याए। फल साहिजादा कै आगै धरया।
[इस अंशका अन्तिम शब्द प्रायः वही है, जो इसके पूर्वका है, इसलिए ज्ञात होता है कि पहले यह अंश हाशिएमें बढ़ाया गया था, जिसको मूलमें सम्मिलित करते समय उक्त वाक्य दुहरा उठा]

का० पकीयां नारंजीयां जंभीरीयां दोना भरया, अ० पक्की नारिंग्यां जंभीरया भरयां। ४. घ० वांकी करया, का० वंकीयां कीयां। ५. घ० साहिजादां आंगे, का० साहिजादा आंगे। ६. घ० दुइ साहिजादाइं आपणइ हाथि कीयां, का० दोइ साहिजादे आपनै हाथ करयां। ७. का० में यहाँ 'ए' और है। ८. अ० अगा (अग्गा), घ० आगां, का० आगा। ९. का० है। १०. का० साहिजादा। ११. घ० जोवन। १२. का० तो पूत्र पूव पूव पूवका पूव। १३. घ० धीरी, का० धीरज धरणा। १४. घ० दई हुई, का० देता है। १५ का० नारंगी दोइ च्यार वांटि वांटि दीनी, घ० नारंगी दोइ दोइ च्यारि च्यारि वांटि दीयां, अ० नारींगी दो दो च्यारि वंटे दीयां। १६. का० पांच सोनोके टके देवरे छांव मे धरे, घ० पांच सोवनके टके दोइ धरे, अ० पांच सोवनके टकां दोवरइ भरे। १७. का० वे मालिनीयां, घ० अवे मालिनी। १८. का० आया, घ० आई। १९. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी है, जो है '४'।

अर्थ—एक दिन देवर ढाढिनीने मालिनका वेष किया। [उसने] पक्की नारंगियाँ और जंभीरियाँ [छाबड़ेमें] भरीं। बाँकी केश [-सज्जा] की। [तदनन्तर] उन्हें उसने हेलापूर्वक शाहज़ादेके आगे (सामने) [लाकर] रखा। [उनमें-से] दो शाहज़ादेने अपने हाथोंमें कर लीं, [और बोले विदानांसे कहा,] "आग़ा, यह मालिन अच्छी है।" [आग़ा ने कहा,] "हाँ राजकुमार, इसका यौवन अच्छा है। अच्छेको अच्छा ही [प्राप्त] होगा, [किन्तु] एक क्षण (थोड़े समय तक) धीरज [रखने] से। [अब] सुलतान फ़रमान देता ही है।" शाहज़ादेने दो-दो चार-चार नारंगियाँ बाँट दीं, [और] सोनेके पाँच टके देवर ढाढिनीने रख लिये। [तदनन्तर शाहज़ादेने उससे कहा,] "रे मालिन, तू आया कर।"

टिप्पणी—एकसि=एक (दे० 'दक्खिनी हिन्दी': बाबूराम सक्सेना, पृ० ५२)। वंक<वंक<वङ्क=बाँका, सुन्दर। वेकी<वेल्ल+इका [दे०] केश, बाल। हेला=आयास-हीनता, सरलता। हथ<हत्थ<हस्त=हाथ। खूब<खूब [फा]=भला, अच्छा, सुन्दर। फुरमाण <फ़रमान [फ़ा०]= अनुशासन-पत्र, राजकीय अनुशासन-पत्र।

[५]

'टुक एक गया मालनी फिरि'[१] आई।[२]
'साहिजादे आपणी जंभीरियां'[३] 'मुहंगीयां न वेचुंगी'[४]।
[५]'आगइ' [६]दावल 'दानसवंद'[७] की 'पूंगरी'[८] हइ।

'सु'[१] मुहर मुहर 'जंभीरियां मांगती हइ'[१०] ।[११]
'जउ'[१२] न देहुगे 'तउ'[१३] सुलतांण सुं कहुंगी ।
एकस एकस कुं 'गहुंगी'[१४] ।
'एताल ल्यावहु'[१५] ।
'खाइयां'[१६] क्या कहावइ ।
'जिनि खाइयां ते दिपावहु'[१७] ।
'नांतर मुहर मुहर जंभीरियां नकी पाछी'[१८] 'ल्यावहु'[१९] ॥[२०]

पाठान्तर—१. का० मालिनी बाहिर जाइ टुक एकै फिर। २. का० में यहाँ और है : क्या बात बनाई। ३. का० साहिजादा अपने सोनइये लेहु, हमारीयां नारंगीयां जे भीरीयां फेर देहु। ४. घ० मुहंगी न वेचउंगी। ५. का० में यहाँ और है : साहिजादा बोल्या मुहगी कोंण न लेहुगा तेरी। ६ का० में यहाँ 'इहां' और है। ७. का० दानसमंद, अ० दानसवंद। ८. का० में यहाँ और है : हर रोज लेती। ९. का० में नहीं है। १०. का० जंभीरी देती है। ११. का० मे यहाँ और है : हुं तो साहिजादा जानि आई, मोकुं दोइ मुहरकी टाप घाई, जंभीरीयां तो खाई, टुक एक मोरी आई। १२. का० साहिजादा। १३. का० तो मै। १४. घ० गहि, का० ग्रहुंगी। १५. का० मे नहीं है। १६. का० पाई। १७. घ० जिणि पाइयांते दिषाई, का० जिण पाई सो दिषावो, अ० गिनि पाई हइ ते दिषावहु। १८. घ० नही तर महुर महुर जंयीरियां की पाछी, का० नही तो मुहुर मुहुर जंभीरी नकी पाछी। १९. घ० मगावो, का ल्यावो। २०. अ०में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '५'।

अर्थ—एक क्षण, (थोड़ा ही समय) गया और मालिन लौट आयी। [उसने कहा,] "शाहज़ादे मैं अपनी जंभीरियाँ सस्ती न बेचूँगी। आगे दावर दानिशमन्दकी [एक] बालिका (कन्या) है; वह [मेरी] जंभीरियाँ [प्रत्येक] एक-एक मुहरकी माँग रही है। यदि तुम [मेरी जंभीरियाँ वापस] न दोगे, तो मैं सुलतानसे कहूँगी और एक-एकको [तुमसे वापस] ले लूँगी। [तुम] इसी समय [इन्हें] लाओ। 'खायी हुई' क्या कहलाती हैं? जो खायी हुई हैं, उन्हें दिखाओ, नहीं तो [उन] ख़ालिस (अछूती) जंभीरियोंके पीछे एक-एक मुहर लाओ।"

टिप्पणी—मुहंग = सस्ता, कम दाममें प्राप्य। दावल<दावर [फा०] = न्यायकर्त्ता। पूंगरी<पुद्गल + इका = बालिका, अथवा<पोगण्ड + इका = किशोरी। एकस = एक (दे० 'दक्खिनी हिन्दी', बाबूराम सक्सेना, ६-७९)।

एनाल [तुल० इत्ताहे<इदानीम्] = इसी समय। नकी<नकी [अ०] विशुद्ध, खालिस।

[६]

'अग्गा आगम'[1] नट्ठियां, बीबी' 'बीहन'[2] दम्म।
साहिब 'सारी'[3] वत्तडो, साहिजादे सुं कम्म ॥[4]

पाठान्तर—१. ध. आगां आगमि। २. का. वीहण, ध. वीहम। ३. का. सारे, ध. सारइ। ४. अ. में इस अंशकी क्रमसंख्या भी दी हुई है, जो है '६'।

अर्थ—[ढाढिणी ने कहा,] "आगा तो पहले ही भाग चुकी है, बीबी विवानां चुप है। साहिबाने बात चलायी [है], और [मुझे] काम शाहज़ादे-से है।"

टिप्पणी—आगम = आगे, पहले। नट्ठ<नष्ट = भागा हुआ। दम्म<दम्<दमय् = निग्रह करना। सार्<सारय् = प्रेरणा करना, ले जाना, चलाना। वत्तडी<वत्ता<वार्त्ता = वात। कम्म<कर्म = काम, प्रयोजन।

[७]

पेरो साहि 'दुहाइयां'[1], 'झुट्ठी मालनि रुन्न'[2]।
'कुण स केही पुंगरी',[3] 'जिण मुहर जंभीरयां लिन्न'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. का. दुहाई। २. का. झूठी मालण रन्न। ३. ध. कोण स केसी, का. कोंण स केरी। ४. का. मुहर जंभीरी लंन, ध. जिण महुर जंबीरी लिन्न, अ. जिहि मुहर जंभीरयां लिन्न। ५. अ. में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है जो है '७'।

अर्थ—[राजकुमार ने कहा,] "फीरोज़ शाह की दुहाइयाँ, ऐ मालिन, तू झूठी है जो रो रही है। वह कौन है और कैसी वह पूँगरी (बालिका) है जिसने [एक-एक] मुहर की जंभीरियाँ ली हैं।"

टिप्पणी—रुन्न<रुण्ण<रुदित = रो रही। पुंगरी<पुद्गल + इका = बालिका, अथवा <पौगण्ड + इका = किशोरी।

[८]

'पक्की जांणि जंभीरियां, 'उसका'[2] 'वरण सुहंदा अग्ग'[3]।
'जिसकी'[4] सूरति 'लोवतइं',[5] 'मेरे'[6] दीदे दूषण लग्ग ॥[7]

पाठान्तर—१. का० मे यहाँपर और है : दावल दानसमंदकी साहिबां तिसका नाम : तास पटंतर का नही मै दिट्ठे सब ठाम। [यह दोहा भरतीका ज्ञात होता है]। २. ध० का० में यह शब्द नहीं है। ३. ध० वरण सोहंदा जग्ग, का० वर सोहंदे जग्ग। ४. का० उसकी। ५. ध० जोदतां, का० लोयतां। ६. ध० में यह शब्द नहीं है। ७. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दीउ है, जो है '८'।

अर्थ—[ढाढिणी ने कहा,] "मानो पक्की जंभीरियाँ हों, [ऐसा] साफ़ (निर्मल) और सुहाता हुआ उसका वर्ण है, जिसकी सूरत को देखते-देखते मेरे नेत्र डूबने लगे (डूबने पर आ गये)।"

टिप्पणी—लोय् <लोअ् <लोकय् = देखना।

[९]

'अरे'[1] 'मालिनीयाँ'[2] तूं 'इहि काम'[3] 'आई'।[4]
हां 'साहिजादे हूँ इहि'[5] काम आई।[6]
साहिब 'सौं[8]'[7] सूरत्तियां, 'हूं मालन'[8] 'इहि कम्म'।[9]
'जिउं किउं दक्खा वल्लियां'[10] 'जउ र विलगइ'[11] अंब॥[12]

पाठान्तर—१ का० वे। २. ध० का० मालनी। ३. का० इस काम, ध० इहां कामि। ४. का० में और है 'है'। ५. का० साहिजादा मैं इस। ६. का० में और है : तै कैसी है। ७. अ० मी (<सो), का० सो। ८. अ० हूं मलनी, का० मै मालन। ९. धा० इह कम्म, का० इस कांम, अ० इहि कांम। १०. ध० जिउं किउं देषां वेलीयां, का० वेली दाषा सदीयां, अ० जउ क्युं दखा (दक्खा) वल्लीयां। ११. ध० जिउं रि विलग्गा, का० जाणि विलग्गे। १२. अ० मे इस अंशकी क्रम-सख्या भी दी हुई है, जो है '९'।

अर्थ—[राजकुमारने पूछा], "[क्यों] हे मालिन, क्या तू इसी कामसे आयी [है]?" [ढाढिणीने कहा,] "हाँ शाहज़ादे, मैं इसी कामसे आयी [हूँ]।

[उस] साहवासे अत्यधिक प्रसन्न होकर मैं मालिन इसी कामसे [आया] हूँ कि वह द्राक्षा-लता जिस किसी प्रकारसे [तुम] आमसे लग जाये।"

टिप्पणी—सु रत्ती<सु+रत्ता = अत्यधिक प्रसन्न। जउ<जइ<यदि। द्रक्खा<द्राक्षा। अंब<आम्र = आम।

[१०]

साहिजादे 'केही कहूं'[1], 'साहिब सूरति सुभ्भ'[2]।
'जाने'[3] की करतारियां, लोयन 'हंदा'[4] लभ्भ ॥[5]

पाठान्तर—१. का० केही कहां, घ० कैसी कहूं। २. का० साहिबां सूरति सब्भ, घ० साहिब सूरति सब्भ, अ० साहिब सूरति शुभ। ३. घ० का० जाणे। ४. घ० हंदे, का० हंदै। ५. अ० में इस अंशकी छंद-संख्या भी दी हुई है, जो है '१०'।

अर्थ—[ढाढिणीने पुनः कहा,] "मैं, ऐ शाहज़ादे, साहिबाकी उस शुभ्र सूरतको कैसे कहूँ? उन लोचनोंके लाभको कर्ता भले ही जानता होगा!"

टिप्पणी—(१) केह<कीदृश् = किस प्रकारका। सुभ्भ<शुभ्र। (२) लभ्भ<लाभ।

[११]

'केसा के कसि बंधियां'[1], के छुट्टियां 'रुलंति'[2]।
जाणे 'सपंनि अप्पणा'[3], चर चिट्ठुआ 'भषंति'[4,5] ॥

पाठान्तर—१. क० के केस कस वंधीया। २. का० रुलंदि। ३. घ० सापणि आपणो, का० सप्पण अप्पणा। ४. घ० करि चिटला भषंति, का० चुणि चीटुला भषंदि। ५. अ०में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी है, जो है '११'।

अर्थ—"[उसके] केश या तो कसकर बँधे हुए हैं, और या तो खुले हुए लोट रहे हैं; [वे वेणीके साथ ऐसे लगते हैं] मानो साँपिन अपने चलते-फिरते (विचरण करते) हुए बच्चोंको खा रही हो।"

टिप्पणी—रुळ्<लुठ् = लोटना। सप्पण<सर्पिणी। चिट्ठुअ = शिशु।

[१२]

'अंगन'[1] चंद 'निलाट्टियां'[2], भ्रु 'तर'[3] नच्चइ नयण।
जाणे 'आण वधाइयां'[4], 'आगम'[5] 'हंदा'[6] मयण ॥[7]

पाठान्तर—१. घ० आंगण। २. घ० ललाटियां, का० नलाटीया। ३. घ०

का० तरि । ४. का० आणी वधीया । ५. अ० आगम । ६. ब० हुंदे । ७. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '१२' ।

अर्थ—"उस अंगना (स्त्री) का ललाट चन्द्रमा [जैसा] है और उसकी भौंहोंके नीचे उसके नेत्र [इस प्रकार] नाचते रहते हैं, मानो वे मदनके आगमनकी बधाइयाँ ला रहे हों ।"

टिप्पणी—अंगन<अङ्गना = स्त्री । बधाई<वद्धावण<वर्द्धापन = अभ्युदय-निवेदन और उसके प्रतीक स्वरूप दी जानेवाली भेंट, जो नारी-समाजमें प्रायः नृत्य गीतादिके साथ दी जाती रही है । मयण<मदन = कामदेव ।

[१३]

'वइंणी बंधि बिलंबिया,'[1] 'मुत्ती हेक रुलंति'[2] ।
'जाने सीपि सुमुष्षीयां'[3] 'कंठइ *कीर चुणंति'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. का० वेनी बद्ध विलंबीयो, ब० वेणी बंधि बिलंबीया, अ० वइंणी विधि बिलंबीया । २. का० मोती एक रुलंदि, ब० मोती एक रुलंति, अ० मुत्ती हेक रुलंत । ३. का० जांणे सीप समंपीया, ब० जांणे सीप सुमुखीयां । ४. का० कांठे कीर चुगंदि, ब० कठै कीर चुणंति, अ० कठइ कीर चुणंति । ५. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है जो, है '१३' ।

अर्थ—"[जो] उसकी वेणीसे बँधा हुआ और विकम्पित है, [ऐसा] एक मोती [उसकी नासिकापर इस प्रकार] लोट रहा है मानो वह सीपियों (नेत्रों) के समक्ष ही हो और पासका कीर (नासिका) [उसे] चुन (चुननेका यत्न कर) रहा हो ।"

टिप्पणी—वइंणी<वेणी । मुत्ती<मौक्तिक = मोती । हेक<एक । रुल्<लुठ् = लोटना । कंठ<कण्ठ = समीप ।

[१४]

'ही उट्ठा दिट्ठाइयां, दीहा पंचइ च्यारि'[2] ।
जाणें 'नी नारिंगियां,'[3] वे अंगोया मझारि ॥[4]

पाठान्तर—१. का० में इस दोहेके पूर्व निम्नलिखित और है :

अधर सुढंका ढंकीया, झलड सोहंदे रूप ।
जांणे रंक दुराईयां, नग पनीयां अनूप ॥

२. का० हीये ऊठा दिठाइयां दीहा पंच चयारि, अ० ही उठा दिठाइया दीहा पंचइ च्यारि। ३. का० नीसू नारंगीया। ४. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है १४'।

अर्थ—"चार-पाँच दिनोंसे [ही] उसके हृदय (वक्ष) उठे हुए दिखलाई पड़े [हैं], [और उसके कुच ऐसे लगने लगे हैं] मानो उसकी अँगियामें हूबहू दो नारंगियाँ हों।"

टिप्पणी—ही < हिअ < हृदय। दीह < दिवस। नी < निज = वास्तविक। बे < द्वि = दो।

[१५]

लंक 'धन कइ'[1] मुठ्ठियां, 'बिच रसु रंगी'[2] बांम।
हत्था कांम 'सपीय भउ',[3] 'पिय हत्था भउ'[4] कांम ॥[5]

पाठान्तर—१. का० धनंपी, ध० धणुपइ। २. का० विधरस अंगा, ध० विध र सु रंगे। ३. का० त प्रीय भे, ध० कंपियो भयो। ४. का० प्रिय हत्थां भै। ५. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '१५'।

अर्थ—"उस स्त्रीकी कटिको मुट्ठीमें [पकड़] करके ही [जैसे] उस वामाको विद्ध (?) रस (प्रेम?) में रँगा हो, [इसीलिए] कामके हाथ पीले हुए और उस प्रियाके हाथों (वश) में [वह] काम हो रहा।"

टिप्पणी—धन < धन्या = स्त्री। पीय < पीत = पीला। पीय < प्रिया।

[१६]

[1]'पाइ स रत्तां पंकजां'[2], अढ्ढी 'अंगुलियांह'[3]।
'जाणे राई वेलियां'[4] 'फूली नीकलियांह'[5] ॥[6]

पाठान्तर—१. ध० में यहाँ और है :

जंघा रंभ नितंबीयां, केलि कहंदे पंभ।
काम कलिंदी सींचियां, जोवन हंदी अंभ ॥
अधर सुरंगा ढंकीया, डसण सुहंदा रूप।
जाणे रंक दुराइयां, नग पन्नीयां अनूप ॥

(इनमें-से दूसरा का० में स्वीकृत [१४] के पूर्व आ चुका है—देखिए

ऊपर।) २. का० पाव सरत्ता पंकजां, घ० पाय सरत्ता पंगजा। ३. का० अंगुलीयां। ४. का० जाणे राई अंविया, घ० जाणे राई वेलियां, अ० जांणि राय वल्लीयां। ५ का० फूले नीकलीयां। ६. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '१६'।

अर्थ—"[उसके] चरण लाल पंकज हैं, और उनकी उँगलियाँ [ऐसी] सुन्दर हैं मानो राईकी बेलमें फलियाँ निकली हुई हों।"

टिप्पणी—रत्त<रक्त = लाल। अड्ढ<आढ्य = सम्पन्न; कदाचित् यहां-पर तात्पर्य है सौन्दर्य-सम्पन्नसे। राई<राइआ<राजिका। फूली = फली।

[१७]

[१]"वे मालनियां दिट्ठाइयाँ[२], के 'सोनी'[३] गल्हरियांह।
[४]साहिब 'संचो दिट्ठियां,'[५] 'लइ'[६] चलि संगरियांह॥[७]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है :

साहिजादा सचा जनम, साहिब लंते लभ।
जिम गै रंगी लदीया, तिहि मिलंदे सभ॥

२. का० मालणीयां तैं दिट्ठियां। ३. घ० सोहणि, का० सूनी। ४. का० में यहाँपर और है : हा। ५. का० सचे दिपीयां। ६. का० ले। ७. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '१७'।

अर्थ—[शाहज़ादेने पूछा.] "रे मालिन, वह [तुझे] दिखी भी है, अथवा [विरे-द्वारा] बातोंमें [हीं] सुनी गयी है? यदि तूने साहिबाको सचमुच देखा है, तो मुझे साथ ले चल [और अपने वर्णनोंकी सत्यता प्रमाणित कर]।"

टिप्पणी—सोन्<श्रु=सुनना। गल्हरी = बात। संगरी = साथ।

[१८]

'साहिजादे'[१] 'पथां न होउ'[२], धरि 'खलरी पवेह'[३]।
डीवो 'डांग सुसिंगरी',[४] 'कमरि करंदा लेहि'[५]॥[६]

पाठान्तर—१. का० साहिजादा। २.का० पथां न हो, घ० सत्ती न हु, अ० पथा न होउ। ३. घ० पल्लरी पवेह, का० पल्हडी पवेह, अ० पल्लरी खवेहि। ४. घ० डंग सु सिंगरी, का० डांग सुंगरी, अ० डांम स सांगरा। ५. घ० कमर

कसिदा लेह, का० कमरि करंदा लेहु, अ० धरि पल्लरी पवेहि (प्रथम चरणकी शब्दावली भूलसे दुहरा उठी है)। ६. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '१८'।

अर्थ—[ढाढिनीने कहा,] "ऐ शाहज़ादे, तू उद्दीप्त न हो; तू [फ़क़ीरोंका वेष धारण कर और] खल्लरी (थैला) कन्धेपर रख तथा डीवी (हाँडी = भिक्षा-पात्र), डाँग (यष्टि), सिंगरी (शृंग) और कमरमें करन्दा (करण्डक = पेटिका) ले (धारण कर)।

टिप्पणी—पथा < खित्तय [दे०] = दीप्त, प्रज्ज्वलित। खल्लरी < खल्लय < खल्लग [दे०] = थैला। खन्ना < खवय [दे०] = स्कन्ध, कन्धा। डीवी < दीपिका (?) = लघु प्रदीप (?)। डाँग < डंगा [दे०] = लाठी, यष्टि। सींगरी < शृङ्ग = विषाण। करंदा < करंडक = पेटिका।

[१९]

[1]मालणीयां कहि 'नट्ठियां',[2] 'जाहि'[3] जमा की राति।
दावल दानसमंद कै 'मांगि स' [4]तत्ता भात॥

पाठान्तर—१. यह दोहा अ० में नही है किन्तु कथामे आगे ही यह आता है कि शाहजादा जुमरातकी प्रतीक्षा करने लगा, और फिर जुमरातको ही वह साहिबाको उस ढाढिनीके साथ देख सका, इसलिए यह दोहा प्रसंगमे अनिवार्य है और क० में भूलसे छूटा हुआ लगता है। २. ध० नीकल्या। ३. ध० जाहु। ४. ध० मंगिसु।

अर्थ—"[और] तू जुमेरातको जा", यह कहकर [वह] मालिन भाग गयी, "तथा तू दावर दानिशमन्दके यहाँ [उस दिन] गरम भात माँग [तब तुझे साहिबाके दर्शन होंगे]।"

टिप्पणी—नट्ठ < नश् = भागना। जमाकी राति < जुमेरात [अ०] = बृहस्पतिवार। तत्ता < तप्त = गरम। भात < भत्त < भक्त = उबाला हुआ चावल।

वचनिका : *'वीवियां आई ।'[1]
मालनी 'संच जाण्या'[2] ।
'साहिजादा सइतान र जाण्या ।'[3]
'जो आवे इता ही पूछता सदि हइ ।'[4]
'अवे जमाराति 'कदि हइ'[5] ॥
'पूछतइ पूछतइ जमाराति आई ।'[6]
वीवियां 'हरम द्वार'[7] धाई ।[8]
सुलाताण 'वाराम वारी आया'[9]
'एतइ वीच'[10] साहिजादा 'जमा मसोति आया'[11] ॥[12]

पाठान्तर—१. का में नहीं है । २. का० साच जाण्या, अ० संच जाण्या । ३. का० में यहाँ और है : मालणी गयी । वीवीयां आयी । [दूसरा वाक्य ऊपर इसके पूर्व आ चुका है और पूर्ववर्ती दोहेमें 'मालनियां कहि नट्ठियां'में प्रथम वाक्यका आशय भी आ चुका है । इसलिए ये वाक्य प्रक्षिप्त लगते हैं ।] ४. ध० का० जोइ आवै तिसकूं (तिसही—ध०) पूछे । ५. का० कब है । ६. ध० पूछतां पूछतां जुमाराति आई अ० अवे पूछतइ पूछतइ जमाराति आई । ७. ध० हरम दुवार, का० सव द्वार कुं, अ० हरम धार । ८. का० में और है : वीवीयां हरम द्वार जाती चीन्ही । वेगम विवानां कुं ताजीम कीनी । [अनावश्यक विस्तार लगता है।] ९. का० अंदरतैं वाहिर आये । १०. का० सलाम कै मिसि करि । ११. का० जमा मसीत कुं धाए । १२. अ० में इस अंशकी दो क्रम-संख्याएँ भी दी हुई हैं, पाँचवें वाक्यपर क्रम-संख्या '१९' है, अन्तिमपर '२०' ।

अर्थ—[इतनेमें] बीबी (बिवानां) आ गयी । मालिनने [शाहज़ादेको] सच्चा जाना । [किन्तु] शाहज़ादेने उसे शैतान [ही] समझा । जो आता, उससे वह पूछता ही रहता, "[क्यों] रे, जुमारात कब है ?" पूछते-पूछते जुमारात आ गयी । बीबी (बिवानां) हरमके द्वारको दौड़ी । सुल्तान परमेश्वरके बार-ए-आम (आम दरबार) में उपस्थित हुआ । इतने ही (इसी) बीच राजकुमार जुमा मसजिद आया ।

---

* का० में यहाँ और है : तुमहो दुनीयांदार साहजादे । वहाँ दावल के आगै बहुत दिवादे । साहिवां हाथ टुकरा एक पावै । हमारे कहे बुरां मत भावै । फकीर होवै आसका लेपे । तो दावलके दरवार साहिवां देपे । [यह अंश अन्य प्रतियोंमें नहीं है और पूर्ववर्ती दोहेके कथनका विस्तार-मात्र है, इसलिए प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता है ।]

टिप्पणी—सइतान<शैतान [अ०] = धर्मसे भ्रष्ट करनेवाली एक प्रकार-की शक्ति। सदि = ही। कदि<कदा = कब। बाराम<बार-ए-आम [फा०] = दरबार-ए-आम, सार्वजनिक राजसभा। बारी [फ़ा०] ईश्वर। जमा<जुमा [अ०] = शुक्रवार, शुक्रवारकी नमाज़। मसीति<मसजिद।

[२१]

[1]“दरेस सइ पंच”[2] ‘आसाउरी’[3] करते हइ।
‘दरेस सइ पंच’[4] ‘भांग के नूते’[5] दीदे ‘घूरते’[6] हइ।
‘दरेस सइ पंच’[7] पुदाइ की वंदिगी करते हइ।
‘दानसवंद कइ घर हतइ सहन केहु को वाटइ चाहते हइ’[8]॥[9]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है: तहा पल्कका तमासा देष्या। [यह वाक्य प्रासंगिक है किन्तु अन्य दो प्रतियोंमें नहीं है, इसलिए सन्दिग्ध लगता है। २, ४, ७. ध० दरवेस सइ पांच, का० दरवेस सुं पंच। ३. ध० का० राग आसाउरी। ५. का० मूठी भांगकी पाई है, ध० भांगिके भूते। ६. ध० घोरते। ८. ध० दानसवंदके घर हतइ सहनको की वाट चाहते हइ, का० दरवेस से पांच जिकर करते हैं, ध० दानसवंधन कइ घर हतइ सहन केहु की वाटइ चाहते हइ। ९. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है और वह है ‘२१’।

अर्थ—[वहाँ उसने देखा,] पाँच सौ दरवेश (फ़क़ीर) [राग] आसावरी कर रहे हैं, पाँच सौ दरवेश भाँग (भंग) के द्वारा प्रेरित (नशेमें आये हुए) आँखें घूर रहे हैं, और पाँच सौ दरवेश (फ़क़ीर) परमेश्वरकी सेवा (प्रणति) कर रहे हैं। और वे दानिशमन्दके घरसे सहन तक किसीकी बाटमें देख रहे हैं।

टिप्पणी—दरेस<दरवेश [फ़ा०] = फ़क़ीर। नूत<णुत्त = प्रेरित, क्षिप्त। वंदगी [फ़ा०] = सेवा, प्रणति।

[२२]

साहिजादे चादरि सिर उपरि (उप्परि) लीनी।
दोस्तान दोस्तान ‘करि’[1] हस्तक्यां दीनी।[2]
सापका ‘सोरंभ’[3] आया।

अगर 'जाती'[८] जनाया।
'गुलांबीयां जागी'[५]।
डुक एक जमा 'मसीति'[६] 'भिस्तक्यां भोरइ लागी'[७] ॥[८]

पाठान्तर—१. घ० करतइ। २. का० में इस वचनिकाके प्रथम दो वाक्यों-
स्थानपर है : तहां तरकस वंव हदक कुं चोटां करते हैं। तहां पलक
मासा देपनै कुं आवते है। पांन पांनजादे। मलक मलकजादे। मीयां मीयां-
दे। बगमीस पावते है। सादाने वागे। निवाज करनै सुल्तांन लागे ['हदफ'
शाना लगाने (लक्ष्य-वेव) को कहते हैं। मसजिदके प्रसंगमें 'हदफ़' का यह
मां सर्वथा अप्रासंगिक लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि का० के किसी
जमे ये दो वाक्य छूट गये थे अथवा अपाठ्य हो गये थे; इन्हीकी पूर्ति
समें किसीने 'हदफ' की कल्पना करके की है।] ३. घ० सुवास। ४. घ०
ती का। ५. का० गुलाव गई। ६. का० मस्जीति। ७. घ० भिस्तकी घोर
ागी, का० [भि] स्ति कै भोले भई। ८. अ० के इस अंगकी क्रम-संख्या दी हुई
और वह है '२२'।

अर्थ—राजकुमारने चादर सिरके ऊपर कर ली और 'दोस्तों' 'दोस्तों'
हकर उपस्थित लोगोंको उसने हस्तकियाँ दीं। शाख़ (पक्वान्न-विशेष) की
रभि आयी जब उसमें अगर और जातीफल जान पड़े। गुलाबी [सुगन्ध]
ाग पड़ी और जुमा मसजिद एक क्षण [के लिए] विहिश्त (स्वर्ग) की
ळमें (जैसी) लगी।

टिप्पणी—हस्तकी = हाथ, मिलनेका हाथ। साख < शाख़ [फ़ा०] =
ाल, पक्वान्न-विशेष। सोरंभ < सौरभ = सुरभि। ज < यदा = जब।
स्त < विहिश्त [फा०] = स्वर्ग।

[२३]

'जो दरेस ज्युं था त्युं ही धाया'[१]।
'अवे पुदाइ की फिरस्तइ आया'[२]।
'इते वीच साहिजादइ'[३] 'किसहू की डीवी
किसहू की डांगी'[४] 'किसहू की पालरी चोरी'[५]।
'दीनु'[६] लीया 'दुनया विछोडी'[७] ॥[८]

पाठान्तर—१. का० ठौर ठौर ते दरबेस धाए। २. ध० अवे पुदाइके फिरस्ते आए, का० दौरो वे पुदाइके फिरस्ते आए, अ० अबे पुदाइकी फिरस्वंइ (फिरस्तइ) आया। ३. का० इतनै ही बीचि साहिजादै। ४. ध० में यह वाक्यांश नही है, का० किसही की सहन क डीबी किसही की डांगरी, अ० किसऊ (<किसहू) की डी किसऊ (<किसहू) की डांगी। ५. का० किसही की पलरी चुराइ लीनी। ६. का० दीन। ७. ध० दुनियारी, का० दुनियां तरक दीनी। दोसतान दोसतांन करि दोस्तपोसी कीनी। ८. अ० में इस अंश की क्रमसंख्या भी दी हुई है और वह है '२३'।

अर्थ—जो दरवेश (फ़क़ीर) जैसा था, वह वैसा ही दौड़ पड़ा [और कहने लगा] "रे, ख़ुदाका फ़रिश्ता (दूत) आया।" इसी बीच शाहज़ादेने किसी [दरवेश] की डीबी (हाँडी = भिक्षा-पात्र), किसी [दरवेश] की डाँगी (यष्टि) और किसी [दरवेश] की खल्लरी (थैली) चुरा ली। उसने [अब] दीन (धर्म) [का वेष] लिया और दुनिया छोड़ी (दुनियादारीका वेष छोड़ा)।

टिप्पणी—फिरस्ता<फ़िरिश्तः [फा०] = देवदूत। डांगी<डंगा [दे०] लाठी, यष्टि। खल्लरी<खल्लय [दे०] = थैला।

[२४]

दीवे 'तग्गे'[१]।
'सादा नई वग्गे'[२]।[३]
'निवाज करणइ सुलतांण लग्गे'[४]।
इतई बीच साहिजादा दावल कइ दरवारि जाइ 'वग्गे'[५] ॥[६,७]

पाठान्तर—१. ध० लागे, का० जागे। २. का० सादीनां यागे, ध० सादाना वगे। ३. ध० में और है : तारां तगे। ४. का० सब कोऊ निवाज करने लागे। ५. ध० रगे। ६. का० में यह वाक्य नही है। ७. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '२४'।

अर्थ—दीपक लग (जल) गये और शब्दों (वाद्यों) को बजाया गया। सुलतान नमाज़ [अदा] करने लगा। इसी बीच राजकुमार दावर [दानिशमन्द] के द्वारपर जा पहुँचा।

टिप्पणी—दीवा<दीअअ<दीपक । नाद<नद्द<शब्द=वाद्य । दावल<दावर [फा०] = न्यायकर्त्ता । वग्<वल्ग्=जाना, गति करना । दर [फ़ा०] दरवाजा । बार<द्वार=दरवाज़ा ।

[२५]

'अप्पाण पर डर ।
गया जे आण मर ।'[1]
ये दावल 'दानसवंद'[2] का घर ।
दोस्तान दोस्तान 'भत्तु लाओ'[3] ।
'कुछु पाहु'[4] 'कुछ'[5] पुलावहु ॥[6], [7]

पाठान्तर—१. घ० आपनपर डरु गया जुवानु मेर, का० आपन डर पर डर, जोगन गए मर । २. का० दानममंद, अ० दानसवंद । ३. का० तत्ता भत्तु ल्याव । ४. का० कछु पावहु । ५. का० कछु । ६. का० मे और है : ल्याव न तत्ते भात । ७. अ० मे इस अंशकी क्रम संख्या भी दी हुई है और वह है '२५' ।

अर्थ—अपना और पराया (अपने और परायेका) डर गया, और जो आन (अभिमान) था, वह मर गया । [शाहज़ादेने कहा,] "रे, यही दावर (न्यायकर्ता) दानिशमन्दका घर है ! दोस्तो, दोस्तो, भात लाओ, कुछ खाओ और कुछ खिलाओ ।"

टिप्पणी—अप्प<आत्म । आण<आज्ञा; किन्तु यहाँपर आशय 'अभिमान' से है । भत्त<भक्त=भात, उबाला हुआ चावल ।

[२६]

'साहिवां सहिन क्यां'[1] भरी हइ ।[2]
देवर ढढ्ढिनी 'अगाइ'[3] परी हइ ।
'दरेस दोस्तान भत्तु लइ आवनइ हइ'[4] ।[5]
दीदे भूपे 'ढुहूं के'[6] मुझइ 'धावनइ'[7] हइ ॥[8]

पाठान्तर—१. का० आगे साहिवा सहनका, अ० साहिव्यां सहिन क्यां । २. घ० में पिछली वचनिका [२५] के दावल' शब्दसे आगे यहांतकका अंश नहीं है—जो भूलसे छूटा हुआ है । ३. का० आपै, अ० अगइ (=आगइ) ।

४. घ० दरवेस दोस्त भात लेहइ कि न लेहइ आवणइ ही, का० दरवेस दोस्तांन तत्ता भात लेते हैं। ५. का० में यहाँ और है: एते मैं साहिजादा आवै है। ६. घ० हइ। ७. घ० घ्यावणइ आए, का० सोचना, अ० घावन। ८. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '२६'।

अर्थ—[शाहज़ादेने देखा] साहिबा सखियोंकी (से) भरी है और देवर ढाढिनी [उसके] आगे खड़ी है। [ढाढिनीने कहा,] "दरवेशो और दोस्तो, [तुम्हारे लिए] भात ले आना है। दोनोंके नेत्र भूखे हैं, [जिससे] मुझे [उनके लिए] दौड़ना है।"

टिप्पणी—सही < सखिन् = सहेली। भत्त < भक्त = भात, उबाला हुआ चावल।

[२७]

[1]पेरो साहिं साहिजादा 'कुतवदी'[2]
दावल 'दानसवंद'[3] 'साहिजादी साहिवां'[4]
ढढ्ढिनी गाइवां 'ही'[5] 'गुमांन'[6] वोली
[7]साहिवां 'दीदे'[8] 'उनइ'[9]।
'वुन्नइ'[10] साहिजादा षरा हइ।[11]

पाठान्तर—१. घ० का० मे 'सुलतान' और है। २. का० कुतवदीन। ३. का० दानसमंद। ४ घ० साहिजादी साहिवा कूं, का० साहजादा दोनूं की नजर एक हुई। ५. का० में नही है। ६. घ० गुमानि। ७. का० मे 'अए' और है। ८. घ० दीदो, का० मे यह शब्द नही है। ९. घ० नइ, का० उनए। १०. घ० विनइ, का० विनए, अ० दुन्नइ (<वुन्नइ)। ११. अ० मे इस अंश-की क्रम-संख्या दी हुई है और वह है '२७'।

अर्थ—"फीरोज़शाहके शाहज़ादे कुतुबुद्दीन" [ढाढिनीने कहा,] "[यह है] दावर दानिशमन्दकी शाहज़ादी साहिबा", ढाढिनीने गैबों (परोक्ष) में ही अभिमानपूर्वक कहा। "साहिबा, नेत्रोंको ऊँचाकर, शाहज़ादा उद्विग्न ही खड़ा है।"

टिप्पणी—गाइब < गैब [अ०] = परोक्ष। गुमान [फ़ा०] = घमण्ड, अहंकार, गर्व। उनव् < उण्णाम् < उद् + नमय् = ऊँचा करना। वुन्न < उण्ण [दे०] = उद्विग्न।

[२८]

दूहा : दीदे 'दिग्ग उचाइयां',[1] 'साहिव'[2] साहिव 'अंगि'"[3] ।
जाणे 'अग्गि अणंगियां, पडी'[4] 'पुराणइ दंगि'[5] ॥[6]

पाठान्तर—१. घ० दिघ उचाहियां, का० दिग्ग उचाइए, अ० दिघ उचाइयां। २. का० साहिवां। ३. का० में नहीं है, अ० अंगा (<अंगी< अंगि)। ४. घ० आगि अनंगियां परे, का० अंगनि अंगीया परे, अ० अगि (=अग्गि) अणंगियां पडी। ५ घ० पुराणे दंग, का० पूराणे द्रंग। ६. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '२८'।

अर्थ—साहिबाने साहब (शाहज़ादे) के शरीरपर जब [अपने] बड़े नेत्र उठाये, तो [शाहज़ादेको ऐसा प्रतीत हुआ] मानो [किसी] पुराने द्रंगमें [आक्रमणकारी] अनंग [के जलते हुए अग्निपिण्डों] की आग पड़ गयी हो [जिससे उसमें हलचल मच गयी हो]।

टिप्पणी—पुराण = पुरातन, पुराना। दंग<द्रङ्ग = महानगर।

[२९]

[1]'साहिजादे' [2]साहिबीयां, ढढ्ढनि ढुंढे 'मंझि'[3] ।
जाणे जीवण इक्करा, 'वे पुड कीन्हा भंजि'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. का० मे यहां 'ढढणी वायक' और है। २. का० साहिजादां। ३. का० मुझ। ४. घ० वे पुर कीन्हें भंजि, का० दोइ पुड काना मंझ। ५. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '२९'।

अर्थ—ढाढिनीने [इस समय जब] शाहज़ादे और साहिबामें मध्य (अन्तर) [के तत्त्व] ढूँढे, तो [उसे ऐसा लगा] मानो एक ही जीवनको तोड़कर दो पुटों (शरीरों) में कर दिया गया हो।

टिप्पणी—मंझ<मध्य = अन्तर। इक्करा<इक्क + डा<एक = अकेला। वे<द्वि = दो। पुड<पुट = पात्र, शरीर।

[३०]

[1]वचनिका : साहिजादे के पवे 'फुरकणइ'[2] लागे ।
मालिनी के 'ऊँसान (औसान)'[3] भागे ।[4]
साहि साहिवां 'ऊंचाई'[5] ।
तउ कहइंगे ढङ्गिनी 'तइ'[6] हुई वुराई[7]।।[8]

पाठान्तर—१. का० मे यह पूरी वचनिका परवर्ती दोहेके वाद आयी है। पुनः का० में इसे 'वात' कहा गया है और इसमें प्रारम्भमे ही निम्नलिखित वाक्य और आता है : ढंढणी साहिजादा कै दिलकी वात पाई। साहिजादा साहिवा कु ले जाण करता है। आसकीके दीदे भरता है। २. का० फरकणै। ३. का० औसान। ४ का० मे यहाँ और है : साहवां कै रंग राता है। जोवण कै मद माता है। ५. ध० ऊंचाई, का० उठाई, अ० उपारी। ६ ध० थी। ७. का० में यहाँ और है : ढढणी न होत तौ साहिवां कुं ले जाता। तव ढढणी कह्या। वैसीन वागा। सुलतांन सुनैगा। तो तुं न लाजैगा। तेरा उपजस परहन वाजैगा। साहिजादा वायक। मेरा जीवन साहिवां। सुलतांन दुहाई। ८. अ० में इस अंशकी क्रम संख्या भी दी हुई है, और वह है '३०'।

अर्थ—शाहज़ादेके ख्वे (कन्धे) फड़कने लगे, [तो] मालिन (ढाढिनी) के होश-हवास भाग गये (उड़ गये)। [उसने सोचा,] "[यदि] शाहज़ादेने साहिबाको ऊँचाया (उठाया—भगाया), तो [लोग] कहेंगे, यह बुराई ढाढिनीसे हुई है।

टिप्पणी—खवा < खवय [दे०] = स्कन्ध, कन्धा। ऊंसान < औसान [फा०] = होश-हवास।

[३१]

[1-2]'साहिव सारंगी'[3] नयण, 'सारंगा रिपु साहि'[4]।
अंघी 'अंपिनु वट्टडी'[5], 'जाणि गिलंदा ताहि'[6]।।[7]

पाठान्तर—१. ध० ढढणी वाक्य, का० ढढणी वायकं। २. का० में और है 'साहिजादा'। ३. का० साहिवा सारंग अंगीया। ४. का सारंग सा रिपु साइ। ५. का० अंपन वटलां। ६ का० जाणि गलंदी ताहि। ७. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '३१'।

अर्थ—[उसने देखा,] साहिबा शार्ङ्गी (मृगी)के नेत्रोंवाली है, और शाहज़ादा शार्ङ्ग (मृग)–रिपु (सिंह) है, [और, राजकुमार उसे इस प्रकार घूर रहा है] मानो वह आँखों ही आँखोंके मार्गसे उसे निगल रहा है।

टिप्पणी—सारंगी<शार्ङ्गी = मृगी। वट्ट<वर्त्म = मार्ग। गिल<गॄ = निगलना।

[३२]

'तू रस कामंधा'[1] भूपिया, 'साहित वीचु अजांणु'[2] ।
'सांई'[3] 'हाथ'[4] पकावना, पांहि न कच्चा पांन ।।[5]

पाठान्तर—१. ध० तू रस कामंदा, का० तू है रस का मंदा। २. ध० साहिब बीचीया जांण, का० साहि तवीव अजाण। ३. अ० सांइ (सांई)। ४. ध० हाथि, का० हथ। ५. अ० में इस अंगकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '३२'।

अर्थ—[अतः ढाढिनीने कहा,] "[ऐ शाहज़ादे,] "तू रस (प्रेम) और काममें अन्धा और [साहिबाके लिए] भूखा हो रहा है, [अतः] इस वीच (समय) वशीकृत और अज्ञान [हो रहा] है। [इस तथ्यपर ध्यान दे कि] अपने हाथका [बनाया] पकान्न अधिक उत्कृष्ट होता है, इसलिए कच्चा खाना न खा (बिना प्रयासके मिलनेवाले फल-भोगकी इच्छा न कर) !"

टिप्पणी—साहित<साधित = वशीकृत। सांई<स + अति = अतिशय-युक्त, उत्कृष्ट।

[३३]

'आसा 'अंधी'[2] ढड्डिनी, भोग करंदे 'गोर'[3] ।
गज्जइ गयण 'न नच्चिया'[4], पावस हंदे मोर ।।[5]

पाठान्तर—१. यहाँपर ध० तथा का० में है 'साहिजादा वाक्य (वायकं–का०)। २. ध० का० हदी। ३. का० रोग। ४. का० न नच्चही, अ० न नचीया (= नच्चिया)। ५. अ० मे इस अंगकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '३३'।

अर्थ—[शाहज़ादेने उत्तर दिया] "ऐ ढाढिनी, आशा अन्धी होती है, और उसका भोग करते-करते [मनुष्य] गोर (क़ब्र) में चला जाता है, [जैसे देखो,] गगन नहीं गर्जन करता है तो भी प्रावृट्के मयूर नाच उठे (उठते) ही हैं।"

टिप्पणी—गोर < गोर [अ०] = क़ब्र। गयण < गगन। पावस < प्रावृट् = वर्षा।

[३४]

'साहिजादे साहिबियां, साहि 'करंदा लल्लि'[2]।
लज्जा 'लोयिन नच्चणां, लोइ हसंदे कल्हि'[3]॥[4]

पाठान्तर—१. ध० का० में यहाँ और है ढढणी वाक्य (वायकं–का०)। २. का० करंदा लल, अ० करंदे ललिल। ३. ध० लोयन वंचणा लोक हसंदे कल्ल, का० लोयन नच्चणा लोक सुणंदा कल्ह। ४. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है और वह है '३४'।

अर्थ—[ढाढिनीने कहा,] "ऐ शाहजादे और साहिबा, शाह [यदि] इसे अधूरा रखता है, तो लज्जा [में] लोचनोंके [इस] नृत्यको लोक कल (दूसरे दिन) हँसता है (हँसेगा)।

टिप्पणी—लल्लि [दे०] = अधूरापन [दे० लल्ल = न्यून, अधूरा]। लोयन < लोचन = नेत्र।

[३५]

'ढढ्ढिनियां सोना भला, 'लउ (लउं) नि साहिव संग'[2]।
दुनियां दुक्ख 'लगाइया',[3] अति जागणा अरंग॥[4]

पाठान्तर—१. का० मे यहाँ और है : साहिजादा वाक्यं, ध० में है : साहिवा वाक्यं [साहिवा वक्ता नही हो सकती है, क्योंकि पूर्ववर्ती कथन ढढिणी-के द्वारा शाहजादेको सम्बोधित है]। २. ध० लीनी साहिव संग, का० लुएँ साहिब अंग। ३. का० वीचाटणा। ४. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी है और वह है '३५'।

अर्थ—[शाहज़ादेने उत्तर दिया,] "ऐ ढाढिनी, साहिबाका संग ठीक-ही-ठीक मले सोनेके सदृश है। दुनिया (समाज) ने [मले ही] उस [संग] में दोष—(दु.ख) लगा रखा है, और [इस हेतु] उसमें अति जागरण तथा अरंग (प्रीतिहीनता) है।"

टिप्पणी—नि < णिअ < निज = वास्तविक, ठीक ही-ठीक। दुक्ख < दोष। दुःख। अरंग < अ + राग = रागहीनता, द्वेष।

[३६]

'ढढ्ढिनियां 'हीय हत्थ लइ, आरतियां करि हेरि'।[2]
'साहिजादे'[3] सिर उप्परइ, 'मो साहिबियां तन फेरि'[4]।।[5]

पाठान्तर—१. का० मे और है : साहिबा वाक्यं। २. ध० हिय हाथ दे आरतीयां कर हेर, का० हीय अत्थि ले आरतियां कर हेर, अ० हीय हत्थलइ आरतियां करि हेरु। ३. का० साहिजादा। ४. ध० साहिबियां सिर फेर, का० में साहिबां तन फेर। ५. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '३६'।

अर्थ—[साहिबाने कहा,] "ऐ ढाढिनी, हृदयको अपने हाथमें लेकर [शाहज़ादेकी] आरतियाँ कर और उसे देख। राजकुमारके सिरपर तू मुझ साहिबाके तनको फेर (वार) दे।"

टिप्पणी—फेर् < फेड् < स्फेटय् = परित्याग करना, अथवा < फेल् [दे०] = फेंकना, दूर करना।

[३७]

[1]'जउ' [2]जोरां तउ तुज्झ 'ही'[3], 'जउ'[4] गोरां तउ तुज्झ।
एह करंदा मुज्झ 'हइ'[5], 'ईर' (और ?)[6] करंदा 'तुज्झ'[7] ।।[8]

पाठान्तर—१. का० मे यहाँ और है . 'ढढिणी वाक्यं' [किन्तु यह वाक्य स्पष्ट ही शाहज़ादेका है, जिससे ज्ञात होता है कि यह शब्दावली बादमें किसी व्यक्तिके द्वारा अनुमानसे जोड़ी गयी है। ऊपर [२५] मे हमने देखा है कि ध० और का० भिन्न-भिन्न वक्ताओका उल्लेख करती हैं; वहाँपर ध० का

उल्लेख अशुद्ध है। इसलिए ध० तथा का० दोनोंमें मिलनेवाले ऐसे संकेत जो अ० में नहीं मिलते हैं, सन्दिग्ध हैं।] २. का० जे। ३, का० सुं। ४. का० जो। ५. का० सुं। ६. का० होर। ७. ध० का० तुझ। ८. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '३७'।

अर्थ—[शाहज़ादेने कहा] "[अब] यदि (संयोग होता है) तो मैं तेरा हूँ और यदि ग़ोरमें [जाता हूँ] तो भी तेरा ही हूँ। यह तो मेरा कर्तृत्व है, और (शेष) कर्तृत्व तू जाने।"

टिप्पणी—जोरा <जोग+डा <योग = संयोग। गोर <गोर [अ०]= कब्र। करंदा <कर्तृत्व।

[३८]

[1]'इतनी बात 'करतइ सुलताण निवाज्या'[2] कीनी।
'दानसवंदइ'[3] 'अपनइ अपनइ घरह की'[4] 'वाटयां लीनी'[5]।
'पुहर'[6] एक 'चा'[7] राति वीती।
'साहिजादइ आपणइ कपरे कीए'[8] डीवो 'डांग'[9] 'पल्लरी 'अतीती'।[10]
सुलतांण केलि की 'षडकी खडे हइ'[11]।[12]
'किताबइं रहीं किताबा त्यां लीनी'।[13]
देस देस 'मुलक मुलक'[14] 'कुं फुरमांण दीनइ'[15]।
'इतइ वीच साहिजादा पछइ सहं था'।[16]
'सुलतांण सुरति'[17] कीनी। वे 'कुतवदी' तुं[18] कहां 'थां'[19]॥[20]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : 'वात'। २. का० करतां सुलताण निवाज। ३. का० दानसमंद, ध० दानसवंधइ। ४. का० आपणै आपणै घर की। ५. ध० वाद नीन्ही, का० वाट लीनी। ६. का० पहर। ७. ध० का० में यह शब्द नही है। ८. ध० साहिजादे अपणे कपरे लिए, का० साहिजादे कपरे फेरे। ९. ध० दंडी। १०. का० उतारी, ध० तारि अतीता कहुं दीधे। ११. ध० का० पिरकी परे हैं। १२. का० में और है : साहिजादा अपनै मन मैं डरे है। १३. ध० किताव तइं किताव तइं लीनी, का० किताव ही किताव दीनी। १४. अ० मुलकहु। १५. ध० कहुं फुरमाण दीने, का० का परवान कीना। १६. ध० इतई वीचि पीछइ, का० एतै वीच साहिजादा पीछै ही था। १७.

का० सुलतान कै नजर। १८. का० साहिजादा। १९. का० था। २०. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है और वह है '३८'।

अर्थ—इतनी बातें करते ही सुलतानने नमाज़ें कीं, और दानिशमन्दोंने अपने-अपने घरोंकी राहें लीं। एक ही पहर रात्रि बीती [थी], शाहज़ादेने अपने कपड़े पहने तथा डीबी हाँडी = भिक्षा पात्र डाँग (यष्टि) और खलरी (थैले) को उसने दूर किया।

सुलतान केलि (?) की खिड़कीपर खड़े हैं। किताबें रहीं (थीं); उन किताबोंको [सुलतानने] लिया, और सुलतानने देश-देश और मुल्क-मुल्कको फ़रमान दिये। इतने बीच शाहज़ादा पीछे उसके साथ था। सुलतानने उसको याद किया [और उससे पूछा,] "क्यो रे कुतुबुद्दीन, तू कहाँ था ?"

टिप्पणी—चा = ही (दे० दक्खिनी हिन्दी, डॉ० बाबूराम सक्सेना, पृ० ५३)। अतीत् < अती = हटना, जाना दूर होना। किताबी = लेखक। सुरति < स्मृति = याद।

[३९]

चमांऊ 'हाथ'[1] वाह्या।
'हस्तइं हीं वात्यां कीयां'[2]।[3]
बंदा जमा मसीति 'वंदियहु' की 'वंदिगी'[4] देषणइ 'हु'[6] गया था।
'फिरस्ता फिरस्ता करते दरेस वलइ वलइ'[8] 'धाया'[9]।
हमारे हस्तइं हस्तइं दीदे 'दूषणह'[10] 'आया'[11]।[12, 13]

पाठान्तर—१. का० हस्त। २. व० हसतौं ही बात कीनी, का० हसतै बात कीनी। ३. व० में और है : अबे कुतबदी हसतइ किउं दीदे दुपाणे। ४. का० वंदीयन। ५. अ० वंदिकी। ६. का० में नही है। ७. का० में और है : सापका सोस्त आया। ८. का० दरवेस फते करता फरेसता फरेसता करता, अ० फिरस्ती फिरस्ती करते दरेस वलइ वलइ। ९. व० वाये। १०. का० दूषणा। ११. व० आये। १२. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या नहीं दी है, जो कि '३९' होनी चाहिए—यह छूट गयी है।

अर्थ—नमस्कारका (?) उसने हाथ वाहा (उठाया-चलाया) और हसते हुए ही [उसने] बातें कीं। [शाहज़ादेने कहा] "सेवक जुमा मसजिदको

[परमेश्वरके] सेवकोंकी वन्दगी (प्रगति – निवेदन) देखने ही गया था, कि 'फ़िरिश्ता' 'फ़िरिश्ता' करते हुए दरवेश (फ़क़ीर) मेरी ओर घूम-घूमकर दौड़ पड़े और हँसते-हँसते मेरे नेत्र दुखनेपर आ गये ।"

टिप्पणी—चमाऊं = नमस्कारका (?)। वाह् < वाहय् = चलाना। फिरस्ता < फ़िरिश्त : [फा०] = देवदूत। दरेस < दरवेश = फकीर। वल = मुड़ना, वापिस आना।

[४०]

हरमद्वार जाता सुलतांन टुक एक 'मुसक्यानइ'[1] ।[2]
'एतइ वीच साहिज़ादा'[3] 'बीबीय नु'[4] पकरि कइ 'उसही'[5]
महल 'मइ'[6] आन्या ।[7]
'पलंग पर लेट्या'[8] ।[9]
दीदे 'दुराए'[10] ।
कपूर 'पानइ न भावइ'[11] ।
'पानइ की क्या'[12] 'चलावइ'[13] ।
बीबी दूप 'लइनइ कहइ'[14] परि दूपना'[15] न जाणइ ।'[16]
'साहिज़ादे जागतइं वेल्हतइ जगी किरण सुविहाणइ'[17] ।।[18]

पाठान्तर—१. का० मुसकाए। २. का० में और है : साहजादे कुं जुवानी जोर जनाया। आगिना मेटि बाहिर आया। ३. का० इतनी बीचि साहिजादै कुं। ४. ध० का० बीबीया। ५. ध० मे नहीं है। ६. का० अंदर। ७. का० में और है : पर मनका मरम किस ही न जांण्या। ८. ध० लोटाया। ९. का० मे और है : लेटते ही। १०. अ० दुरार (< दुराए)। ११. का० पान न भावइ, ध० पानइ न पाइ। १२. का० तो पावणेकी कोंण। १३. ध० चलाईये। १४. ध० लहइ। १५. ध० पर दुप। १६. का० में यह पूरा वाक्य नही है। १७. का० साहजादे कुं विलपत रैन विहावे, अ० साहिजादे ज़ागतइं वेल्हतइं जगा (< जगी) किरण सुविहाणइ। १८. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '४०'।

अर्थ—हरमके द्वारपर जाते हुए सुलतान एक क्षण मुसकाये। इतने ही बीच शाहजादा बीबी (बिवानां) को पकड़कर उसी [के] महलमें ले आया। वह पलंगपर लेट गया और उसने नेत्र छिपा लिये। [यदि] कपूर और पान ही न अच्छे लगें, तो खानेकी क्या चलाइए? बीबी (बिवानां) [उसका]

दुःख लेनेको कहती थी पर [उस] पीड़ाको नहीं जानती थी। शाहज़ादेके जागते और कलझने [रात्रि बीत गयी और] प्रभातमें किरणें जाग पड़ीं।

टिप्पणी—वेल्<वेल्ल [दे०]=काँपना, कलमलाना, छटपटाना।

[४१]

'इतनी वात्या करतइ साहिजादइ जहमत्यां कीन्ही'[1]।
दुनी साहिजादइ की[2] 'अइ मत्यां'[3] लीनी[4] ॥

पाठान्तर—१. का० इतने बात करता साहजादे जहमतीया कीनी। २. अ० में 'की' नही है। ३. का० ज्यां मतीयां, ध० को मतीयां। ४. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '४१'।

अर्थ—इतनी बातें करते हुए शाहज़ादेने ज़हमत कर दी, [क्योंकि] दुनिया (सांसारिकता—ऐन्द्रियता) ने शाहज़ादेकी यह मति (बुद्धि) ले ली।

टिप्पणी—जहमति<जहमत [फ़ा०] = आपत्ति, बखेड़ा।

[४२]

[1]'फजरि हूई'[2] 'तबीबइ तबीब लाग्या'[3]।
'ओपदइ ओपद मांग्या'[4]।
'बीबियां'[5] सहित सुलतांण 'जाग्या'[6]।
महल 'मइ'[7] आवनइ 'इंद्र का गर्व भाग्या'[8]॥[9]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : बीबीयां जागी। कहने लागी। बीबीयां सहत अगां जागी। अफनावका किरन फूटत नही। नव बीबीयां फरपनै लागे। २. ध० का० में नही है। ३. ध० तबीबां तबीद लागया, का० तबवा तबीब (<तबीब) लागे। ४. का० में नहीं है। ५. का० हरमां। ६. का० जागे। ७. का० तै। ८. का० ज्यु इंद्रका गर्व भागे। ९ अ० में इस अंशकी क्रम संख्या भी दी हुई है और वह है '४२'।

अर्थ—प्रभात हुआ। वैद्य-ही-वैद्य [उसके उपचारमें] लग गये और उन्होंने ओषधें ही-ओषधें माँगी। बीबी (विवाहितां) के साथ सुलतान [भी] जागा। महलमें उसके आते (पधारते) ही इन्द्रका [भी] गर्व जाता रहा।

टिप्पणी—तबीब [फा०] = वैद्य

षांन षांनजादे ।[1]
मलिक मलिकजादे ।
'मीयां मीयांजादे'[2] ।
'दरबार देषतइ दरिया का गर्व वादे'[3] ।।[4,5]

पाठान्तर—१. का० मैं यहाँ 'मीर मीरजादे' और है। २. का० में यह वाक्य-खण्ड नही है। ३. का० दरवार जुरे षरे है। ४. ध० में इस वचनिकाका कोई वाक्य नही है। [उसमें यह छूटा हुआ लगता है, क्योंकि उसी शाखाकी दूसरी प्रति का० में यह है।] ५. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '४३'।

अर्थ—[उसके साथमें] खान और ख़ानज़ादे, मलिक और मलिकज़ादे मियां और मियांज़ादे [इतने थे कि] उस दरबारको देखते ही समुद्रका गर्व चला जाता।

टिप्पणी—वाद् <वा = गमन करना।

[४४]

[1]'तबीब तमांम सब सुलताण कोके'[2] ।
'दानसवंद'[3] पानी अंजरणइ लागे' ।[4]
'मंत्रहु परजनइ लागे'[5] ।।[6]

पाठान्तर—१. का० मे यहाँ और है : तिस समय आवते पातिसाह इंद्रका गर्व घटया। उस राउ के उभार घर दरवार उपड्या। ३. अ० दानसवंघ। ४. यह वाक्य का० में नहीं है। ५. ध० मित्रहुं परजरणे लागे। ६. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '४४'।

अर्थ—समस्त वैद्योंको सुल्ताननें बुलाया। दानिशमन्द [आ-आकर] अंजलियोंमें पानी लेने लगे और मन्त्रोंको [पढ़-पढ़कर उसे] पिलाने लगे।

टिप्पणी—कोक् <कोक्क् [दे०] = बुलाना, आह्वान करना। अंजरण = अंजलीमें लेना। परजण <पायन = पिलाना, पान कराना।

[४५]

जोइ 'दानसचंद'[1] आनइ पानी 'अंजरइ'[2]।
'तिसही सुं'[3] पुकारइ।
'अये साहिवां'[4] 'नजरि'[5] साहिवां नजरि।
ना जाणुं 'नसासा'[6] न जाणुं फजरि ॥[7]

पाठान्तर—१. का० दानगमंद, अ० दानगवंध। २. ध० अंजरणे पिलावद, का० अंजरी भरे। ३. ध० किसही हुई हुई। ४. ध० का० में नहीं है। ५. का० नजरि वे। ६. ध० का० निमामाम। ७. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '४५'।

अर्थ—जो ही दानिशनन्द आता और अंजलीमें पानी लेता, [शाहज़ादा] उसीसे पुकारता, "अरे, साहिबांकी नज़र। साहिबांकी नज़र! न मैं रात्रि जानता हूँ और न प्रभात।"

टिप्पणी—नसासा<निवास = रात्रि। फजर<फ़ज्र [अ०] = प्रभात।

[४६]

'वार दुइ च्यारि यों ही पुकारयां।'[1]
'तव सुलतांण'[2] रिसाणा'।[2]
एक 'पुंगरा'[3] मेरइं 'हो पुराणा'[4]।
'जमामसीति'[5] देषणइ गया था।[6]
दरेस हु 'नजरि की दीया'[7]।[8,9]

पाठान्तर—१. का० में नहीं है और अधिक है: सुरतांन मुम्क नूं कही मैं जमाममीत गया था वर। वेसै किस ही नजर कीनी। २. ध० तब मुल्तान रिसाया, का० सुल्तांन दरवेस ऊपरि रिसाने, अ० तब सुरतांण रिसाणा। ३. का० पूगरी। ४. का० सो भी पुराने। ५. ध० जमा भसीति वंदिगीयोंकी वदिगी। ६. का० मे यह वाक्य नहीं है। ७. ध० परका दीया। ८. का० में यह वाक्य नही है। ९. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या नही दी हुई है—जो कि '४६' होनी चाहिए।

अर्थ—दो चार बार [जब शाहज़ादेने] इसी प्रकार पुकारा, तब सुलतान रुष्ट हुआ। [और उसने कहा,] "मेरा एक [ही] पुराना (प्रौढ़ सयाना)

बालक था। वह जुमा मसजिदको देखने गया था, तो दरवेशोंने [उसपर] नज़र कर दी।"

टिप्पणी—पुंगरा (१) <पुद्गल + क = बालक, अथवा (२) <पौगण्ड = किशोर।

[४७]

'हाला कइ'[1] मारणा न 'थी'[2] ।
डीवो डांग पल्लरी 'न जाणुं कहां थी लीन्ही'[3] ।
'दिल्ली सहर मइ ए ज घेरे'[4] ।
'अबे फिरस्तइ फेरे'[5]।।[6]

पाठान्तर—१. का० हाल वै, ध० हलकै कउं । २ ध० था । ३. का० किसही की थी तो क्या हूवां, ध० न जाणा कही थी लीन्ही, अ० न जाणुं कहां थी । ४-५. का० में ये वाक्य नही हैं, ध० में इनके स्थानपर है : डिली सहर मांहि फिरस्ते फिरस्ते फिरे । ६. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '४७' । इसके बाद अ० मे सम्मिलित क्रम-संख्या नहीं दी हुई है, बीच-बीचमें आनेवाले दोहोंकी स्वतन्त्र क्रम-संख्याएँ हैं।

अर्थ—[इस प्रकार] घेर करके उन्हें [मेरे शाहज़ादेको] मारना नहीं [चाहिए] था । पता नहीं, डीवी (हांडी) डाँगी (यष्टि) और पल्लरी (थैली) उसने कहाँसे ले ली थी। दिल्ली शहरमें जब इन्होंने [उसे] घेरा, [ये कहने लगे] "रे, यह तो फिरिश्तेने फेरा लगाया है।"

टिप्पणी—हाला <हाल. [अ०] = कुण्डल, मण्डल, घेरा।

[४८]

[1]इतनइ 'करत'[2] बीबी बिबानां 'आई'[3] ।
सुलतांण 'क्या रिसाई'[4] ।
फकीर 'मारणा'[5] हइ कि जियावणा हइ[6] ।
[7]माल वारणा'[8] हइ ।
साहिजादे के सिर उपर अवारणा'[9] हइ ।[10]
'फेरणा हइ'[11] ।

'फेरतउ फेरतइ षुदाइ रहम करइगा'[१२] ।
पूब थी पूब होइगा'[१३] ।
तबीब तमाम दूरि 'करउ'[१४] ।
मेरे कुं 'सहम'[१५] होइगा ।

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है: इतनी बात करते बीच दरवेश फकीर मंगावे । २. ध० बात करते, का० बीच, अ० करत । ३. का० आए । ४. ध० तुम्ह क्या रिसाणा । ५. का० मारने । ६. ध० पोना ही, का० जीवावने है । ७. ध० में यहाँ 'तु' और है । ८. ध० वारणा, का० उवारना । ९. धका० उवारणा । १०. का० में यहाँ और है: फकीरां मानुं माल उवारनां है । फकीरा नुं माल वांटना है । ११-१२. का० मे नहीं है । १३. ध० गुन्जान देना पूब हद, का० षुदाइ षुदाइ षूबका षूब करेगा । १४. ध० करो । १५. का० साहम ।

अर्थ—इतना ही करते (कहते) दीवी विवानी आयी । [उसने कहा] "सुल्तान, क्यों रुष्ट हुए [हैं] ? फ़कीरोंको मारना है या जिलाना है ? इसे [शाहज़ादेके ऊपर] द्रव्य वारना है, और शाहज़ादेके सिरपर वारना है, फेरना है [और वार-फेरकर उन्हें देना है]। [द्रव्य] फेरते-फेरते परमेश्वर कृपा करेगा। भले [कार्य] से भला होगा। सारे वैद्योंको दूर करो। मुझे उनसे भय होगा।"

टिप्पणी—माल [फ़ा०] = धन, दौलत । सहम [फ़ा०] = भय ।

[४९]

'अमा आणि आगइ परी हुई'[१] ।
[२]'साहिजा मुझइ जाणता हइ ।[३]
हां 'मां'[४] 'जांणता हूं' ।[५]
'फेरिवे दस लाष टके सिर उप्परइं' ।[६]
सुलताण 'दइंणा'[७] पूब हइ ।[८]
'पूब तइ पूब होइ ।'[९]
'साहिजा साहि कहां ।'[१०]
पलिंग तइं उतरि 'करि'[११] 'सलांम कुं ताई हूआ' ।[१२]
'तहां' ।[१३]

'फेरिये दस लाख टके उर (उंर) सिर उपरइं'।[14]
'सुलतांण दइणां खूब हइ'।[15]

पाठान्तर—१. का. में नहीं है। २. का. में और है: बीवी बिवानां बोली। ३. का० में यहां और है: पहचांनतां है। ४. का० अमां। ५..घ० का० में नही है। ६. का० में नहीं है। ७. घ० दीया। ८.–१०. का० में ये वाक्य नही हैं। ११. का० मुइं आंगुली घरी। १२. का० सलांम करणेंकी त्यारी करी, घ० सलाम कूं ताइ हूवा हइ, थ० सलांम कुं तई हूआ। १३. का० दिठ मूठी, घ० आवत हीं। १४. का० भूत प्रेत डाकिनी शाकिनी के घर्के फरे। १५. का० में नही है।

अर्थ—[तदनन्तर शाहज़ादेकी] माता (बिवानां) आकर उसके आगे (सामने) खड़ी हुई। [उसने पूछा,] "राजकुमार, मुझे जानता (पह-चानता) है ?" [शाहज़ादेने कहा,] "हाँ माँ, जानता (पहचानता) हूँ।" [बिवानांने कहा,] दस लाख टके इसके सिरके ऊपर फेरने है। सुलतान, दान करना भला है। भले कार्यसे भला होता है।" [फिर उसने शाहज़ादेसे पूछा,] "शाहज़ादा, शाह (सुलतान) कहाँ है ?" [इस प्रश्नको सुनकर] शाहज़ादा पलँगसे उतरकर सुलतानको सलाम करनेको उद्यत हुआ [और बोला,] "यहाँ"। [बिवानांने कहा,] "दस लाख टके और [इसके] सिरके ऊपर फेरने हैं। सुलतान, दान करना भला है।"

टिप्पणी—खूब < खूब [फ़ा०] = अच्छा, भला।

[५०]

यों करतइं दिण 'गरचा'[1] राति पाई।[2]
'जाणु'[3] 'साहिजादे की'[4] दूसरी वइरणि आई।
'ओही हालु'[5]।
जोई दानसवंद अवइ पांणी 'अंजरइ'[6]।[7]
तिस ही सुं 'यों कहइ'[8]।[9]
'साहिबां नजरि साहिबां नजरि।'[10]
न जाणु 'नमासा'[11] न जाणु फजरि।[12]

पाठान्तर—१. थ० गिरचा। २. का० में यह वाक्य नहीं है। ३. का० फिर। ४. का० साहिजादा कै। ५. घ० उही हाली, का० राति दिन तलफते

विहाई । ६. घ० अंजरै पिलावै । ७. का० मे यह वाक्य नहीं है । ८. घ० इंउ ही ज पुकारचा । ९. का० में यह वाक्य नही है । १०. का० में यह वाक्य भी नही है । ११. घ० निवासाम । १२. का० में यह वाक्य भी नहीं है ।

अर्थ—इस प्रकार करते-करते दिन गला (गया) और [शाहज़ादेने] रात प्राप्त की; मानो शाहज़ादेकी दूसरी वैरिन आ गयी हो; जो ही दानिशमन्द आता [और] अंजलीमें पानी लेता, उससे ही [शाहज़ादा] यों कहता, "साहिबांकी नज़र ! साहिबांकी नज़र ! न मैं रात जानता हूँ और न प्रभात !"

टिप्पणी—नमासा < निवास = रात्रि । फजर < फ़ज्र [अ०] = प्रभात ।

[५१]

यों करतइ रोज दुइ च्यारि 'गले'[1] ।[2]
'तबीवह'[3] हाथ 'धरे'[4] ।[5]
'सुलतांण'[6] षांन छंड्या ।
'बीबी हुं'[7] 'रोवणां'[8] मांड्या।
'दीली मांहि सोर परया' ।[9]
'साहिजादे सुं सइतांण लरया'[10] ।[11]
तबीब 'होते ते'[12] सुलतांण कोके ।
'आणि दरबार रोके'[13] ।
'साहिजादे कुं'[14] 'जीयावणा'[15] ।
'कइ साहिजादे कइ साथि 'गोर सइ वाहणा' ।[16]

पाठान्तर—१. घ० गिरे । २. का० में यह वाक्य नही है । ३. का० तबीब थे तिसनै, अ० तबीवह । ४. घ० झारे, का० डारे । ५. का० मे और है : सजनके उर जारे । ६. अ० सुरताण । ७. का० बीबीयां । ८. घ० रोज । ९. का० दीली बीच सोर जागे । १०. का० साहिजादे कै सिर कुं तान लागे, घ० साहिजादा कुं सइतान लरया । ११. यहाँ अ० में और है : एक कहत दे सइताण मारणा । एक कहत बाबा आदम बिगोया । 'सइतान' वाली उक्ति तो पूर्ववर्ती वाक्यमें आ ही गयी है, केवल 'एक'के स्थानपर 'सइतान' की संख्या 'वे' = दो हो गयी है । १२. घ० तमाम सबका सब । १३. का० मे नही है । १४. घ० साहिजादा । १५. का० जीलावनां । १६. घ० कइ साहिजादा स्युं सब घोरि वाहणां, का० नही तो तबीबां कुं साथि घोरमें वाहिना ।

अर्थ—इस प्रकार करते-करते दो-चार दिन गले (व्यतीत हुए) और वैद्योंने हाथ रख दिया। सुलतानने खाना छोड़ दिया और बीबी (विन्नानां)ने रोना प्रारम्भ किया। दिल्लीमें शोर पड़ गया कि शाहज़ादेसे शैतान लड़ पड़ा है। जो भी वैद्य थे, सुलतानने उन्हें बुलाया और दरबारमें उन्हें रोककर कहा, "तुम्हें शाहज़ादेको जिलाना है, अथवा शाहज़ादेके साथ [मुझे] तुम्हें भी क़ब्रमें झोंकना है।"

टिप्पणी—तबीब [फ़ा०] = वैद्य। कोक <कौक्क = बुलाना, आह्वान करना।

[५२]

[१]दावल 'कुं'[२] तीनि रोज 'हुए षाणा षायां'[३]।
साहिवां ढढणी सु 'कहे'[४]।[५]
दूहा। साहिवा वाक्य।
'ढढ्ढणि या'[६] णीको करी नीकीय[७] 'नारी देषु'[८]।
नारी 'अत्थि'[९] 'तदोष कुं'[१०] 'नत्थि'[११] 'तदोष न लेषु'[१२]॥

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : एतै वीचि दावल कै घरि ढाढणी गई। साहिवां बोली ढढणी सुं कह्या। २. का० का। ३. ध० भए पाणा पायां, का० भए षांणइ पाया, अ० हुए। ४. ध० कह्या। ५. का० में और है : ढढिणी बोली मैं क्या जाणु, ब० में और है : कम बावा कू तीनि रोज भए पाणा पायां। हूं क्या जाणूं। ६ ध० ढढणि यां, अ० ढढणि आ। ७. ध० परी। ८. का० नीकीय नारी देषि, अ० नीषीय नाडी देषु। ९. ध० हत्थ, का० हाथ। १०. त्रिदोष कुं, अ० तदोषु को। ११. ध० नत्थ। १२. का० त्रिलोष न लेषि।

अर्थ—[यहाँ] दावर (न्यायकर्ता)—दानिशमन्दको [साहिवाकी अस्वस्थताके कारण] खाना खाये तीन दिन हो गये, तो ढाढिनीसे साहिवाने कहा : "ऐ ढाढिनी, तूने यह अच्छा किया [कि तू आ गयी]। अब [मेरी] नाडी भली [भाँति] देख। नाडी त्रिदोष [होने] के लिए है अथवा नहीं है, और क्या तैं त्रिदोष नहीं देख रही है ?"

टिप्पणी—दावल <दावर [फा०] = न्यायकर्ता। तदोष <त्रिदोष।

[1]'ओहि ओहि इह तउ उलटी कही'[2]।[3]
'तबीब'[4] नंही। 'तबीब की'[5] जाई नही।
'ढढणि कहि रहि साहिवां बोली'[6]।
'देषि रि दिषुं'[7] 'दिलमै दिल'[8] आया।
नारी [9]'दुइ जाइगहइ हइ'[10]।
'साहिजां की साहिबा की'[11]।

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है: 'ढढणि वायक। वचनिका। २. घ० ताही तइ उलटी कही, का० में यह वाक्य नहीं है। ३. का० में और है: साहिवां हुं। ४. का० तबीबनी। ५. का० तबीबनी की मै। ६. का० ढढणी हु साहिवां कह्या, घ० साहिवा वाक्य। ७. घ० देषु देषु, का० देषि देषि। ८. घ० दिल मै दिल, का० दिल मै, अ० दिल मु ं दिल्ल। ९. का० दोइ जागह हुई, अ० हुइ(<दुइ) जाइगहगइ हंइ। १०. का० में नहीं है।

अर्थ—ढाढिनीने कहा, "वाह वाह, यह तो [तूने] उलटी कही! मैं न वैद्य हूँ और न वैद्यकी मन्वान हूँ।" ढाढिनी कह चुकी तो साहिबा बोली, "देख री, मैं देख रही हूँ कि [मेरे] दिलमें [एक और] दिल आ गया है, [जिससे] नाड़ियाँ दो जगहोंपर [चल रही] हैं: [एक] राजकुमारकी है और [दूसरी] साहिबाकी।"

टिप्पणी—तबीब [फ़ा०] = वैद्य।

५४]

दूहा[1] ॥ ढढ्ढिणि 'ढोरी अंषियां'[2] साहिवा संमुहियांह।
'तइ'[3] तत्ता 'षांन न (ज?) षाइया'[4] दज्झइ 'साहि'[5] 'हीयांह'[6] ॥

पाठान्तर—१. अ० में यहाँ और है: 'ढढिणी वाक्य'। २. का० ढोरै अंषरी। ३. घ० का० में नहीं है। ४. घ० पाण न षाइयां, का० पाणा पाड़्यो। ५. का० समुझि। ६. घ० हिया।

अर्थ—ढाढिनीने साहिबाके सम्मुख आँखें मटकायीं [और कहा] "जो तूने गर्म खाना खाया उसीसे शाहज़ादेका दिल दग्ध हो (जल) रहा है।

टिप्पणी—ढोर् <ढोल् = ढुलकाना, चलाना : संमुह <सम्मुख = सामने आया हुआ । तत्त <तप्त = गर्म । दज्झ् <दह् (?) = दग्ध होना ।

[५५]

'ढढिणी 'बोली'[2] ।
'हम'[3] 'तबहीं'[4] पाई ।
जब 'की'[5] सहण 'क्यां सिराई'[6] ।
'हमारा क्या (कह्या ?)'[7] तूं' पराई ।[8]
'इतनी'[9] 'रतइ कपरे फेरे'[10] ।
'दीदह सुं'[11] दीदे जोरे ।
साहिबां साहिजा 'जीवइगा'[12] ।
'अर दिल्ल मइं की दिल क्या होइगा'[13] ।
इह दिल जोरां ही रहइगा जोरा[14] ही जाइगा'[15] ।

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : चउपाया । २. घ० वाक्य, का० वायक । ३. का० हमहूं तो । ४. का० तवहीका । ५. घ० में नही है, का० तूं । ६. घ० कां सिरि आई, का० कीया सिरहि आई । ७. का० हमारे क्या, घ० हमारा क्या है । ८. का० मे और है : दीदार सुं दीदार लाई । ९. घ० का० इतनी वात । १०. का० कहै वीचि ढढनी कपरे परे । ११. का० दीदा । १२. घ० दाइगा । १३.-१४. का० मे नही हैं । १५. का० इया हजूरी ही महवत पावेगा, अ० जोरी (<जोरा) ही जाइगा ।

अर्थ—ढाढिनीने कहा, "मैंने यह तभी पा (भाँप) लिया था जब [शाहज़ादेके आनेपर] तू सहनके सिरेपर आयी और मेरे करने (कहने ?) पर तू वहाँसे भागी ।" इतना करते-करते (कहते-कहते) [ढाढिनीने] कपड़े पहने और वैद्याका वेष धारण किया । नेत्रोंसे नेत्र मिलाये और कहा, "साहिबा, शाहज़ादा जीवित होगा, किन्तु [तुम्हारे] दिलमें से [उसका] दिल क्या होगा ?" [साहिबाने उत्तर दिया,] "यह दिल [शाहज़ादेके दिलसे] जोड़ा (जुडा) हुआ ही रहेगा और जोड़ा (जुड़ा) हुआ ही [संसारसे] जायेगा ।

टिप्पणी—सहन [फ़ा०] = आंगन । सिराय् = सीझना । पराय् < पलाय् = भागना ।

[५६]

परतीति पाई।
'तबीब'[1] का भेप करि ढाढिणी सुलतांण 'कइ'[2] दरबार आई
'तबीबांनि तबीबांनि'[3] पुकारी।
'जीउ का जाणुं,'[4] क्या स नर क्या स नारी।
'अवाज्यां वाजां'[5]।[6]
'लप'[7] दउड़े।
'हत्थइ हत्थ'[8] लीनी जहां साहिजादा कुतबदीन गाजी।[9]
देपतइं पांणी 'अंजरि'[10] पहर एकइ पुकारथा।[11]
'इओही'[12] साहिबां णजरि 'साहिबां'[13] णजरि।
'न जाणुं'[14] 'नमासा'[15] न जाणु फजरि।[16]

पाठान्तर—१. का० तबीबणी। २. ध० में नहीं है, का० कइ धरि। ३. ध० तबीबानू तबीबानू करि, का० तबीबणी तबीबणी करि। ४. ध० जीव का जानू, का० जीव का जीवन जाणुं। ५. ध० अवाजवा, का० आवाज आवाज जागे। ६. का० में और है: उंपदां (ढंपदां) ढंपद मगे। ७ का० लप एक। ८. का० हाथे हाथ, ध० हाथइ हाथ। ९. का० में यहां और है: तहां वैदनी कुं ले गया ताजी। १०. ध० अंजरि पिलाया। ११. का० में वाक्य है: साहिजादा देपते ही पुकारया। १२. ध० का० मे नहीं है। १३. का० वे साहिबा। १४. का० वे न जाणुं। १५. ध० निमासाम, का० निमासा। १६. अ० में यहां और है 'यो ही पुकारया'।

अर्थ—[इस प्रकार साहिबाकी] उसने प्रतीति प्राप्त कर ली, तो ढाढिनी वैद्याका वेष [धारण] कर सुलतानके दरबारमें आयी। "वैद्या, वैद्या" उसने पुकारा। "मैं जीवका [भी] जीव जानती हूँ, वह चाहे नर हो अथवा नारी हो।" [जब ये] आवाज़ें बजीं (हुईं), लाख [आदमी] दौड़ पड़े। [उन्होंने उसे] हाथों-हाथ लिया और [उसे] वहाँ ले गये जहाँ शाहज़ादा कुतुबुद्दीन ग़ाज़ी था। अंजलीमें पानी [लिये हुए ढाढिनीको] देखते ही वह एक पहर तक पुकारता रहा, "इओही, साहिबाकी नज़र! साहिबाकी नज़र! न मैं रात्रि जानता हूँ और न प्रभात जानता हूँ।"

टिप्पणी—गाज़ी < ग़ाज़ी [अ०] = धर्मरक्षक। इओही—एक उद्गार वाचक अव्यय। नमासा < निवास = रात्रि। फजर < फ़ज्र [अ०] = प्रभात।

[५७]

'ढढिढणी'[१] बोली।
'साहिजादे दीदे न भरु'[२]।
'लज्या न डरु'।[३]
कीया सु करु।
'क्या करहिगा मरु'[४]।
'हथ देपुं'[५]।

दोहा ॥ नारि (नारी) नारि सुहत्थियां नारी नारि सुहत्थ[६]।
'साहिजादइ साहिवां हीयां'[७] 'दुउ'[८] लग्गिया 'सनत्थ'[९] ॥[१०]

पाठान्तर—१. का० वैदनी। २. का० साहिजादा दिल भर। ३. का० लज्या न करि, अ० भजी (<लज्जी) न डरु। ४. ध० क्या करोगे, का० क्या करुंगी। ५. ध० मेरा हाथ देपु, का० देपु मेरे हाथ। ६. का० सु हत्थि। ७. ध० का० साहिजादइ साहवीयां। अ० साहिजादे साहिवां हीयं। ८. ध० का० दुहं। ९. का० सुनत्थ, अ० समत्थ। १०. का० मे और है :

साहिजादा साहिवां विरह जो जीवंदा जाहि।
लजा लोइ उलंघणा सिरि परि पेरो साहि।

अर्थ—ढाढिनीने कहा, "शाहज़ादे, आँखें न भरो! लज्जाको मत डरो! जो कुछ [कार्य] तुमने किये हैं, वे ही [पुनः] करो। मृतक क्या करेगा? हाथ [तो] देखूँ!" [और नाड़ी देखकर उसने कहा,] "[इसके] सुन्दर हाथोंमे नारीकी नाड़ी है, और [इसकी] नाड़ी नारीके सुन्दर हाथोंमें है। शाहज़ादा और साहिवा दोनोंके हृदय भली-भाँति नथकर परस्पर लग (जुड़) गये हैं!"

टिप्पणी—मरु < मडय < मृतक = मुर्दा, अथवा < मढ < मृत = मरा हुआ।

[५८]

[१]साहिजादा बोल्या 'वुझाइयां'[२] वुझाइयां।
'साहिजादे किणि वुझाइयां'।[३]
'जिणि'[४] लगाइयां 'तिणि वुझाइयां'[५]।
अव 'उस सुं'[६] क्या 'करण आइयां'[७]।
'तवीवइ रोग जाण्या।[९]

'रोगीइ'[10] रोग मान्या।
'साहिजादे दीदे देपगइ लागे'[12]।
'तवीब के रोर भागे'[13]।
'पंच सइ सोने के टके पोरइ मि लाओ'।[14]
'फुरमाण हूआ जोइ तउ 'जिलाओ'[15]।[16]

पाठान्तर—१. का०मे 'वचनिका' और है। २. घ० का० बुझाइयां वे, अ० बुझाईया बुझाईया। ३. घ० साहिजादा कवणइ बुझाइयां। अ० साहिजादे किणि बुझाईया, का० में वाक्य नहीं है। ४. घ० जिणही, का० जिणहि। ५. घ० का० तिणही बुझाइयां, अ० तिणि बुझाईया। ६. अ० सु। ७. अ० करण आईया घ० का० करणां। ८. घ० मे 'इसा' और है। ९. का०में यह वाक्य नही है। १०. घ० रोगीयें। ११. का० मे यह वाक्य नहीं है। १२. का० साहिजादा मुप बोलणै लागा। १३. का० तवीबनी का रोर भागा, घ० तवीब का रोर भागा। १४. का० पांच सै टका सोनैका मंगाया। १५. अ० जिलाउं (<जिलाउं)। १६. का० में यह वाक्य नहीं है।

अर्थ—शाहज़ादेने कहा, "बुझा दिया! बुझा दिया!" [ढाढिनीने पूछा,] "किसने बुझाया?" [शाहज़ादेने उत्तर दिया,] "जिसने लगाया, उसीने बुझाया। अब उससे क्या करने आयी हो?" वैद्याने रोग जान लिया, और रोगीने रोगको स्वीकार कर लिया। शाहज़ादेके नेत्र देखने लगे, [इसलिए अब] वैद्याकी परेशानी दूर हुई। [बीबी मिचानाने कहा] "पाँच सै सोनेके टके उपहारमें लाओ।" उसका फ़रमान हुआ, "जिये तो जिलाओ।"

टिप्पणी—रोर<रोल [दे०] = कलह, झगड़ा, बखेड़ा। खोर<खोड = राजकुलमें देने योग्य सुवर्ण आदि द्रव्य।

[५६]

'ढढिढणी बोली'।[1]
जउ सब कोउ कुसादे 'होउ'[2] तउ 'कछू' कहुं।[4]
सद कइ एक फुरमाणं 'लहुं'[5]।[6]
फुरमांण साहि फुरमांण बीबीयां। बोलणा हइ सु बोलि।
पाछइ का 'कीजइ तवीबियां नु'[8]।[9]
जउ कछू 'बोयायां'[10] वजावइ तउ कछू हम गावइ'[11]।[12]

'साहिजादा जिलावइ'[१३] ।[१४]
तमासा एक अवही 'दिखावइ'[१५] ।[१६]
महल 'हतइं'[१७] 'ढोल कई मंदिरि मांगी' ।[१८]
'जवान हुवांगी' ।[१९]
'स्वर'[२०] हूआ 'सोर'[२१] छूट्या ।[२२]
'तबीवइ ओतरइ लागी' ।[२३] ।
'दूहा ज्युं कह्या त्यु' साहिजादा उठ्या'[२४] ।[२५]

पाठान्तर—१. का० तवीवनी कहणै लागी । २. घ० होंहि । ३. घ० कछु एक । ४. का० में इस पूरे वाक्यके स्थानपर है : साहिजादा चंगा होइगा तव मैं ल्युंगी । अव मैं सब पाया । साहिजादा मुष बुलाया । ५. का० पांऊं । ६. का० में यहाँ और है : लोक सब कुंसांद कराऊं । ७. का० मे यह वाक्य नहीं है । ८. घ० कीजेगो तवीबियां । ९. का० में यह वाक्य नहीं है । १०. घ० वीवी । ११. घ० तो हूं गावउं । १२. का० मे यह वाक्य नही है । १३. घ० साहिजादा कउ जिलावउं । १४. का० में यह वाक्य नहीं है । ७, ९, १२, १४. इन वाक्योंके स्थानपर का० मे हैं : तव सुलतान हुकम कीया । वीवीयांनै दौरि सव कुसाद कीया । साहिजादैका फुरमांन पांऊं । तौ ढोल मंजीरा हुडक मंगाऊं । ज्यु कुछ एक गांऊं । १५. घ० दिषावउं, का० दिपाऊं । १६. का० मे और है : साह फुरमाण एक पाया । १७. घ० मैं, क० मैथी । १८. का० ढोल मंजीरा मंगाया । १९. घ० जुवान हूं जगे, अ० ज्वान हुवांगी, का० में यह वाक्य नही है । २०. का० सुर । २१. उंर सुर । २२. का० में और है : पडदा वंधाया । २३. घ० तवीव ऊतरे, का० तवीव ऊवरे । २४. घ० दूहा कंह्या, का० तवीवणी दूहा गाया हुडक वागी । २५. का० में और है : साहिजादै की नगर लागी ।

अर्थ—ढाढिणी वोली, "यदि सब कोई [शाहज़ादेसे] दूर हो [जाओ], तो कुछ कहूँ । यह अवश्य है कि [उसके लिए] एक फ़रमान पा जाऊँ ।" [कहा गया,] "शाहका फ़रमान है, और वीवी (विवानां) का फ़रमान है । तुझे जो कहना है, वह कह । पीछे वैद्याको क्या कीजिए ?" [ढाढिनीने कहा,] "यदि वीवी (विवानां) कुछ वजायें, तो मैं कुछ गाऊँ; शाहज़ादाको जीवित करूँ और अभी एक तमाशा दिखाऊँ । महलसे ढोल अथवा मर्दल मँगाइए और ज़बानसे भी स्वर निकालिए ।" स्वर हुआ तो शोर समाप्त हुआ । वैद्या [गीतके साथ] उतरने लगी और ज्योंही उसने दूहा कहा, शाहज़ादा उठ वैठा ।

टिप्पणी—मंदिरि <मर्दल = मृदंग । जवान <ज़ुवान [फ़ा०] = जिह्वा ।

[६०]

दोहा ॥ ढढ्ढणि 'ढोर समुदीया'[१] मुख मुदिया 'न' जीव ।
साहिब साहि 'कुतविन्नयां'[३] गुण वंधिया 'सुनीव'[४] ॥[५]

पाठान्तर—१. का० दोर समंदीया । २. का० मुनि । ३. का० तवीदियां । ४. अ० मुनीम । ५. अ० में यहाँ '१' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—[उसने गाया,] "द्वारसमुद्रकी वह ढाढिनी मुद्रित मुखके साथ (इस तथ्यको उद्घाटित किये बिना) नहीं जा सकती है कि साहिबा और शाहज़ादा कुतुबुद्दीन [परस्पर] गुणोंके व्याजसे बँध गये हैं ।"

टिप्पणी—ढोरसमंद<द्वारसमुद्र : धुर दक्षिण भारतका एक प्रसिद्ध स्थान । नीव<णिव्व [दे०] = व्याज, बहाना ।

[६१]

'लज्जा गउ गुण आगुणी धण लज्जा वउहार' ।[१]
'लज्जा गउ जुय'[२] जोवणा साहि 'सुणंदा'[३] सार ॥[४]

पाठान्तर—१. घ० लज्ज गयउं गुण अवगुणउं धण लज्जइ बहु बार, का० लजा गो मुप गुणीयणां धण लजा व्यवहार, अ० लज्जी गउ गुण आगुणी धण लज्जी वउहार । २. घ० लजा गये जु, का० लजा गयो ज, अ० लज्जी गउ जुय जोवणा । ३. का० समंदा । ४. का० मे यहाँ निम्नलिखित छंद और है :

जीवंदा सब कुछ मिलै गज वस नर नायक ।
मूयां हमारा क्या चलै साहजादा वायक ॥
जो दिन्हा दिल मुझ कुं सो दिल हंदा जांन ।
मैं तिस वाझू विसारहूं आपै साहि सुजांन ॥

इनके अतिरिक्त का० में यहाँपर ऊपर आया हुआ ६० संख्यक दूहा दुहराया हुआ है । [ऐसा ज्ञात होता है कि ये दो छंद हाशियेमें उक्त दोहेके सामने लिखे हुए थे, और इन्हें मूलमें सम्मिलित करते समय वह दोहा एक तो पहले लिखा ही गया था, दूसरी बार इन अतिरिक्त छन्दोंको उतारनेके बाद पुनः लिख उठा । इसलिए ये छन्द प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं ।] अ० मे यहाँ '२' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—"लज्जामें इस गुणीका गुण गया (चला जाता है), लज्जामें स्त्री-का व्यवहार गया (चला जाता है), और लज्जामें दोनों (स्त्री-पुरुष) के यौवन गये (चले जाते हैं), शाहज़ादा यह सार तत्त्व ही बात सुन रहा है।"

टिप्पणी—वउहार<व्यवहार। आ=यह। जुय<युग=दोनों।

[६२]

साहि घरां साहिबियां जिणि 'दिण्णियां'[1] 'सु जाणि'[2]।
'वइ पुज्जइं दिल लम्भीयां'[3] 'कउण'[4] करंदा 'काणि'[5] ॥[6]

पाठान्तर—१. का० दीनीयां, घ० दिन्निया। २. घ० का० सुजांण। ३. का० वेय पुजइं दिन लभई, घ० वय पुज्जय दिन लंभिया। ४. का० कोणि। ५. घ० काम। ६. अ० में यहाँ '३' की क्रम-संख्या भी दी हुई है।

अर्थ—[शाहज़ादेने कहा,] "शाहजादेके घटमें जिस सुजान [स्त्री] के द्वारा साहिबाको स्थान दिलाया गया है, उसको पूजने [प्रसन्न करने] से मैंने [अपना] दिल प्राप्त कर लिया है, [तो] कौन [अब] लज्जा कर रहा है ?"

टिप्पणी—घर<घट=शरीर। काणि=लज्जा, मर्यादा।

[६३]

मइ 'सउणा'[1] सुणि 'दिखिया'[2] आज 'अणंदी[3] 'वेलि'। [4]
'साहिबियां'[5] 'सर मझ्झरां'[6] हंस करंदा केलि ॥[7]

पाठान्तर—१. घ० का० सुहणा। २. घ० दिट्ठीया। ३. घ० आंणिंदी ४. घ० वेल। ५. का० साहिबां। ६. घ० सर मुंझरा, का० सर मंझरे। ७. अ० मे '४' की यहाँ क्रम-संख्या भी दी हुई है।

अर्थ—[ढाढिनीने कहा] "मैंने शकुनों (या स्वप्नों) को सुनकर [स्वयं] देखा है, आज वेला (या वल्लरी) आनन्दित हुई है [जब कि] साहिबाके [हृदय] सरोवरमें [शाहज़ादा] हंस केलि कर रहा है।"

टिप्पणी—सउण<शकुन स्वप्न। वेलि<वेला। वल्लरी। मझ्झरा<मध्य।

[६४]

जे मुत्ताहल दिट्ठियां 'तइ तन'[१] 'मंझरियां'[२] ।
'ते तइं ही हंसि हंसरा वइ वर गंजरियांह'[३] ॥[४]

पाठान्तर—१. का० तेतत । २. घ० वमझीयाहि । ३. घ० ते ताही मुर हंसरा उंअर गुण मंजरीयांहि, का० में यह पंक्ति नहीं है—भूलसे छूटी हुई लगती है । ४. का० में यह दोहा नहीं है—किसी प्रकार छूटा हुआ लगता है । अ० में यहां '५' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—[और] जिस मुक्ताफल (मोती) [की कान्ति] को तूने [उस] शरीर [लता] में देखा था, "ऐ हंस, वह तूही है जिसने उसे वपन कर [अब] नष्ट भी कर दिया है ।"

टिप्पणी—मुत्ताहल<मुक्ताफल=मोती । मंझर<मध्य । वर<वरम् । गंज्=आहत करना, नष्ट करना ।

[६५]

[१]साहिब साहिब्यां विरह, जइ जीवंदा जाइ ।
'लज्जा लीक उलंघणी'[२] सिर परि पेरो साहि[३] ॥[४]

पाठान्तर—१. अ० मे यहां और है : साहिबजादा वाक्य । २. अ० लज्जी लोक उलघणा । ३. का० मे यह दोहा नही है—किसी प्रकार छूटा हुआ लगता है । ४. अ० मे यहां '६' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—[शाहज़ादेने कहा,] "शाहज़ादा यदि साहिबाके विरहमें जीता जा रहा है तो [केवल इस कारण कि] उसे लीक (मर्यादा) के उल्लंघनकी लज्जा है और, [उसके] शिरपर [उसका पिता] फ़ीरोज़शाह है ।"

टिप्पणी—लीक<रेखा ।

[६६]

ढढ्ढिणी बोली । तउ 'मूए'[१] 'हमारा क्या चलइ' ।[२]
'साहिजा वाक्य' ।[३]

जिण हीजीय'[4] जहमतीयां सोई 'हूआ'[5] तबीब ।
सोई 'लज्जा'[6] रक्खिहइ 'जादे'[7] साहि नसीब ॥[8]

पाठान्तर—१. घ० तूं मूआ । २-३ घ० में ३ तथा का मे २-३ नही है—किसी प्रकार छूटी लगती हैं । ४. घ० जिण हीजी, का० जिणि दीनी, अ० जां होजीय । ५. घ० का० भय । ६. अ० लज्जी । ७. घ० तेडे, का० जोडे । ८. अ० मे यहाँ '७' की 'क्रम-संख्या' भी दी हुई है ।

अर्थ—ढाढिनीने कहा, "तब मूए, मेरा क्या [बस] चले ?" शाहज़ादेने कहा, "जिसने [मेरी] जहमतको हरण किया है वही मेरा वैद्य हुआ है । जो शाहज़ादेको 'नसीब' देता है, वही उसकी लज्जा भी रखेगा ।"

टिप्पणी—हिज्ज् < हृ = हरण करना । नसीब [फ़ा०]—भाग्य, प्रारब्ध ।

[६७]

'सुणतइं ही लल्ले कीए'[1] लोयण 'जल हल थल्ल' ।[2]
'कंपण लग्गे'[3] अंग वल 'एण सुणंदा हल्ल'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. घ० मुणतइ ही ललते कीये, का० मुणत समे ही लल कीयां । २. घ० लोयग जल हलत्थल्ल, का० लोयण जलहर थाल । ३. का० इयुं कंपिया ए । ४. का० कुंण हवंदा वल । ५. अ० मे यहाँ '८' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—यह [उत्तर] सुनते ही [ढाढिनीने उसकी] मनुहार की, [उसके] लोचन [अश्रुओंके] जलाशय हो रहे । किन्तु इन हालोंको सुनकर [ढाढिनीके] अंग [अनिष्टके भयसे] काँपने लगे ।

टिप्पणी—लल्ल < ललि [दे०] खुशामद, मनुहार । लोयन < लोचन । जलहल < जल भर = जल-समूह । थल्ल < स्थल = स्थान । वल < वले [फ़ा०] किन्तु, परन्तु ।

[६८]

[1]जीवंदा कहि गाइया 'अब्ब'[2] कंपीया तबीब ।
बीबी बीहन पूछीया क्या बातीयां 'निसीब'[3] ॥[4]

पाठान्तर—१. अ० में यहाँ और है: बीबी बिगाणा वाक्य। २. घ० अत्र, का० तव। ३. घ० नसीच। (<नसीब), अ० तबीब [यह पूर्ववर्ती चरणमें आ चुका है]। ४. अ० में यहाँ '९' की क्रम-संख्या भी दी हुई है।

अर्थ—बीबी बिवानी ने पूछा, "ऐ वैद्य, तूने [शाहज़ादेको] 'जीवित' कह कर गाया, और अब काँप रहा है। 'नसीब' में क्या बातें हैं।"

टिप्पणी—निसीब<नसीब [फा] = भाग्य, प्रारब्ध।

[६९]

[1]बीबी 'बीहग'[2] बत्तडी मइं जाणीया निसीब।
साहिजादे दिल अउर दिल 'यों'[3] बोलीया तबीब ॥[4]

पाठान्तर—१. अ० तबीब बोल्या, का० तबीब वायक। २. घ० कहत, का० वहुते। ३. घ० इम, का० इयुं। ४. अ० में यहाँ '१०' की क्रम-संख्या भी दी हुई है।

अर्थ—[वैद्याने कहा,] "ऐ बीबी बिवानी, बात यह है कि मैं [इसके] 'नसीब'को जान गयी। शाहज़ादेके दिलमें [एक] और दिल है।"

टिप्पणी—अउर<अपर = अन्य।

[७०]

सो दिल 'दिल अज्जइ'[1] मिलइ तउ मिलि मंगल 'गाउ'[2]।
'नत साहिज्जां न साहिबां'[3] 'जं'[4] धावणा 'सुधाउ'[5] ॥[6]

१. पाठान्तर—घ० जउ दिल मइं, का जो दिल में। २. का० गायो। ३. घ० नहि तरि साहिब साहिबा, का० नातर साहिब साहिबां। ४. का० जो। ५. घ० ध्यावणा सु ध्यावो, का० धावणा सुधाणो। ६. अ० में यहाँ '११' की क्रम-संख्या भी दी हुई है।

अर्थ—"वह दिल और [यह] दिल आज ही मिल जायें, तो [सब] मिलकर मंगल-गान करो; नहीं तो न राजकुमार [रहेगा] और न साहिबा [रहेगी]; क्योंकि दौड़ना-धूपना है, [भले ही] दौड़-धूप करो।"

टिप्पणी—जं<यत् = कि, क्योंकि।

[७१]

'असि अस माणा'[1] तर तरुगि जीसी जीवण 'पूरि'[2] ।
दावल दाणस पुंगरी दीदे 'दोठिहुं मूरि'[3] ॥[4]

पाठान्तर—१. का० अस समांन । २. का० पूर । ३. घ० दुहूं मूर, का० दिट्ठेह मूर । ४. अ० में यहाँ '१२' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—"[इन] तरुण और तरुणिने एक-दूसरेको ऐसी और ऐसा माना [है] कि जैसे जीवनकी पूर्ति (सफलता) हो । दावर (न्यायकर्त्ता) दानिशमन्दकी कन्याके नेत्र [इसके] नेत्रोंके मूल हो रहे हैं ।"

टिप्पणी—माण् < मानय् = सम्मान करना, आदर करना, अनुभव करना । तर < तरुण । पूरि < पूर्ति । पूंगरी < पुद्गल + इका । पौगण्ड + इका = बालिका । किशोरी ।

[७२]

'जमा जमी'[1] ति मसीतियां दुहु दिट्ठया रसाइ ।
'नदरि'[2] ज 'लग्भइ'[3] 'नदरि'[2] कुं 'नदरि'[2] 'पुकारत'[4] जाइ ॥[5]

पाठान्तर—१. का० जिमे जमां । २. घ० का० नजरि । ३. घ० सुं लगी, का० ज लागी । ४. घ० पुकारइ, का० पुकारे । ५. अ० में यहाँ '१३' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—"उन्होंने जमा-जमी (स्थिरता) के साथ तो [एक-दूसरेको] मसजिदमें प्रेम-विभोर होकर देखा । और नज़र जब [अन्य] नज़रसे मिलती है तो वह 'नज़र', 'नज़र' पुकारती [ही] जाती है ।"

टिप्पणी—नदरि < नजर [फ़ा०] = दृष्टि ।

[७३]

'इती बात करतइ बीबियां ऊठी'[2] ।
सुलतांण पासि गई 'छूटी'[3] ।
सुलतांण साहिजादा 'आसिघ हूआ'[4] ।
'कुवाणिहिं जोग जूआ'[5] ।

'लाजनुं सोचणा हूआ'।
वेगि 'आणहु नत' [7] मूआ।
जहमतियां 'हमइं' [8] सो धी।
मिलावणा 'तुसहं' [9] को धी।
'फुरमांण हूआ'। [10]
'जहमतियां' [11] क्या 'जाणइ'। [12]
जिमी 'आकास तल' होइ तउ 'हम आणइ'। [14]
वीबियां बोली।
दावल 'दानसवंद कइ' [15] 'आगलि विछाओ' [16] ऊंली (औली)।
'सुलतांण' [17] मानी। दीन दुणियां एक 'ठउड होत जांणी' [18]।

पाठान्तर—१. का० में 'वचनिका' और है। २. ध० इतनी वात करत वीवी वाणा उठी, का० उतनी वात करतइ वीचि वीवी विवांना उठी। ३. का० अपूठी। ४. का० आसिक हूवा, अ० आसिष हूआ। ५. ध० मे यह वाक्य नही है, का० जुवानहु जोग हूवा। ६. ध० में यह वाक्य नही है, का० लाजनुं सोचनै हूआ, अ० लाजहं सोचणा हूआ। ७. ध० आणउ नही तरि, का० आनि नही तर। ८. ध० हमाउ, का० हमह। ९. ध० तुमहूं। १० ध० का० मे नही है। ११. ध० जहमतीयां हमहूं, का० जहमतीयां हम। १२. का० जाना। १३. ध० असमान वीचि। १४. का० सो आंनां। १५. का० दानसमंद की, अ० दाणस बंध कइ। १६. ध० आगे विछायो, का० आगै विछाई। १७. ध० सुलतान मान्या, का० तव सुलताण वात मानी। १८. ध० होता जाण्या, का० ठौर होती जाणी।

अर्थ—इतनी बातें करते-करते वीवी (बिवानां) उठी। सुलतानके पास वह छूटी (भागी) हुई गयी। [उसने कहा,] "सुलतान, शाहज़ादा आशिक़ हुआ है, वह युवतीके योग्य युवा [हो गया] है। हमें लाजोंसे (के कारण) सोचना हो गया है। शीघ्र आओ, नहीं तो मरा। शाहज़ादेकी ज़हमत [तो] हमने शोध ली है, और [उसे दूर करनेके लिए] मिलानी है तुम्हें कोई कन्या। फ़रमान हुआ, "ज़हमत हम क्या जानें (हमारे लिए 'ज़हमत'का क्या सवाल)? पृथ्वीपर और आकाशके नीचे कहीं भी (वह) हो, तो हम उसे लायें।" वीवी (विवानां) बोली, "दावर (न्यायकर्त्ता) दानिशमन्दके आगे औली विछाओ।" सुलतान मान गया और [उसने] दीन (दानिश-

मन्द) तथा दुनिया (सुलतान) को एक स्थानपर होता (एक सम्बन्धमें बँधता) [निश्चित] जान लिया।

टिप्पणी—आसिप<आशिक [अ०]=प्रेमी, अनुरक्त। धी<दुहिता =कन्या। जिमी<ज़मीन [फ़ा०]=पृथ्वी। ऊली (औली) [दे०]= कुल—परिपाटी। ठउड [दे०]=ठौर, स्थान।

[७४]

'पावइं पाव सुलताण-दरबारि 'आया'।[1]
'पाछइ साहा सुषासण चउडोल डोली असपती अंस चढ़ाया'[2]।[3]
दावल 'दरबार सोर हूआ'[4]। सुलतांण 'आया'[5]।
'सुकराणा सुकराणा करता सामहा धाया'।[6]
'सुलताण कह्या इउं कीया'[7]।
वे दावल साहिज़ादा जीइया।
दावल 'बोला'[8]।
सुलतांण के बषत 'वड़े'[9]।
दुनी के दीदे ऊवरे।
'इयारह के हीए'[10] भरे।
दुसमणां के दिल 'जरे'[11]।
'सुलतांण'[12] पैर करणा।

पाठान्तर—१. ध० सुलतान पयादा हूआ दरबार आया, का० मोहला मांहि तै पानिसाह पावुं पावुं दरबार आए। २. ध० पीछै सुषासण दोलीयां असपती-अंस चढाए, का० पीछै नै पालषी सुपासण चौडोल थाए। ३. का० में यहाँ और है: जब सुलतांन महलमे थी वागा पहनि नीकल्या तब देसतै इंपका गरव गल्या। इंद्र षानजादे। मलक मलकजादे। वरबार देखते ही इंद्रका गरव मिटाना। असपति सुलतांन अैसै चढीया। तव च्यार चक भंगांना पड़ा था। [यह वर्णन सुलतानके पैदल चलकर आनेके साथ ठीक नहीं बैठता है, यह तो किसी चढाईका लगता है।] ४. का० कै ताइं पवर हुई जु। ५. का० आए। ६ सुकराणा सुकन करता सामहा धाया, का० तव दावल सुकराणां

सुकराणा करते सांम्हे धाए। ७. का० आय करि सलाम कीया, घ० सुलतान तुम्हां क्या कीया। ८. का० दावल बोल्या, घ० मे यह वाक्य नहीं है। ९. का० सवरे। १०. का० यारां के दीदे, घ० याराहांके दिल। ११. घ० जुरे। १२. का० सुलताण 'कछु'।

अर्थ—पैदल हां सुलतान [दावर के] दरबार आया और शाहके पीछे सुखासन, चौडोल, डोली तथा अश्वपतिका अश्व—[यह सब] चढ़ आये। दावरके दरबारमें शोर हुआ कि सुलतान आया। [दावर] 'शुकराना' 'शुकराना' करता हुआ दौड़ा। उसने कहा, "सुलतान, तुमने यह क्या किया (कि यहाँ तुम पैदल आये) ?" [सुलतानने कहा,] "रे दावर, शाहज़ादा जी गया।" दावर बोला, "सुलतानके भाग्य बड़े हैं! [शाहज़ादेके जीवित होनेसे] दुनियाके नेत्र खुल गये, मित्रोंके हृदय भर गये और दुश्मनोंके दिल जल गये! सुलतान दान-पुण्य करना!"

टिप्पणी—सुकराणा < शुक्रानः [अ०] = कृतज्ञता-ज्ञापक पुरस्कार। यार [फ़ा०] = मित्र, सहायक।

[७५]

'अमहुं 'पइर'[1] करी'।
'तुमहं पइर करणा'।[2]
साहिवां 'साहिजादे कुं'[3] वरणा।
[4]'ऊताल'[5] ही मंडप छवावउ।
'अपत'[6] पढावउ।
'सादा नइ वजावउ'।[7]
पूब पूब होइ 'स्यु' करावउ'।[8]
[9]'दावल बोल्या'।[10]
'जु फुरमाण दीना'।[11]
इती 'बात कुं'[12] सुलतांण क्या समीना।[13]
तुसुं तरकसबंद 'अर'[14] ईयार वाणइ।[15]
'दुनिया दाणसबंद वड़े वषाणइ'।[16]

पाठान्तर—१. अ० एइर। २ का० में ये दो पंक्तियाँ नहीं हैं, और इनके स्थानपर है : सुलतांन बोल्या। ३. घ० साहिजादा स्यु। ४. का० मे और है :

दावल बोल्या। हजरत सलामत मुझ कूं बोलावते तो तब ही आवतां पाए। इतनी बात कुं क्या तुम्ह आए। पातिसाह दावलके वपांने। व्हां आइ तुम्ह पीर जांने। ५. घ० का० इताल। ६. का० अषित। ७. का० सादा ने वजावउ, अ० सादा नइ वजावउं। ८. का० तो ओरतां मंगावी, अ० पूवइ होइ त्यु करावउ। ९. का० में और है : वीयाहनके गीत गवावो। १०-१६. का० में यह अंश नही है। १२. घ० वातइ। १४. घ० हूं यार।

अर्थ— [सुलतानने कहा,] "मैंने दान-पुण्य किया। तुम [भी] दान-पुण्य करना। साहिबाको शाहजादेसे वरण करना है। शीघ्रतासे मण्डप छवाओ, और अक्षत पढ़ाओ। बाजोंको बजवाओ। [जिससे] 'ख़ूब' 'ख़ूब' हो, वही कराओ। दावर बोला," "जो [सुलतानने] फ़रमाया; इतनी बातके लिए, सुलतान, क्या खेद ?" [बादशाहने कहा,] "[तो] सेना (सैनिक), तरकश-बन्द और ऐयार बाने धारण करें, [जिससे] दुनिया दानिशमन्दको बड़ा बखाने।"

टिप्पणी—ख़ैर<ख़ैरात [अ०] = दान-पुण्य। ऊताल<उत्तावल [दे०] = उतावली, शीघ्रता। समीना<सम्म<श्रम = खेद (?)। तुम<तुमन = सेना। ईयार<ऐयार [अ०] = छद्मवेषी [सैनिक]।

[७६]

इतनी बात करतइं मंडप 'छावणइ'[१] लागे।[२]
'गायणे गावणइ लागे'[३]।
'नर ततइं नीसाण दग्गे'[४]।
'सज्जणा जग्गे'[५]।[६]
'वेलिया वधाय गूडी'।[७]
'नर ततइं नफेरी मंडी'।[८]
'भेरी भूंगल भीमं नंढी'।[९]
'सहणाइ तंढी'।[१०]
[११]'जंझि मंदिर नाइ संगा'।[१२]
'तंति[१३] तुंबर राइ रंगा। 'वाजिया ढप ढोल ढंगा'।
'ढाहिया ढंगा'[१४]।

[15]सेहरा ढढिढनी सु गाणइ।
साहिजादे सु 'वपाणइ'।[16]
तुंग तोरण 'करस ठाणइ'।[17]
नेहरा 'ठाणइ'[18]।
[19]वीवियां संगि साहिजादा।
आइ दावल 'दरहि'[20] वादा।
निहसियां नीसाण नादा।
नारियां नादा।

पाठान्तर—१. ध० छवावणइ। १—४ का० मे नहीं है—छूटे हुए लगते हैं, ४. ध० में भी नही है। ५. का० नजन बोलनै लागै। ६. का० में और है : साचांने वागे। ढोल=ढोल हुडक ढक्का। ७. का० में यह वाक्य नहीं है, अ० वेलि आवधराइ गुंडी। ८. का० में नहीं है, अ० नर ततई नफेर मंडी। ९. ध० भीम तुंडी, का० भीतरंगा। १०. ध० सरणाई तुटी, का० सहणाई नफेरि भृंगा। ११. का० मे और है : मृदंग तालरि उपंगा। १२. का० झंझ मदिर न्याय। १३. का० तंत। १४. ध० ढाहियइ ढंगा, का० में यह तथा इसके पूर्वके दो वाक्य नहीं हैं और अधिक है : निरत नीसांन वंगा। सोवतावासि जंगा। १५. का० में और है : अनेक राय रंग गाया। ढढिणी सेहरा सुनाणा [किन्तु पीछे यह शब्दावली पुनः आती है]। १६. का० कुं वपाणो। १७. का० सकल जांणें, अ० करस ठाणइं। १८ ध० चाणइ, का० गाणें। १९. का० में यहाँ 'वहुत' और है। २०. का० दरबारह।

अर्थ—इतनी बातें करते ही [लोग] मण्डप छाने लगे और गायक गाने लगे। लोगोंने तदनन्तर निशान दागे, [जिसमे] स्वजन जाग पड़े। वेलियाँ (वन्दनवार) और गुड़ियाँ (पताकाएँ) बाँधी गयीं। तदनन्तर लोगोंने नफ़ीरी माँडी। भेरी और भूँगल भीम रवके साथ निनादित हुए, और शहनाई उच्च स्वरमें बज उठी। झाँझ, मर्दल और साथमें नागसुर, तन्त्री, तथा तुम्बुरुने राग रँगे। डफ, ढोल, और ढंग बज पड़े। [इस तुमुल निनाद-से] ढंग ढह गये। ढाढिणी सेहरा (मौरका गीत) गाती है, और वह राज-कुमारको बखानती है। ऊँचे तोरण तथा कलश वह स्थापित करती है और नेहरा ठानती है। बीवी (बिवानां) के साथ शाहज़ादा आकर दावरके द्वारपर पहुँच गया। निशानों और नारियोंके नाद [कानोंको] वधित करने लगे।

टिप्पणी—गायन=गायक। तत<ततः=तदनन्तर। सज्जण<स्वजन। नफेर<नफ़ीरी [अ०]=तुरही या क़रनाय। तंढ<तंड [दे०]=उच्च स्वर

का। मंदिर<मदंल = मृदंग। नाइ<नाग = नागसुर। ढंग = ढाँग, टीला। सेहरा<शेखरक = मौर। वखाण्<वक्खाण्<व्याख्यानय् = वर्णन करना। तुंग<उत्तुङ्ग। दर [फ़ा०] = द्वार। वाद्<वा = गमन करना। निहम्<णिहस्<नि + घृष् = घर्षण करना। नीसाण<निशान [फा०] = धौंसा।

[७७]

सेहरउ दूहा[1]

साहिब 'सा हत्थइ हीया'[2] हत्थइ साहिब साहि।
'वेरू'[3] मंडप मंडिया ढढ्ढणि 'वरन्यइ काहि'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. अ० सेहरउ दोहा, घ० सेहरइ दुहा, का० सेहरा दूहा। २. का० साह स हथ कीया। ३. का० वारू। ४. ध० वयन कहाइ, का० वरण कीयाह। ५. अ० में इस प्रसंगमें आने वाले दोहोंकी स्वतन्त्र क्रम-संख्याएँ हैं, जिनमे-से इसकी है '१'।

अर्थ—सेहरा दूहा—"शाहज़ादेके हाथमें साहिबाका हृदय है और साहिबाके हाथमें शाहज़ादेका। द्वारपर मण्डप माँडा गया है, ढाढिनी किसे वर्णन करे?"

टिप्पणी—वेर<द्वार = दरवाज़ा।

[७८]

'वर'[1] सिर सोहइ सेहरा वरणी 'सिरि'[2] सिंदूर।
जांणे 'संझ सुमख्खिया सिंधु सपत्ता'[3] सूर ॥[4]

पाठान्तर—१. अ० वं। २ का० सिर। ३. ध० का० संझि (संभ-घ०) समुखिया सिंध तपंदा (नपदा—का०)। ४. अ० मे इसकी क्रम-संख्या '२' है।

अर्थ—"वरके सिरपर मौर शोभित है, और वधूके सिरपर सिन्दूर है, मानो सन्ध्याके समक्ष पहुँचा हुआ सूर्य सिन्धुमें सम्प्राप्त [हो रहा] है।"

टिप्पणी—सेहरा<शेखरक = मौर। सुमख<समक्ष = सामने। सपत्त<सम्प्राप्त।

[७९]

वर कर 'वीर'[1] अंगूठियां वरणी कर 'करि'[2] लाल।
'जाणं'[3] हीयइ हिलगियां काम 'स कढ्‌इ'[4] साल ॥[5]

पाठान्तर—१. का० वे। २. का० कर। ३. का० जांनिक। ४. घ० सुकढण, का० करंदा। ५. अ० मे इसकी क्रम संख्या '३' है।

अर्थ—"वरके करोंमें सुन्दर अंगूठियाँ हैं, और वधूके करोंमें लाल कड़ियाँ (चूड़ियाँ) हैं, [जो ऐसी लग रही हैं] मानो [किसीके] हृदयसे हिलग-कर काम अपने शल्य निकाल रहा हो (कामने अपने शल्य निकाले हों)!

टिप्पणी—वीर < विल्ल [दे०] = अच्छ, स्वच्छ, विलसित। करि < कडय + इका < कटक + इका = कड़ी, वलय, चूड़ी।

[८०]

'आसिर अषत भणंदीया'[1] 'सेष सुणंदा सार'[2]।
जाणे 'जलहर वुट्ठियां 'सारसु कीया सुढार'[3] ॥[4]

पाठान्तर—१. घ० आसिर अषित पढि वीया, का० आसां अषित पढिया। २. का० साहि सुणंदा मोर। ३ घ० सरसु कयां सुढार, का० सरस कीया न ठोर। ४. अ० मे इसकी क्रम संख्या '४' दी हुई है।

अर्थ—आशीर्वादका अक्षत कहते हुए शेख सार (सुन्दर) [सेहरा] सुन रहा है। [यह सेहरा ऐसा लग रहा है] मानो जलधर बरसे हों [जिससे सुखी होकर] सारसोंने सुन्दर शब्द किया हो।

टिप्पणी—आसिर < आशिष = आशीर्वाद। वुट्ठ < वृष्ट = बरसा हुआ।

[८१]

वाए वज्जण 'वज्जणा'[1] सज्जणां मिलि 'सचोल'[2]।
आसा पूरण 'साईयां'[3] 'पइ'[4] ढढिणिया 'के'[5] बोल ॥[6]

पाठान्तर—१. का० वाज्जीया। २. का० सुवोल। ३. ध० पाइयां। ४. का० पय। ५. का० का। ६. अ० में इसकी क्रम-संख्या '५' दी हुई है।

अर्थ—"ब्रजनियोंने बाजे बजाये और सजन तथा सगोत्री मिले। सातिशय आशा पूरी हुई और ढाढिनके बोल प्राप्त (पूरे) हुए।"

टिप्पणी—वाय्<वादय् = बजाना। सचोल<स + चोल्लक = साथ-साथ भोजन करनेवाले। साइ<सात्रि = सातिशय। पइ<पत्त<प्राप्त।

[८२]

'साहिब साहि'[1] घरं दीयां तरह् 'सलग्गी'[2] वेलि।
जे जे 'रत्ति उकत्तियां'[3] 'काल्हि कहंदी केलि'[4]॥[5]

पाठान्तर—१. ध० साहिव सार, का० साहिवां साहि। २. का० सुलग्गी। ३. का० रतोकंतीयां। ४. का० काल्ह करंती केल। ५. अ० में इसकी क्रम-संख्या '६' दी हुई है।

अर्थ—"साहिबाने उसे शाहज़ादेके घटमें दिया, तो वह [प्रीति] वेली लग गयी। जो-जो अनुराग [पूर्ण केलि] की उक्तियाँ हैं, उन्हें मैं कल कह रही हूँ (कहूँगी)।"

टिप्पणी—घर<घड<घट। तरह<तरिहि<तर्हि = तो, तब। रत्ति< रक्त = अनुरागपूर्ण।

[८३]

'फजरि हूअंदा साहि दर गई'[1] गुण रष्वणहार।
'मलिणीयां र'[2] लवीबियां ढढिणी तीजी वार॥[3, 4]

पाठान्तर—१. का० फजर हूवंदी साहिवा गया। २. का० मालन होइ, अ० मल्लिणीयां। ३. का० में निम्नलिखित दोहे इस प्रसंगमें और है :

देर्नि कुंकम देह भू वलि मोतीयां ववाई।
वारू मंडप छाईया ढढणि वाहर गाइ॥
साहिजादा साहवीया झालि करंदा कोल।
साहजादा आया इहां ढढणीयां दे वोल॥

(तुल० ७७.२, ८२.२ तथा ८१.२)।

४. अ० में इसकी क्रम-संख्या '७' दी हुई है।

अर्थ—प्रभात हो रहा था और यह गुणी स्त्री (ढाढिनी) शाहज़ादेके द्वारपर गयी; [पहली बार यह] मालिन थी, [फिर] वेश्या थी और तीसरी बार ढाढिनी थी।

टिप्पणी—फजरि < फज्र [अ०] = प्रभात।

[८४]

ढढिणियां क्या गाया।[1]
हलकइ 'हालि अलापिया'[2] हलकइ 'हुरक वजाइ'[3]।
जे 'रति सुट्ठि सुगुट्ठीया'[4] 'ते सु कहंदी गाइ'[5]॥[6]

पाठान्तर—१. का० ढढणी कुछ गावो। २. का० राग अलापही। ३. का० हुडुक वजाव। ४. ध० रत सुठ सुगुंठीयां, का० राति नुट्ठु सुवाटीया। ५. का० में छूटा हुआ है। ६. अ० मे इसकी क्रम-संख्या '८' दी हुई है।

अर्थ—ढाढिनीने क्या गाया ? हलके ही हिलकर (हिलते हुए) उसने आलाप ली और हलके ही हुडुक बजाकर [वर-वधूकी] जो रति (अनुराग) की सुष्ठु गोष्ठी हुई, उसे गाकर वह कह रही है।

टिप्पणी—सुट्ठि < सुष्ठु = शोभन, सुन्दर। गुट्ठी < गोष्ठी।

[८५]

प्रथम पलिंगा साहिबां साहि 'दिहंदा वयण'[1]।
अंबर हंदा 'इंदला'[2] 'इह अउर उगंदा'[3] गयण॥[4, 5]

पाठान्तर—१. ध० गहंदा पैणि, का० गयंदी रयण। २. का० इंदुला। ३. ध० ज्यो र उगंदा, का० उर गयंदा। ४. का० में और है:

साहिजादा साहिबां सरिस प्रमुदित वोले वाणि।
दुपा हंदा संचीया सुप फलंदा [............]॥
[तुल० छंद ८६]

५. अ० में इस छंदकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '९'।

अर्थ—"साहिवाके पर्यंकमें आकर प्रथम ही राजकुमार यह वचन दे (कह) रहा है '[उधर] आकाशका चन्द्रमा है, तो यह दूसरा [मेरे] आकाशमें उग रहा है' ।"

टिप्पणी—वयण<वचन । इंदला<इन्दु = चन्द्रमा । गयण<गगन = आकाश ।

[८६]

झलहल 'झालंदे'[1] नयण साहि 'गहंदा पाणि'[2] ।
ढुप 'छिणंदा सिंचणा'[3] सुष्प 'फलंदा जाणि'[4]॥[5]

पाठान्तर—१. का० कंदे । २. ध० गहंदा पँण, का० गयंदा पाण । ३. का० विणंदा संचणा । ४. ध० का० थियंदा जांण । ५. अ० मे इस छंदकी क्रम-संख्या दी हुई है और वह है '१०' ।

अर्थ—"नेत्र [प्रसन्नतासे] झलमल-झलमल कर रहे हैं और शाहज़ादा साहिवाका हाथ पकड़ रहा है, मानो [वृक्षका] दुःखपूर्ण सींचना अब छिन्न (समाप्त) हो रहा है, और [उसमें] सुखका फल [लग] रहा है ।"

टिप्पणी—जाणि<मानो ।

[८७]

के दिन केही केलियां के दिन केही केलि ।
दरिया 'हिया' तरंगिया 'कउण गिलंदा पेलि'[2] ॥[3, 4]

पाठान्तर—१. का० केर । २. ध० कि न गिलंदा पेल, का० कुंन गनंदा-केलि । ३. का० में और है :

साहिजादा साहवीया लव्वा सुष कहंति ।
दरिया चसै तरंगी को तस पार लहंति ॥
[तुल० छंद ८७]

४. अ० में इस छन्दकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '११' ।

अर्थ—किसी दिन किसी प्रकारकी केलि और किसी दिन किसी प्रकारकी केलि [थी] । समुद्र तथा हृदयकी तरंगोंको कौन खेलमें गिन (?) सकता है ?

जादे जा दिन 'अग्गला'[१] साहिब सा दिन रूप।
'सइंसुह सोम विलग्गीया'[२] 'तो न बुझंदा'[३] धूप ॥[४]

पाठान्तर—१. का० आगला। २. ध० सामुह सोम विलग्गीया, का० सोमि सोम विलंबीया। ३. का० कोंन कढंदी। ४. अ० में इस छन्दकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '१२'।

अर्थ—शाहजादेके जो [यौवनके] अगले दिन हैं, साहिबाके वे ही रूपके हैं, फलतः शतमुख (सूर्य ?) [शाहजादा] सोम (चन्द्र) [साहबा] से [कितना भी] लिपट रहा है, तो भी उसकी भूख (मिलन-लालसा) मिट नहीं रही है।

टिप्पणी—सइं < सय < शत = सौ।

[८९]

'इतनी बात करतइं 'उह रितु'[१] गई।
'अउर'[२] रितु फजर भई।[४]
'मुरग हुं बांग दई'।[८]
'गाइण'[५] हुं ललित कई।[६]
'तारहु का'[७] तेज छई।
सुविहाण अंबर 'दई'।[९]
वसंत 'रितु'[१०] पाछी भई।
'धूपकाला कहल'[११] लई ॥

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : वचनिका। कोककी कला परवीन साहिजादा। जिसकै कामका उवादा। रोज ३।४ गैर महल रहीया। तब साहि-जादां साहिजादै कुं कहीया। वहुत गुनीजन मिलै है। वहुत करी है आसा। एक वार महला दईयै साहिजादा देषीयै तमासा। २. का० अहोराति। ३ ध० उह। ४. का० यह वाक्य नहीं है। ५. का० गायना। ६. का० मे और है : तीजै रोजकी फजर भई। ७ ध० तारं, का० तारन। ८. ध० का० लई। ९. का० मे और है : गुनी जन गुनि धुनि लई। साहिबां साहिजादे की बलाइ गही। १०. का० रुति। ११. ध० धूप काल हलहल, का० धूप काए कलहल।

अर्थ—इतनी बातें करते वह [रात की] ऋतु गयी और दूसरी ऋतु प्रभातकी हुई। मुर्गने भी बाँग दी। गायकोंने भी ललित [रागिनी] की। तारोंका भी तेज—क्षय हुआ। आकाशने सुप्रभात दिया। वसन्त ऋतु पीछे हुई और धूपकी ऋतुने कहल (दाहकता) ग्रहण की।

टिप्पणी—अडर < अवर < अपर = अन्य। फजर < फज्र [अ०] = प्रभात। गायण < गायन = गायक। कहल = दाहकता।

[९०]

इतनी बात करतइं साहिजादह कुमकुमइ 'विरपे'[1] भराए।[2]
'बारि उंछह'[3] लगाए।[4]
'अबीर हुं घर बणाए'।[5]
'कपूर कस्तूरी भूषण भराए'।[6]
'फूलहुं बितन्न तणाए'।[7]
'गायणहुं गाए'।[8]
एकइं 'योग'[9]।[10] 'एकइं भोग'[11]।[12]
'न जाणीइं साहिजादे कुं क्या सु 'रोग'[13]॥'[14]

पाठान्तर—१. घ० वरप। ३. घ० बारहछांह। ९. घ० जोगइ। ११. घ० भोगइ। १३. घ० रुचइ। २, ४, ५, ६, ७ ८, १०, १२, १४. का० में इन समस्त वाक्योंके स्थानपर है : साहिजादै हुकम कीया। समीयाने तनावो। छिरकाव करावो। गिलमा विछावो। सिंहासन वयावो। सादाने वजावो। सब गुनीजन बोलावो। अपनी-अपनी कला है सो ले ले आवो। साहिजादा मौज तूठा। लाख लाख दांन वूठा। कसतूरी कपूरा अरगजा चंदन बनावौ। चोवा जवाद के भुवन भरावो। खाक की जाहिगा अबीर मंगावो। मुखमल कतीफां। जरवाव सुं महल वनांनां। आछै जरकसी समीयानां तानां। मोतीयां चौक पूरानां। साहिजादै कुं लैत भुवांनां। जरी जराव का पहरीयां वांगा। एक-एक नग लाप लाप केरा। कटि मेखला जर कपुर वपांनै। आप है नवग्रह सधि रास जानै। साहिवा साहजादै अरगजै भीनै है। रंग मुरगी ढंढणी साहिजादी—नी हैं। ता भीतर नाग सरम लटकती वैनी हैं। चपल दांदे जाके कटिस्थंभ करते हैं। पंच वान साहिजादै कुं मेलूवे देते है। सहजादां नैं महला दीया है। गुनी जन जय जय सवद कीया है। कोटि कमल वने। मेघ घटा घने। बारहे आदीत

उगा। इंद्रका पारिपा पूगा। गुनी जन बोलवा लागे। छत्रीस वाजित्र वागे।
[इन वाक्योंकी शब्दावली और उक्तियाँ कुछ यहाँकी और कुछ बादमें आनेवाले प्रसंगकी हैं।]

अर्थ—इतनी बातें करते शाहज़ादेने कुमकुमे और बरपे (सिल्हक) भराये, जलके उत्स लगाये। धराधर अबीर भी बनायी (रचायी)। कपूर और कस्तूरी-के आभरण भराये। फूलके वितान तनाये। गायकोंने भी [गीत] गाये। एकने योगके, एकने भोगके, [इस विचारसे कि] शाहज़ादेको न जाने क्या रुचिकर हो।

टिप्पणी—बरप < बरक्ख < वराक्ष्य = गन्ध-द्रव्य-विशेष, सिल्हक। ऊंछ < उच्छ < उत्स = झरना। गायण < गायन = गायक। रोग < रोअग < रोचक = रुचिजनक।

[९१]

'इतनी बात करतइं हुइ नटिणी आइ परी हुई'।[1]
'एक जोगिणी का स्वांग कीयें'[2] 'एक भोगिणी का'।[3]
'दोइ दूहे कहे'[4]।

पाठान्तर—१. का० इतनै वीचि दोइ नटकी आई। २. का० एकै जोगिनी-का भेप कीया, ब० एक जोगिणीका स्वांग। ३. ब० एक भोगणीका स्वांगका लीयै, का० एकै भोगिनीका भेप कीया। ४. का० में इसके स्थानपर है : जाकै मूंधै भीनी चोली।

अर्थ—इतनी बातें करते दो नटनियाँ आकर खड़ी हुईं : एक योगिनीका स्वाँग किये हुए और एक (दूसरी) भोगिनीका। दोनोंने दूहे कहे।

[९२]

'पढमां ची'[1] सिंगारी 'बोली'[2]।
[3]साहिजादे। लोयण ते 'लोइंदिए'[4] जे 'दिट्ठां ही पिट्ठ'।[5]
'पाधर'[6] 'सर जिम कड्ढीइं'[7] नेह 'समट्ठा[*] निट्ठ'[8] ॥[9]

पाठान्तर—१. ब० प्रथम चड, का० प्रथम पढम। २. का० बोली है। ३. का० मैं 'भोगिनी वायक' और है। ४. ब० लोयंदीयां। ५. का० दिट्ठाइं

पिठि। ६. अ० पीधर (पाधर), का० पधर। ७. का० सर जन कढिए। ८. ध० समिट्ठा निट्ठ, का० समिट्ठा निट्ठि अ० समठा निठ। ९. अ० में इस प्रसंगके दोहोंकी स्वतन्त्र क्रम-संख्या दी हुई है, और इस दोहेकी क्रम-संख्या है '१'।

अर्थ—पहले-पहल शृंगारी (भोगिनी) बोली, 'शाहज़ादे, लोचन तो वे देखते हुए होते हैं, जो दीखते ही प्रविष्ट हो जाते हैं, और जो स्नेहसे ऐसे भली-भाँति समर्थ (पुष्ट) होते हैं कि उन्हें निकालना शरोंको सीधा निकालने-जैसा होता है।

टिप्पणी—चौं : ही (दे० 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ५३)। लोय् <लोच् = देखना। पिट्ठ <पइट्ठ <प्रविष्ट। पाधर <पद्धर [दे०] = सीधा। समट्ठ <समर्थ।

[६३]

जोगिणी 'वोली'[1]।

लोयण ते लोयंदीइ जे 'लोअंदे'[2] जग्ग।
'अप्पा'[3] काम कमच्छलां 'वहु देपंदा'[4] कग्ग॥[5]

पाठान्तर—१. का० वायक। २. ध० लोयंदीयां जे लोइंदे, का० लोयंदीयां जे लोयंदा, अ० लोयंदीइ जे लोअंदे। ३. का० आपा। ४. का० वह देषंदे। ५. अ० में इस दोहेकी क्रम-संख्या है '२'।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन वे देखते हुए होते हैं जो जगत् [की वास्तविकता] को देखते [होते] हैं। अपने कर्म्म और कर्म-छलको बहुतेरे काग भी देख रहे होते हैं।"

टिप्पणी—अप्पा <आत्म। काम <कर्म्म। कग्ग <काग।

[६४]

भोगिणी 'वोली'[1]।

लोयण ते 'लोइंदीइ'[2] जे पेम सु 'वुड्डइ धार'[3]।
रीझडिआं झड 'मंडि कइ'[4] 'सव्वसु'[5] अप्पणहार[6]॥

पाठान्तर—१. का० वायक। २. ध० जोअंदीयां. का० लोयंदीयां। ३. का० वुट्ठार। ४. का० मंडीयां। ५. ध० सरवन, अ० सरवरैम्नु। ६. अ० में इस दोहेकी क्रम-संख्या है '३'।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन वे देखते हुए होते हैं, जो प्रेमकी धारा बरसते हैं, और जो रीझनेपर छड़ी बाँधकर [अपना] सर्वस्व अर्पित करनेवाले होते हैं।"

टिप्पणी—वुट्ठ < वृष्ट = बरसा हुआ। अप्प < आत्म। सव्वसु < सव्वस्स < सर्वस्व।

[९५]

जोगिणी बोली।

लोयण ते 'लोडंदीए'[1] जे 'लोइंदे'[2] अप्प।
तीन्ही तिन्नि' अवत्थडी कउ ण करंदा 'वप्प'[4]॥[5]

पाठान्तर—१. ध० का० लोयंदीयां। २. का० लोयंदा। ३. ध० तिन्ही नन्ह, का० तिन्हा विण। ४ का० अप्प। ५. अ० में इस दोहेकी क्रम-संख्या है '४'।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं, जो आप (आत्म) को देखते हैं। उनकी तीन ही अवस्थाएँ—जाग्रत, स्वप्न और तुरीय—होती हैं, और वे कभी [अपने आपको] ढँकते नहीं हैं—(सुषुप्तिको नहीं प्राप्त होते हैं)।

टिप्पणी—अवत्थ < अवस्था। कउ < काउ = कदापि। वप्प् < त्वच् (?) = ढँकना, आच्छादित करना।

[९६]

भोगिणी बोली।

लोइण ते 'लोइंदीए'[1] जे अणरत्तां 'ही'[2] रत्त।
'दीया'[3] देह 'स दज्झीया'[4] तोइ पडंदा पत्त॥[5]

पाठान्तर—१. ध० का० लोयंदीयां। २. ध० का० मे नहीं है। ३. ध० दीवइ, का० दीवै। ४. ध० मु झंपीयां। ५. अ० मे इस दोहेकी क्रम-संख्या है '५'।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो [मादक द्रव्यादिसे] अनराते ही राते होते हैं, जो [उन पतिंगोंकी भाँति होते हैं] दीपकसे [जिनका] देह दग्ध हो गया है, तो भी [जो दीपकके पास] पहुँचकर उसमें पड़ते ही हैं।"

टिप्पणी—रत्त < रक्त = अनुरक्त, लाल। पत्त < प्राप्त।

[९७]

जोगिणी बोली।

> लोयण ते 'लोइंदीए'[1] जे जुग 'जोइ अरत्त'[2]।
> माया 'ओढण'[3] भुल्लिया जांणि कलाली मत्त[4]॥

पाठान्तर—१. ध० का० लोयंदीयां। २. का० जोई रत्त। ३. का० माया ढढणो। ४. अ० मे इस दोहेकी क्रम-संख्या '६' है।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जिन्होंने जगत्‌को अ-रक्त [भावसे] देखकर मायाके [आकर्षणपूर्ण] ओढ़न (परिधान) को उसी प्रकार भुला दिया [है] जैसे कलाली [मदिरासे] मत्त व्यक्तिको [भुला देती है]।"

टिप्पणी—जुग < जगत् = संसार। कलाल < कल्यपाल = मदिरा बेचनेवाला।

[९८]

भोगिणी बोली।

> लोइण ते 'लोइंदीए'[1] जे 'अंबा'[2] ही अब्ब।
> 'ज्युं होइ पाउस रंगीया'[3] 'ताइ'[4] मिलंदा सव्व॥

पाठान्तर—१. घ० का० लोअंदीआं। २. का० अबा। ३. घ० ज्युं हो उसु रंगीयां, का० जुं ही पाउसु रंगीयां, अ० ज्युं ही पीउस(<पाउस) रंगीया। ४. घ० तोइ, का० तउ। ५. अ० में इस दोहेकी क्रम-संख्या '७' है।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो अंभस् (जल) वाले बादलों [के समान] होते हैं, जो जैसे ही पावस उनका हृदय रँग देता है, वैसे ही वे [बरसनेके लिए] समस्त रूपसे सिद्ध रहते (जाते) हैं।"

टिप्पणी—अंभा<अंभम् = जल। अब्भ<अभ्र = बादल। पाउस<प्रावृट् = वर्षा। ताइ<तदा।

[९९]

जोगिणी बोली।

लोइण ते 'लोइंदीए'[1] जे जाणि परंदा गत्त।
को घरीयां घर लग्गीयां रत्ता तोइ अरत्त॥[2]

पाठान्तर—१. घ० लोयंदीया। २. का० में इस दोहेके स्थानपर है :

लोयण ते लोअंदीया माया नांहि अंग।
पीयण जलहर कारे तोइ न भीजै अंग॥

३. अ० मे इस दोहेकी क्रम-संख्या '८' दी हुई है।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं, जो गत (गए) से जान पड़ते होते हैं। किसी घड़ी यदि वे घर (गृहस्थी) में लगे भी हुए होते हैं तो उनसे रक्त [ज्ञात] होते हुए भी वे [सचमुच] अ-रक्त होते हैं।"

टिप्पणी—गत<गत = गया हुआ।

[१००]

भोगिणी बोली।

लोइण ते 'लोइंदीए'[1] जे रंगइ करियांह'[2]।
'बीकर'[3] 'वाजि न चढ्ढही'[4] ज्युं 'गज बंगरियां'[5]॥[6]

पाठान्तर—१. घ० का० लोयंदीयां। २. का० जे रंगइ करीयां, अ० ने रंगइ करियांह। ३. का० वीयकरि। ४. घ० वाज न चढहीं, का० वाज न चडई। ५. अ० च वंगरीयांह। ६. अ० में इस दोहेकी क्रम-संख्या '९' है।

अर्थ—भोगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो एक मात्र रंग (प्रेम) करते हैं, जैसे [घोड़ेपर चढ़नेवाला] घोड़ेको बेचकर विकृत अंग वाले हाथीपर नहीं चढ़ता है।"

टिप्पणी—वीक् <विक्क् <वि + क्री = बेचना। वंगर <वंग <व्यङ्ग = विकृत अंगका।

[१०१]

'इतिनो बात करतई साहिजादे कुं 'ठंढ'[2] लागी।
'निवासा हुउणइ लागी'[3]।
'दाणसवंद'[4] साहिजादी सुं साहिजादइ कह्या।
साहिवा 'आसा आण'।[5]
'आए'[6]पग 'पाण'[7]।
'अवीर 'महि'[8] मुझइ भरम 'होइ'[9]।
न जाणीयइ 'गिरइ ती'[10] क्या होइ।

पाठान्तर—१. का० मे और है : वचनिका। नटनिया सवद करि वहुत भेद वताया। वगसीस लाप टका सोने का पाया। नटनई बाहिर गई। साहिवां के चालनै की त्यारी भई। सा दावल दानसमंद कै अनेक पाणा मिजमानी करी। साहिवां कै तांई मुहर जुहर पच भरी। विदा करी। दुलहा वधाया। विविध रंग राग हुआ सादाने वागे। लाख कोंडी यु मोजह वचन लागे। साहिजादा महलां रंग करता है। मांनु सुपके सागर भरता है। गुलाव कमकमाके होंद मैं रमता है। अवीर अरगजा कादम करचा। साहिजादै आसप सु मन धरचा। २. घ० का० ढंढि लागणै। ३. घ० निवासाम हुणइ लागी, का० में यह वाक्य नही है। ४. अ० दाणसवंच। ५. घ० का० आसव आणि। ६. घ० का० में यह नही है। ७. का० पांणि। ८. का० तैं। ९. घ० हो चाहइ, का० होता है। १०. घ० गिरइ थी, का० गिरें थी।

अर्थ—इतनी बातें करते शाहज़ादेको ठण्ड लगी, और रात्रि होने लगी। [दावर] दानिशमन्दकी शाहज़ादीसे शाहज़ादेने कहा, "साहिवा आसव ला,

जिससे पैरोंमें प्राण आयें। अबीरसे मुझे भ्रम हो रहा है; [यदि गिर गया तो] न जाने गिरनेसे क्या हो !

टिप्पणी—निवासा < निवास = रात्रि। आसा < आसव = मदिरा। पाण < प्राण = चेतना।

[१०२]

साहिवां 'अरगजइ'[१] भीनी हइ।
रंग पर रंग ऊढणी साहिजादइ दीनी हइ।
[२]'फुरमांण'[३] धाई।
'जाणुं'[४] काठ की पूतरी 'कुं करि'[५] वणाई।
'पाचि'[६] का करावा।
'सारइ'[७] लाल का प्याला।
'जाणे[८] नील कमल पर वे दीयें की जाला'[८]।
करणी के 'झार तर साहिवां'[९] भरया।
'जाणे'[१०] अपछरां अमी हरया।
[११]'वार दुइ दीन्हा'[१२]।
'साहिजादइ लीन्हा'[१३]।
'तजइ कइ आवतइं हवाल कीन्हा'[१४]।
'ते हवाल कहणा'[१५]।
'जिणइ'[१६] दुनिया जाणी 'तिणहुं'[१७] का लहणा।

पाठान्तर—१. का० अरगजै, अ० अरगजां। २. का० में यहाँ और है: साहिवां साहिजादैं कुं कह्या। जांनि सराव के सीसे आनि। पगपाणि [तुल० पूर्ववर्ती वाक्य]। ३. व० फुरमान ही, का० कहत ही। ४. का० मांनु। ५. का० में नही है। ६. व० पाचका, अ० पाचिका, का० काच। ७. का० सारी, व० सारे। ८. व० का० जांने नील कमल पर वे दीयें (वेली—व०) की झाला, अ० जाणी नील कमलपर वे दीयकी जाला। ९. का० झड़ तलै। १०. व० जानो, का० जानु। ११. का० में यहाँ और है: साहिवां र दौरी। मैं दीया हूवा। अबीर मांझि मुझे भरम हूवा। १२. का० साहिवां आनि दोइ प्याला दीया। १३. का० तैसा साहिजादा लीया। १४. का० ताजै (तीजै) आवतै ही प्याला हाथ छूटि गिरीया। १५. का० में नहीं है। १६. का० जिणइ दीन। १७. व० तिनहीं।

अर्थ—साहिबा अरगजासे भीनी है, शाहज़ादेने रंगपर रंग [की] ओढ़नी [उसको] दी है। वह फ़रमान पर [ऐसी] दौड़ पड़ी, मानो किसी प्रकारसे बनायी हुई काठकी पुतली हो। पच्चीकारीका करावा (बड़ा पात्र) था और समस्त रूपासे लाल [से निर्मित] प्याला था, [जो उस करावेपर ऐसा लगता था] मानो नीले कमल पर बिना दीपककी ज्वाला हो। करना (?) की झाड़के नीचे साहिबाने [वह] प्याला भरा, मानो अप्सरा-द्वारा हरा हुआ कसून [भरा गया] हो। [इस प्रकार] दो बार उसने [प्याला] दिया। और शाहज़ादेने [उसे] लिया। तीसरी बार प्यालेके आते ही [साहिबाने] [एक] हवाल कर दिया। वह हवाल कहता है। जिन्होंने दुनिया [की नश्वरता] जानी है, उन्हें [इस हवालसे] क्या लेना है (उनके लिए इस घटनामें क्या रखा है) ?

टिप्पणी—करावा<क़रावः [अ०]=शीशेका बड़ा पात्र। दीया<दीअअ<दीपक। करणी = करना। पुष्प (?)।

[१०३]

दूहा—लंक 'लहक्की'[१] झीणियां 'की भांगी रतिभार'[२]।
'सास सरदा वुदीयां (सरंदा वुट्ठियां) कुसल कहंदइ वार'[३]॥[४]

पाठान्तर—१. का० लहक्कैं। २. व० कइ भगी रत भार। ३. यह पंक्ति घ० का० में नहीं है। इनमें अगले दोहेका भी प्रथम चरण नहीं है। इस छंदके प्रथम चरणसे अगले छंदके प्रथम चरणके तुक-साम्यके कारण ये बीचके दोनों चरण छूटे लगते हैं। ४. अ०में इस प्रसंगके दूहोंकी भी स्वतंत्र क्रम-संख्या दी हुई है, और उसके अन्तर्गत इस दूहेकी क्रम-संख्या '१' है।

अर्थ—'या तो [साहिबाकी] क्षीण कटि रति भारसे टूटी होनेके कारण लचक गयी, अथवा कुशल (?) कहते समय साँसें चलती हुई व्युत्थित हो गयीं (ज़ोरोंसे चलने लगीं), [इसलिए यह हुआ]।

टिप्पणी—लहक् = लचकना। झीण<क्षीण। भाणी<भग्न। सर्<सृ = गमन करना। वुट्ठिअ<व्युत्थित = उठा हुआ।

[१०४]

'की पग पंतरि चुक्कियां की भीनी रस भार'[१]।
'लप्प लियंदा सट्ठि का'[२] प्याला भज्जणहार[३]॥

पाठान्तर—१. यह चरण ध० का० मे नही है—पूर्ववर्ती दूहेके प्रथम चरण से तुक-साम्यके कारण छूटा हुआ लगता है। २. का० लाप लहंदा साठि द्यां। ३. अ० मे इस दूहेकी क्रम-संख्या '२' है।

अर्थ—अथवा पैर पदान्तर करनेमें चूक गये, अथवा वह रस भारसे भीनी हो रही थी [इसलिए ऐसा हुआ] कि साठ लाखका लिया जा रहा (लिया) हुआ प्याला टूटनेवाला हुआ।

टिप्पणी—पंतर < पदान्तर < डग रखनेमे होनेवाली भूल। भज्ज् < भञ्ज् = तोड़ना।

[१०५]

भग्गा लाल सु भज्जणा 'भग्गी भम्म सु वाल'[१]।
गई सासू 'सरणागतां'[२] कउण 'हुअंदा हाल'[३]॥[४]

पाठान्तर—१. का० त्रिभगन भग्गी वाल। २. ध० सरणागती। ३. का० हवंदा हवाल, अ० हूअंदी हाल। ४. अ० मे इस दूहेकी क्रम-संख्या '३' है।

अर्थ—वह लाल [निर्मित] भाजन (पात्र) टूटा तो भ्रम (भय) के कारण वह बाला भागी। वह सासकी शरणागत गयी (हुई) कि उससे यह कौन-सा हाल हो रहा (हो गया) था।

टिप्पणी—भग्ग < भग्न = टूटा हुआ। भज्जण < भाजन = पात्र। भम्म < भ्रम = भय।

[१०६]

[१]'टुक एक 'जातइ'[२] साहिजादइ कह्या
'वे'[३] साहिवां 'अजहुं'[४] न आई।
'अपइ'[५] छिपी 'किनहुं'[६] छिपाई।[७]
'अत्रे मरणा तइं'[८] क्या बुराई।

'कुमकुमा कइ जल महि तइ'[9] निकस्या।
'मानहुं कमल'[10] विकस्यां।
[11]'अबीर महिं पोजइं पोज देष्या'[12]।
'देपइ तउ पग लस्या'[13]।
प्याला 'भूजा'[14] देष्या।[15]
देपत ही 'हस्या'[16] ॥[17]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ है : वचनिका। साहिबां बीबी बिवानां पास जाइ छिपी है। मन में डरी है। २. का० जातां। ३. का० में नहीं है। ४. ध० अजुह मु, का० में नहीं है। ५. का० आप। ६. का० कै किसही कै। ७. का० साहिबा गई; मुझ कुं काम वांन लाई। ८. का० और मरणै थी। ९. का० कमकमै कै जल, अ० कुमकुमा के जल महि थी। १०. ध० मनहि कमल, का० मानु कंवल। ११. का० मे यहाँ 'तब साहिजादै' और है। १२. ध० अबर नइं पोजइ पोज देप्या, का० अबीर अरगजै मै पोज पोज आई देषि हस्या। १३. ध० देपत ही पग लस्या, का० साहिबा का पाव देपि लस्या, अ० देपइ तउ पल गस्या। १४. ध० भागा। १६ ध० हसि पेष्या। १५.-१७. का० में इन दो वाक्योंके स्थानपर है : प्याला के टुकरे ठौर ठौर परे। साहिजादा अपणै मन मै डरै। कवहो साहिबां कै चोट आई होइगी।

अर्थ—कुछ क्षणोंके जाते (बीतते) ही शाहज़ादेने कहा, "रे, साहिबा आज (अभी) भी नहीं आयी? वह आप ही कहीं छिप गयी या किसीने उसे छिपा दिया? रे, [उसके न होनेपर] मरनेसे क्या बुराई [होगी]?" वह कुमकुमेके जलमें से [होकर] निकला, मानो कमल विकसित हुआ हो। अबीरमें खोज करते हुए [उसने] उसकी खोज देखी। देखता है तो [साहिबाका] पैर उसमें लसित (अंकित) है। [साथ ही वहाँ] उसने प्याला टूटा देखा। देखते ही वह हँसा।

टिप्पणी—भूजा < भग्न = टूटा।

[१०७]

दूहा—पइर 'करंदा कोडि कहि'[1] मन अप्पणइ विचारि।
पूव 'से'[2] पत्थर भग्गीया 'विभगन'[3] भग्गी नारि[4] ॥

चादर उसने सिरपर कर ली। लज्जासे वह [ऐसा] सकुचाया, मानो चाँदको बादलने छिपाया हो। माँने निवेदन किया, 'पुत्र, साहिबाने [हमें] ख़ून [का ज़ुर्म] दिया। [शाहज़ादेने पूछा,] "माँ क्या ख़ून ? [उसने कहा,] "साठ लाखका लिया जाता हुआ प्याला टूटा है, और क्या ख़ून ? साठ लाख-का लिया जाता हुआ !"

टिप्पणी—ऊलस् < उल्लस् = उल्लसित होना, उमंगमें आना। भग्गा < भग्न।

[१०६]

'अमा सच्च'[1] ।
हमहुं सुलताण पेरो साहि उपाए।
'समरकंद साहिजादी बीबी विवांणां'[2] जाए।
'मा साहिबां का न्याउ अछए'[4] ।[5]
'उसकइ दावल पछइ' ।
मांगि 'वे लाल ढमरे'[7] ।
न जांणउं 'उंती घरी कित एक अमरे'[8] ।[9]
'मां के सिर उपर फेरि फेरि भाने'[10] ।
मानुं चांद तारां 'सुं'[11] रिसानइ।
'अेह'[12] वेला लाल धरती 'हुइ रही'[13] ।

पाठान्तर—१. ध० मा सच्च हइ, का० मा सच। २. ध० पुत्र साहिबा साहिजादी बीबीयन। ३. का० मे पुनः यहाँ है : साहिजादा वायक। ४. का० इस बात का न्याउ है, ध० मा साहिबा का न्याव छइ। ५. का० मे और है : साहिबां तो न्याय डरें। ६. का० जिसकै दावल दान पीछै। ७. ध० वे लाल के ढावरे, का० कै लाल के ढावरे। ८. ध० उत घरी केते ही आंवरे, का० उसकै घरि कितनेक आउरे। ९. का० मे यहाँ और है : ल्यावौ प्याले में है। १०. का० अमा के सिर पर फेरे; प्याले उवारि उवारि भांने। ११. का० परि। १२. ध० उहि, का० उवह। १३. ध० हुई, का० भई।

अर्थ—[शाहज़ादाने कहा,] "माँ [यह] सच है। किन्तु हम भी तो सुलतान फीरोज़ शाहके पैदा किये हुए और समरकन्दकी बीबी बिवानाके

[१११]

एक पाइ खरा कुतवदी अरदास करइ'।[1]
'टुकरे पाउं तउ कछू नाम ना चलाउं'।[2]
'सुलताण'[3] कह्या 'तेरा ई हइ'[4]।[5]
'राषि भावइ गमाइ'[6]॥

पाठान्तर—३. घ० तेरे ही है। ४. अ० सुलताणि। १,२,५,६. का० में इन वाक्योंके स्थानपर हैं : इतनी साहिजादै एक पाव परे हूये। सुलतांन सुं वीनती करी। टुकरे भंडार चाहोगे तो नाम ना न चलै। [पातिसा]ह हुकुम कीया। लूटाइ भावै तेरे ही है। अब ए निरमाइल भए। साहजादा''''ए। पलक मुलक धाया। टुकरै नांपनै लागा। सादांना वाजनै लागा। एक चडते है। एक पडते है। एक मरते हैं। पूव पूव घसते हैं। साहिवा साहिजादा हसते है। पलक निहाल कीया। लाप लाप का सब किसही नै दीया।

अर्थ—[यह सुनकर] एक पैरपर खड़ा होकर कुतुबुद्दीन निवेदन करता है, "मैं [उत्तराधिकारमें] टुकड़े पाऊँगा तो तुम्हारा कुछ भी नाम न चला सकूँगा।" सुलतानने कहा, [सब कुछ] तेरा ही है, चाहे रखे, चाहे गँवाये।

टिप्पणी—अरदास < अर्ज़दाश्त [फ़ा०] = निवेदन। गमाव् < गमय् = समाप्त करना, नष्ट करना।

[११२]

'जिण ही'[1] जीव अरंगिया 'घरि घरि लग्गी लाइ'[2]।
हलकइ 'जलहल ओल्हिया'[3] रहइ 'सुरेप उसाहि'[4]॥

पाठान्तर—१. का० जिनही, अ० जिणी। २. घ० ज्वल न भई जन जाइ, का० घर घर आऊ जास। ३. का० जलहर वुट्ठीया, घ० कह्या सु साह कुतवदी। ४. घ० सु रापउसाहि, का० सु रप्यो पास।

अर्थ—[शाहज़ादेने कहा,] "जिन्होंने जीवको [प्रेमसे] रँग लिया है, उन्होंने घट-घटमें आग लगा दी है; जिन्होंने [प्रेमके] हलके जलधरकी आर्द्रता ग्रहण की है, वे ही सुलेख (सुयश) को ऊँचा कर सके हैं।"

टिप्पणी—घर < घट = शरण, अन्तःकरण। ओल्ह < आर्द्र। उसाह् < उत् + साध् = उन्नत करना (?)।

[११३]

'सुलतांण फुरमाण दीना'[1] ।
'लइ टुकरे गउप परि चीना'[2] ।
'फकीर लूटणइ लागे'[3] ।
'सादानई वाजणइ लागे'[4] ॥

पाठान्तर—१. अ० मुलतांणि फुरमाण दीना । ४. घ० सादाने वागे । १,२,३,४. का० में ये वाक्य नहीं है, और इनके स्थानपर है : वचनिका । जां लगि दीप निछत्र द्रू दायम । तां लगि साहिजादा साहिवां कायम । जां लगि मेरु मेखला सायर । दीपै ससि जाम दिवायर । अविचल जां लगि धरती अंवर । ब्रह्मा विष्णु रुद्र रिपेसर ।

अर्थ—सुलतानने फ़रमान दिया और टुकड़ोंको गवाक्षपर चुन दिया गया। फ़क़ीर [उन्हें] लूटने लगे और [लोग] वाजोंको वजाने लगे ।

[११४]

वज्जे 'वज्जत'[1] वज्जीया 'हूआ हूअंदे'[2] काइ ।
जीमी 'जीवइ कुतवदी'[3] मूआ वहंदा 'साहि'[4] ॥

पाठान्तर—१. का० वाजित्र । २. का० हुई हुयंदी । ३. का० जावो कुतवदी । ४. का० गई वहूते ['साहि' शब्द छूटा हुआ है], घ० जिन नामना न जाइ ।

अर्थ—वाजे वजते हुए वज उठे, होते होते क्या हो गया ? पृथ्वी-तलपर कुतुवुद्दीन [अब भी] जी रहा है, [जब कि] वहुतेरे शाह मृत (विस्मृत) हो गये ।

टिप्पणी—जिमी < ज़मीन [फ़ा०] = पृथ्वी ।



पाठ

कुतुबशतकका वार्त्तिक तिलक

[निम्नलिखित पाठ सं० १६२२ में लिपिबद्ध की हुई अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेरकी प्रति सं० ४७ के अनुसार है, जिसकी प्रतिलिपि राजस्थान विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके एक प्राध्यापक डॉ० हीरालाल माहेश्वरीने की थी। यह तिलक पूरी रचनाका नहीं उसके छन्द २-३ का ही है।]

दिली तखत पेरोज शाह सुलितांन थांना।
तिसकै साहिजादा कुतवदी जुवांनां।
वरस नव तीस उमरह प्रमानां।
बीबीयै लाजली भौ बंधानां॥
डोसीयो आगैं बीबी विवाना बैठी।
तिन्हीं पंचसै हथ सोवन लठी।
वारीयां वेलीयां नैनौ दिपावै।
पैं साहिजादा उन आगैं सरकणै न पावै॥

(१) दिल्ली कै तपत सुलतांन पेरोज स्याह पतम बादस्याहान बादस्याही करै। सु कैसा एक पातिस्याह। दस लाप हाथी। बीस लाप असवार॥ कौन कौन उमराउ। करैकंन दाज उजीर। कालू चवर ढाल उजीर। मलिक सरूप सौद्धावर। मीयां चिमनपा सिलहदार। हिसाम मलूक सभा चातुर। राव सिंघ पाल राव गंग। पातल नेतल संग। ह्यंद हेजम ओढण गडे. ड. गपड.। मोल्हण ठाकुर। रायो चेतन सेवड़ा। ए सुलतांन पेरोज पतम वादिस्याहके मज[लि]सी उमराव॥ चौदाह सै हरम चालीस हरम की चौकी। एक एक राति आवै॥ तिसके च्यारि वेटे। स्याह दरीया। स्याह एदल। स्याह महमंद। स्याह पुन्नी महमद। ए च्यारि वेटे॥ तिसकै पेरोज पां सिकारी। तिन दरियाव की मछी मारी। आहु पांना पेरोज पां सौ पैदा हुवा॥ बकरा हिरण सो लडावै। अैसा सुलतांन। पेरोज साह पतम वादिसाह॥

(२) तिसकी निवै वरस की उमर हुई। आंपै की पलकां गालैं सौं आई लगी। पातिसाह देपणै सौं रहा। तब पलकों सौं रेस के डोरे लगे रहै। ज्यौं रंग-

रेज चूनडी कौं वंद देता है। जब कीसी उमरावका काम होला होय। तब पाति-साह तपत आइ वंठै। पलकों के टोरे पैंचि दिस तारैं सौं बांधीए। तब पातिसाह को नजरि आवै। हाथी का हाथी। घोडे का घोटा। आदमी का आदमी नजरि आवै। मुहल्ला ले पातसाह उठै।

(३) तव सिकार सौं बहुत प्यास पातसाह का रहै। पै घोडै असवार हुवा न जाय। तव सिकार काहे की देपोयैं। तब गिलम ऊपर ऊजली सितारे की चादरि विछाय तिसपर चीनी सकर वपेरीयैं। सकर कौं आय मापी लगैं। तव मकड़ी माप्यौं पर छोडिए। सो मकडी चीते की। चीते की नाहायति दौडि कै मपी कौं पकडै। ज्यौं हिरण कौं चीता पकडैं। तब पातिसाह वहुत पुसियाली होय। सु अैसी मकडी की सिकार पातिसाह जी देपै। जंगल की सिकार सौं रहै। तब अैसी मकडी की सिकार देपै। अैसे मौं सुलतान पेरोज साह पतम। वादिसाहान अैसी पातिसाही का धणी॥

(४) एक दिन तप्त पर वयास करता हुवा ज मेरे च्यारि वेटे। परि असल पातिसाह जादा कोई नही। किसी पातिसाह की वेटी व्याहीए। तिसके पेट का असलि पातसाहजादा होइ तौ भला। पातिसाह षुदाइ की वंदिगी करणै लागा। दिलवजातह दिल होय एक तन मन एक ध्यान होय। चित सौं लव लगाइ षुदाय की वंदिगी करणै लागे। पाव उरि करै। सिर नीचा रपै। सोना रूपाकी जंजीर सों पातस्याह औंधे लटकै। आपणे साहिव कौं यादि करै। आपरि तू। वातल तू। जाहिर तू। है हंदा। हैं दंदा। सरोस की वंदगी करै। तसवी पातिसाह चारयो पहर यादि करै। पहर र फजरि। सुवही पहर। साम के वक्त की अर च्यारि पहर अपने उमरावै का हाथी घोडा का, मलिक मुलिक के पवरिदार चिहरा मुहला के होय। षुव चुस्त वंदगी खुदाय की थी। तब साहिव मिहरवान हुवा।

(५) नव्वै वरष की उमर मौ समरकंद के पातसाह का नालेर आया सुल-तान सलेम का। पातिस्याह पेरोज माहि पतम वादिसाहि कौ। पातसाह कौं फेरि जवांनी चढी। वहुत षुषाल हुवा। षुदाय को आदि करता हुवा। ए पाक परवर दिगार तु वडा साहिव करीम मिहरवान। कोई अैसी नवै वरस की उमरमें वेटी कौन कै दे पै तू दे। मोतियन का सेहुरा सैं वांधि पातिसाह परणनै कौं असवार हुवा। जाय समरकंद के पातसाह की वेटी व्याही। अप्त काजो यौं पढै। पातिसाह के दिलके दरद कढे (कढै ?)। पेरोज साह नै वीवी विवांनां व्याही।

(६) सु वीवी विवांनां अवलि वहुत सुरति जमाल। षूव फहिम आकलि-दार। किसी कै कांजी मुला कै आगै पढाए तौ इल्म आवै। किसी को पंडितौ पास

रषोए तौ विद्दा आवै। बीवी बीवानां की फारसी। हिंदुही। च्यारौ ही हकीकति। तरीक बेद की। कुरांन की। पुदाय की इन्याइति रहम सौं। दिल मही थी। पैदा हुई। अैसी बीबी विवानां पातसाह कौ व्याही। पेरोज पत्म वादिसाह दिल्ली आऐ।

(७) दिल्ली आइ फेरि पातसाह् पुदाय की वंदगी करने लागे। किस वासतै वंदिगी करनै लागे। कि साहिव मिरवांन वीवी विवाना कों पहलै ही एक अवल फरज्यंद का पेट रहै। अवल वीवी विवानां कौं फरज्यंद होइ। अैसी वंदिगी करता करतां पुदाय मिहरवान हुवा। बीवी विवांनां कौं फेरि पेटि उमेद रहै।

(८) यक रौज फजर का वष्त है। वादिसाह तष्त पर आय वैठे। मिसाप करनै लागे दात्यौंण। अैसे मैं बीवी विवांनांकी दाई हरमपानै सौं दौड़ी ही आई। पातिसाहि पूछया कि दाई क्यों आई। आलमपनाह सलामति पुस पवरि ल्याई। बीवी विवांनां कौं पेट की उमेद रही। पातिसाह हुकम कीया कि दोय लाप रुपैए विवानां ऊपर कुरवांन करी पैर करो। ए दाई तू व माग क्या मागती है। पातसाह सलामति मै क्या मागौं। मांगणै लायक पातिसाह ने वदी करी नाह। अै दाई कुछू तू मांग। जीवो पातसाह सलामति मै क्या मागौ। जिस रोज बीवी विवांनां कै फरज्यंद होय। तिस रौज वादिसाह की जौप आवै सु दीजोए पूव।

(९) हुकम पुदाइ का अैसा हुवा। कि बीवी विवानां कै फरज्यंद हुवा। उमेद की पवरि पर दोइ लाप रुपैए कुरबान हुवए थे। अब तौ लापौं। करोड़ौंके मुह कुरवान होते हौ। दिली कै वाजारि ठौर ठौर मोती अवछाड़ीयै है। डेरै डेरै ठौर ठौर नववती वाजती है। पातिसाह के मनच्यंते कारिज हुए।

(१०) एक रोज गुजरांन हुवा। दूसरा रोज गुजरांन हुवा। तीसरा चौथा पांचवां छठै ठै रोज वीवी विवांनां नौ पूद सायति मै गुसल किया। सिर मैं पानी डालि कपड़े पिहने। सहजादे कु न्हुलाइ कै कपड़े पिन्हाए। ताज कुलह की तापी सिर पर रपी। दाई कपड़े पिन्हाइ ले पातसाह को नजरि पेस कीया। तव पातसाह की नजरि अैसा आया। तो। सा माहीना एक का लडिका होय। पातसाह नै हुकम दीया। ए दाई साहिजादा फेरि माहीने का होई तव नजर करिये। फेरि फेरि महीने कौ ओर पातसाह की नजरि। साहिजादा रापा तव पातिसाह की नजरि साहिजादा अैसा आया। तैसा महीना तीनि का लरिका नजरि आवै। अैसा देपा पातसाह उमराउ सौं बोले कि साहिजादा बहुत अजमति पैदा हुवा। कि हां हजरति साहिजादा पूव अजमति पैदा होइगा। वरपुरदार उमरदराज होह।

(११) पातिसाह कह्या कि यारो उलमावो। पंडितो, कुछ साहिजादे का नाव पुव सा रापो। उलमा वा पंडित बोले कि पातिसाह सलामति पहिलो तस पातसाह कौन नाम रपै। कि ना, यारो वडा भाई ह्यंदू छोटा भाई मुसलमान। हिन्दूई मौ पंडित नाम रपो। सोई नाम पूब। तव पंडितां आपणा सास्त्र देप्या। तव साहिजादा कुतवदीन नवल नाम नजरि आया। पंडित कहते नाही, पातसाहि बोले, क्यों यारो क्यों बोलते नाही। कि जीवो पातसाह सलामति। ए उलमा भी आपना फाल देपो, हजरति भी आपना फाल देपो। तव हम कहैंगे। तव पातसाह नै भी फाल देपा। तव पातसाह कौ भी कुतवदीन नवल नाम नजरि आया। तब ताई उलमा व पंडित बोले नाही। पातसाह लागे पूछणै। क्यों यारो बोलते क्यों नांही कि अवलि पातिसाहि बोल्यो। तुमारे फाल मैं क्या नाम नजरि आया। तव पंडित उलमाव बोले साजगार वरपुरदार हमारे फाल मै भी याही नाम है। साहिजादा कुतवदीन नवल नाम दीया। पातसाह नो। नाम देकर साहिजादा हरमपानै मै ले गए। कि वीवी विवांना तुम्हारे वेटे का नाम साहिजादा कुतवदीन नवल नाम दीया हैं। विवानां तसलीम करि कहा की पूव कीया।

(१२) पातिसाहि कहणै लागै कि वीवी विवांनां हमारी एक अरज है। हजरति क्यैसी क्या अरज है। तव पातसाह वोले कि कुतवदीन नवल का एक व्याह ढूंढि कै पैदा करो। तव बीवी विवांनै वोली। पातसाह तुम कुतवर्द न नवलको एक व्याह का नांव क्यों लीया। कुतवदी दिल्लीके घर पातिसाहजादा पैदा हुवा। वहुत वंदिगीका फरजंद है। इसकै वासतै तुम कौण कौण वंदिगी पुदाय की है की। तिसको एक व्याह का नाव क्यौं लीया। एक सै सौ व्याह कुतवदी के हमेसौं करै। तो भी किसी वात की कमी नाही। एता जवाव वीवी विवाना नै दीया। तव पातसाह वोले वीवी विवांनां कुतवदीन नवलके हम वहुत व्याह करैंगे। मै अव्वलि व्याह कुतवदीका तहां करैंगे जहां लड़िकी सुरति जमाल होइगी। पूव फहीम होइगी जैसा पप होइगा। मां साहिजादी। वाप साहिजादा। नानी साहिजादी। नाना साहिजादा। अैसे पप सूरति पाक फहमदार ए तीन वस्त जिस लड़िकी मै होइगी कुतवदीन नवल कौ अवलि तही व्याहैंगे। पीछै व्याह और वहुतेरे करेंगे। यह जवाव पातसाहि नै कीया। तब वीवी विवाना फेरि वोली। पातसाहि सलामति यह वात दरोग लगती है। दरोग किस वास्तै। कि होजरति सूरति पाईगी तो फहीम कहा (कहा) पाईएगी। अर फहीम पाइएगी तौ पष कहां पाईएगी। तिस थे याह वात दरोग लगती है। पातसाह बोले ए वीवी जिस पुदाय नै हमकों कुतवदी वेटा दीया है सो अलाह कुतवदी कौ

असा व्याही भी देइगा। तव वीवी विवाना वोली। पातिसाह अलह तौ इससौं भी आले आले देगा। पर मुसकलि सौं पैदा होहिगे। पातसाह वोले पुव वीवी या मुसिकल यासान सांव अलाह तै होइगी। पै कुतवदी पुव जतन सौं राष्या चाहिए। जहां तक पूव व्याह ढूंढि करि पैदा करौं।

(१३) तव ग्यारह सै आदमी कुतवदीन नवल पास रखे तिसमै पंज सौ वूढी। तिन्हो कै हाथ पंच सै सोवन लठी। छिह सै छडीदार सोनेकी छडी लिये रहौं। तिन्हो को पातिस्याह हुकम कीया कि वारीया वेलियां नैना दिपलावो। पैं साहिजादा अनंत जाणै न पावै। ग्यारह सै आदमी असी भाति रपै। तिन्ह कौ य हकीकति फुरमाई जु कौडी लायक आदमी आवै तिसकौ लाप देहुं तौ लाप दीजीयो। फेरि जुवाव करणै न पावै। पीछै पाल काढूंगा। एक सौ मुहर की हिमानी दरवाजै की पैर कौ, साहजादै कौं, कोई मत पूछियो। सौ मुहुर उपरांति कोई वड़ा गुनी आवौ तिसकी साहिजादे कौ मालूम होई तव विदा होई।

(१४) सोनेके तुके कुतवदीन नवल चलावै। तिसपर अज्ञातच लीपीए। जो पावै तिसही का। कोई किस ही कै हाथ सौ लेणै न पावै। आठवै रोज जुमाराति आवै तिस रोज पंज पंज हार के दो ईराकी वकसीए सो किस रीस वकसए, पचीस पचीस मुहर कौ गज एक की नीलक परीद की तिसका जीन करिए, कचे सूत सौ नग जौ हार परोए यह मेलि करि घोडेके गले यौ वांधीए अपनी समसेर जमघड़ कौं कचा सूत से परोईए। नग वाँधीए। तूझे ढूंढनेवाले कंगा[ल] आठवै रोज दिली कै वडे वाजार आइ जमा होई, नगोंकी दोस्ती कुतवदीन नवल घोड़ै को पुरी करावैगे, मसालो के चांदणै असवार के डील सौं तारे से नग टूटि टूटि परैगे मसालैको उजियारे गरीव लूटहिगे, आप पुसाल होय साहिजादा दरवाजै पासै आई उतरै जव जिसकौ हाथ पहली वाग लागै उसका ही घोड़ा, कुदरति नाही उसके हाथ सौ कोई और लेणै न पावै एक दोइ नग लगे रहै सो उसके वष्त के दूसरा घोड़ा उसही रीस का फेरि रास होंणै लागा।

(१५) आप अंदर पाणा पाणें कु आए छ सै छडीदार वाहरि पड़े रहै पंज सौ वूढी साथ अंदरि गए जाई वीवी विवांनाकी हजूरि पाणा पाणै कौ वैठा। कुतवदीन नवल ह्यंदूगी तुरकी कुरान भी हाजरि हुऐ अवलि पुरांन वाला वोला साहिजादे सलामति वहुत पुव सायति का वक्त है एक निवाला उठायए। होम कुरानवाला वोला ए साहिजादे वहुत पूव सायति का वक्त है घुट एक ठंढा अव पाणी की लीजिए, योगिणी पाणीकी घुंटै, ईस ही रीसनिवाले गिणे, कुतवदीन नवल पाणा पाय करी वाहरि आया दूसरा घोड़ा उसही रीसका फेरि करि आया

हाजिर हुवा फेरि मसालांकी रोसनाई भी पुरी करावते नंग लुटावते आपणे महल आए।

(१६) महल सुलतान पेरोज पतम बादिसाहि नैं सहर बाहिरे कराए किस वास्तैं जु दुनियां की बतास पवन लागनैं न पावै दुनिया का जनावर ईस की नजरि न आवै दुनिया का दरष्त उसकी नजरि न आवै जु ईस की नजरि पड़ै सु जंगल का ही जनावर जंगल का ही दरष्त जंगल का ही देपै पवन भी लगै सु जंगल की ही लगै।

[समाप्तिकी पुष्पिका नहीं है, इसलिए ज्ञात होता है कि प्रति अपूर्ण छोड़ दी गई थी, प्रतिलिपि भी यहींपर समाप्त हुई है।]

